
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no. 891.3
Book no. T20J
Reg no. 34507

जीवन-दान

जीवन-दान

(मौलिक सामाजिक उपन्यास)

लेखिका

स्व० कुँवरानी तारादेवी

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट

दिल्ली

प्रथम संस्करण

मूल्य : पाँच रुपया

मुद्रक
एलबियन प्रेस, दिल्ली।

: १ :

सुबह के चार बजे हैं--ठण्डी हवा के झोंके शरीर की हड्डी तक कंपाये दे रहे हैं। रामा अपने घर से निकल कर जल्दी-जल्दी नदी तट पर गई। रास्ते में उसे गांव के अनेक आदमी मिले, किसी ने कहा--"पांव लागूं रामा काकी।" किसी ने कहा--"अरे रामा बहू--इतने सबेरे एसी ठण्ड में स्नान करने क्यों निकल पड़ीं? चार दिन ही तो हुए हैं तुम्हें बिस्तर छोड़े, फिर पड़ जाओगी तो क्या होगा?"

रामा ने उत्तर में कहा था--"सवेरे तो उठना ही पड़ता है, क्या करूं? आखिर मनहर के लिये नाश्ता तैयार करके उसे भी तो समय पर स्कूल भेजना पड़ता है भैया! सर्दी तो अब दिनों दिन बढ़ेगी, घटेगी नहीं।"

और वह जल्दी से स्त्रियों के घाट की तरफ चली गई। वहाँ कितनी ही स्त्रियाँ जमा थीं--रामा नहाने के लिये जल में उतरी। शंकर की बहू बोली--"पांव लागूं रामा काकी।"

रामा ने उत्तर दिया--"अमर सौभाग्यवती हो बहू!" वह बोली--"कल मनहर ने मेरे रमई की आंख फोड़ने में जरा भी कसर नहीं रखी काकी? अब स्याना हुआ है तुम जरा समझा दिया करो।"

रधिया ने धोती निचोड़ते हुए कहा--"राम राम! तुम्हारा जेठौत तो एक दम बिगड़ गया रामा काकी? सारे गाँव में दिन भर ऊधम मचाता है। उसके मारे किसी को अपनी बगिया का फल खाना नसीब

नहीं होता। यह कैसे लच्छन हैं उसके! सोलह, सत्तरह वर्ष का होने आया, कुछ छोटा नहीं है। अभी से उसे डांटो-डपटोगी नहीं काकी! तो कहे रखती हूँ एक दिन डाकू न हो जाये तो बात है।"

अब तक रामा चुपचाप सुनती रही थी। इस बार उसे यह बात बहुत बुरी लगी। बोली—"बे माँ-बाप का लड़का है बहू! इसलिये जिसका जी चाहेगा उसी को दोष देगा, उसी को कोसेगा। नहीं भाई! जब तक मैं जीवित हूँ ऐसा होने नहीं दूंगी। राम राम! सुबह ही सुबह कैसे मुँह खोलकर कह दिया, डाकू न हो जाये तो बात है। किसने किसकी किस्मत खोलकर देखी है, जो बता सके आज, कौन शाह होगा कौन डाकू।"

और वह कलसी भरकर उसे कमर पर रखती हुई जिस तरह जल्दी-जल्दी आई थी, उसी तरह जल्दी-जल्दी घर की तरफ लौट गई। स्त्रियां आपस में कहने लगीं—

"भई! रामा काकी तो उल्टा बुरा मान जाती है। अभी से उसे समझाती-बुझाती तो वह आदमी बन सकता था। खैर, हमें क्या? खुद ही भुगतेगी एक दिन।"

एक बुढ़िया जो अब तक चुपचाप बैठी सबकी बातें सुन रही थी, बोली—तुम सब भी गजब तोड़ती हो बहू! भला मनहर ने तुम्हारा बिगाड़ा क्या है, जो हर वक्त तुम सब उसके पीछे पड़ी रहती हो। और क्यों रे शंकर की बहू! तूने कैसे कह दिया कि तेरे रमई की आँख उस मनहर ने फोड़ी है। मैं तो उस वक्त वहीं थी। मनहर ऊपर से अमरूद तोड़-तोड़ कर इन सब को खाने को दे रहा था। उसी वक्त एक अमरूद इसकी आँख में आ लगा। तू तो ऐसा कह रही थी जैसे—मनहर ने जान-बूझकर रमई को मारा हो।"

शंकर की बहू लज्जित होकर बोली—"सो नहीं मारा होगा दादी। मुझे क्या मालूम, वही नासपीटा रमई तो सारे घर को सिर पर उठाये था। रो-रो कर यही कहता रहा, मनहर ने आँख फोड़ डाली रे अम्मा।"

"आज पूछना उससे ! सब सच बता देगा। तुम लोग चाहे कुछ कहो, मनहर असल हीरा लड़का है। गांव में जिस तरह सब की मुसीबत में वह बालक छाती तान कर आ खड़ा होता है। वैसा एक भी दूसरा गांव में हो तो बता दो। ईश्वर करे वह राजा हो, और तूने कह दिया डाकू न हो जाये तो बात है। राम राम ! रामा बहू बेचारी के दिल पर कैसी चोट बैठी होगी।"

और वह बुढ़िया भी गीली धोती उठा कर वहां से चली गई। रधिया और शंकर की बहू लज्जित-सी कपड़े धोने लग गईं।

रामा आँगन में पहुँची, घड़ौन्जी पर कलसी रख उसने झटपट रसोई में जाकर चूल्हा सुलगाया और दूध गरम रखकर वह मनहर को जगाने कोठरी में गई। देखा वह चित्त पड़ा सो रहा है। उसके सुन्दर चेहरे पर उसके काले बाल बड़े भले लग रहे थे। शंकर की बहू के वे शब्द उसे याद आये, "मनहर डाकू न हो जाए तो बात है" उसका कलेजा धक्क से हो गया। नहीं, कहती हुई वह मनहर पर झुक गई। उसके बालों पर हाथ फेरते हुए वह बोली—

"नहीं......मेरा मनहर राजा होगा। उसके हृदय में सबके लिये कितनी पीड़ा है ! किसी के दुःख-दर्द की कहानी सुनकर जिसकी आँखें भर आती हैं, वह कभी डाकू हो सकता है क्या ?"

फिर उसे हिलाती हुई बोली–"उठ तो बेटा ! स्नान वगैरह से छुट्टी पा ले, फिर नाश्ता करके स्कूल जा।"

मनहर ने करवट बदलते हुए कहा–"मुझे सोने दो काकी ! मेरी आज छुट्टी है।"

"झूठ बोलेगा सुबह सुबह–क्यों रे पापी ! कान उखाड़ लूंगी, उठ नहीं तो।"

अब मनहर को उठना ही पड़ा। मुंह बनाकर बोला—"इसमें झूठ क्या है काकी ? परीक्षा के बाद पढ़ाई बढ़ाई ऐसी ही होती है। न जाऊँ

एक दिन तो कौन-सा बड़ा नुकसान हो जायेगा।"

"कुछ भी हो मनहर! पढ़ाई से एक दिन भी लापरवाही करना उचित नहीं बेटा! उठ तो मेरा राजा बेटा?

मनहर आँखें मलता हुआ नहाने-धोने में लग गया। रामा फिर रसोई घर में चली गई। आध घण्टे बाद वह आंगन में बिछे एक मोढ़े पर बैठ गया। एक तिपाई आगे कर ली। रामा ने तिपाई पर दूध और गुड़ के शक्कर पारे रख दिए। मनहर ने दूध पी लिया। रामा बोली—

"क्यों रे मनहर! तूने कल रमई की आँख क्यों फोड़ डाली?"

"फोड़ डाली सो कैसे काकी? जरा सी चोट लग गई थी उसे! सो भी मैंने जान-बूझ कर तो मारा नहीं था।"

"मुलिया के पेड़ के तूने अमरूद ही क्यों तोड़े भला? इतना सयाना हुआ, अब ऐसी बातें करते तुझे लज्जा भी नहीं आती रे।"

मनहर सकपकाकर बोला—"प्रभात के कहने से ही तो मैंने अमरूद तोड़े थे काकी?"

"बेटा! प्रभात इस गांव के राजा का बेटा है। चाहे उसने खुद भी तोड़े होते यह अमरूद तो भी उसका नाम कोई जुबान पर नहीं लाता। तू ग़रीब है, ग़रीब की ही तरह रहो बेटा। मैं जन्म की दुखियारी हूं। ऐसा कर जिससे किसी तरह इसी गांव में इज्जत के साथ पड़ी रह सकूं।"

यह कहते-कहते रामा की आँखें भर आईं। वह झटपट लड़के के आगे से हटकर रसोई घर में चली गयी। मनहर के हाथ के शक्कर पारे हाथ में ही रह गये। खाते नहीं बना। समेट कर उन्हें जेब में डालता हुआ वह पुस्तकें उठा कर आंगन से बाहर हो गया।

स्कूल में दिन भर काकी के यह शब्द उसे कांटे की तरह चुभते रहे—"मैं जन्म की दुखियारी हूँ। ऐसा कर मनहर! जिससे इज्जत के साथ इसी गांव में पड़ी रह सकूं।"

यही सब वह सोच रहा था, जब उसे मास्टर ने पुकारा।

"मनहर ! आज तुम्हारा ध्यान किधर है। मैंने अभी क्या कहा, तुमने सुना नहीं क्या ? अपना पाठ पढ़कर सुनाओ।"

मनहर ने खड़े होकर अपना पाठ सुना दिया। मास्टर खुश होकर बोले—"शाबाश बेटा ? तुम सदा पढ़ने में सब से बाजी ले जाते हो। अगर तुम्हारा ध्यान पढ़ाई में इसी तरह रहा तो आश्चर्य नहीं एकदिन तुम यूनिवर्सिटी में फस्ट आ जाओ। तुम्हारी उम्र में जो पढ़ाई पर इतना ध्यान रखते हैं मनहर ! वे खटाखट सब डिग्रियों को शान से पास करते चले जाते हैं। तुम पर हमारे स्कूल को गर्व है।"

फिर उन्होंने मनहर के पास जाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरा और कहा—"तुम्हारी काकी तुमसे बड़ी-बड़ी आशायें रखती हैं बेटा ? उस बेचारी ने औरत होकर भी बड़ी हिम्मत से सदा मुसीबतों का सामना किया है। मुझे उम्मीद है तुम सदा उसकी खुशी का ख्याल रखोगे।"

मनहर ने धीरे से कहा—"मुझे आशीर्वाद दीजिये, मैं ऐसा कर सकूं मास्टर जी।"

उन्होंने उनकी पीठ पर हाथ फेरा और आगे बढ़ गये।

स्कूल बन्द होने पर सब लड़के एक-एक करके स्कूल से बाहर निकल गये। मनहर हाथ में पुस्तकें उठाकर निकला तो देखा मोटर में बैठा प्रभात उसका इन्तजार कर रहा है, उसे देखते ही पुकार कर बोला—

"लो आओ, चलो मनहर ?"

मनहर उसके पास जाकर बोला—"तुम जाओ कुँवर ! मैं पैदल ही आऊँगा।"

"क्यों, पैदल का इतना शौक क्यों है ?"

"शौक नहीं कुँवर ! आदत है। तुम जाओ।"

प्रभात मोटर पर से उतर पड़ा। बोला—"लो तुम मोटर ले जाओ ड्राइवर ! हम इस लाट साहेब के साथ पैदल जावेंगे।"

ड्राइवर ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"अरे आ जाओ मनहर ।"

"दादा ! चलो तुम्हें पहिले हवेली पर उतार दूंगा ।"

"नहीं, मै तो पैदल ही जाऊँगा ड्राइवर। अरे ! तुम जाओ न कुँवर ! जमीदार काका बेचारे ड्राइवर को डाटेंगे ।"

"सो डाटेंगे ही, तब तुम्हारी जान को रो लेगा ।" और दोनों पैदल चल दिये । ड्राइवर मोटर लेकर चला गया, प्रभात बोला—"कुछ रुठे से हो ।

मनहर ने झूठ-मूठ हँसते हुए कहा—"तुमसे नहीं, तुमसे क्यों रुठूंगा भला ।"

"अच्छा चलो मुझसे नहीं सही तो किससे रुठे हो यही बता दो ।"

"कुछ नहीं कुँवर ? उस दिन रमई की आँख में अमरूद लग गया था न, सो उसकी मां ने न जाने काकी से क्या क्या कहा । बेचारी आज सुबह बड़ी दुःखी हो रही थी । नाहक ! मै सबको अमरूद खिलाने के लिये ऊपर चढ़ा ।

"तो इसमें इतने सुस्त होने की क्या जरूरत है मनहर ! मैं आज सन्ध्या को खुद काकी से जाकर सब बात बता आऊँगा ।"

"मैं सोचता हूँ—तुम जरूर आकर सब बात उन्हें साफ़-साफ़ कह देना । सचमुच आज वह बड़ी दुःखी थी ।"

बाग में बसी—लोहे के फाटक वाली उस राजमहल सरीखी नीले रंग की । आलीशान कोठी के आगे आकर दोनों मित्र ठहर गये । प्रभात बोला—"आओ, नाश्ता कर लो मनहर ।"

मनहर बोला—"नहीं कुँवर ! अब मुझे जाने दो । काकी राह देखती होगी ।

"तो संध्या को आओगे न ?"

"जरूर"—कहता हुआ प्रभात कोठी की तरफ़ बढ़ा । गोरखा सिपाही खूखरी कमर में घोंसे पहरे पर खड़ा था । प्रभात को देख उसने सलाम

किया। कुँवर अन्दर चला गया। मनहर ने एक ठंडी सांस ली। और आगे बढ़ गया।

धुजपुर का यह गांव काफी बड़ा है। जमींदार की हवेली की बाईं तरफ सोने के छत्रों वाला बहुत बड़ा राधाकृष्ण का मन्दिर है। दाईं तरफ एक बहुत बड़ी झील है। फिर गाँव के किनारे-किनारे 'सोना' नदी बह रही है। गांव के पीछे नगर के कोट की तरह पहाड़ियों की कतार थी। हरी घास से ढकी पहाड़ियों की छाया नदी और झील में पड़ती बड़ी भली दिखाई पड़ती थी।

: २ :

"मुरला आज कहां है मां!"

"अपने कमरे में सो रही है, उसे बुखार हो गया है।"

"बुखार!" कहते हुए प्रभात व्यस्त होकर उठ खड़ा हुआ। उसकी मां बोली—"यह क्या प्रभात! कुछ खाये बिना ही उठा जा रहा है। ऐसा क्या हुआ है! मुरला को मामूली बुखार ही तो है। डाक्टर साहेब देख तो गये हैं। कह गये हैं, कल तक ठीक हो जायेगी?"

प्रभात कुर्सी हटाते हुए बोला—"दूध पी तो लिया मां! मैं और कुछ नहीं खाऊँगा।"

कहता हुआ वह मुरला के कमरे की ओर गया। धीरे से उसने दरवाजा खोला और अन्दर गया। मुरला आँखें बन्द किये पड़ी थी। मुँह उसका लाल हो रहा था। प्रभात धीरे से पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। मुरला ने आँख खोल कर कहा—"तुम आ गये कुँवर!"

"हाँ मुरला! तुम बीमार क्यों हो गईं? परसों सुबह तो हम दोनों नाव की दौड़ करने वाले थे।"

"अरे परसों सुबह न? मैं कल तक बिलकुल ठीक हो जाऊँगी। देखो कुँवर! इस बार जीतने वाले को कोई उपहार मिलना ही चाहिये। पीछे घोड़े दौड़ाने में भी मैं आगे निकल गई थी, तब भी तुमने मुझे कुछ नहीं दिया था।"

प्रभात मुस्कराता आ बोला—"झूठी कहीं की! वह तो बापू ने तुझे

खुश करने को कह दिया था। नहीं तो तू क्या खाकर मुझ से घोड़ा आगे ले जायेगी, पगली !"

"खूब...इसमें बापू ने झूठमूठ कहा क्या था? घोड़ा मेरा आगे था ही।"

प्रभात ने उसके माथे पर हाथ रखते हुए कहा—"अच्छा, चुप हो जाओ मुरला? बुखार तेज है, तुम सोने का प्रयत्न करो, मैं जरा मनहर के हो आऊँ।"

मुरला ने कोई उत्तर नहीं दिया। प्रभात बोला—"नाराज तो नहीं हुई ?"

"होने की बात ही है कुँवर? सारा दिन स्कूल में मनहर के साथ ही तो थे।"

"वह, जरा काकी के पास लोगों ने झूठी शिकायत कर दी है उसकी। इसीलिये......"

बात काटती हुई मुरला बोली—"तुम दोनों मित्र बहाना बनाने में सदा एक-दूसरे से बाजी ले जाते हो।"

प्रभात फिर कुर्सी पर बैठ गया और बोला—"लो भई नहीं जाता। बस, अब कहो तुम्हारा जी बहलाने के लिये मुझे क्या करना होगा?"

"बांसुरी या वायलिन बजाओ।"

"जो हुक्म!" कहता हुआ प्रभात अपने कमरे से वायलिन लेने चला गया। मुरला मुस्कराने लगी।

मनहर पुस्तक पर झुका ध्यान से अपना पाठ याद कर रहा था। प्रभात की हवेली से उसका घर ज्यादा दूर नहीं था। वायलिन की आवाज से वह चौंक पड़ा। पुस्तक एक ओर हटाकर वह उठकर रसोईघर के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ और बोला—"काकी! जरा जमींदार की हवेली तक जा रहा हूँ।"

चूल्हे में फूंक मारना बन्द कर रामा थोड़ा मुस्कराती हुई बोली,

"जा ! पर ओ रे जानवर, किसी से लड़-भिड़ कर मत आना और जल्दी लौटना। दाल-सब्जी तैयार है, तू आयेगा तो रोटी सेकूँगी।"

"अभी आया!" कहता हुआ मनहर जमींदार के घर की तरफ तेजी से चला गया। घर की मालकिन उसे देख कर बोली—"आओ मनहर! आज तुम्हारा मित्र और मुरला नदी तट पर नहीं जा सके।"

"क्यों काकी ?"

मुरला को बुखार हो आया है।

"अच्छा"—कहता हुआ मनहर मुरला के कमरे की तरफ चला गया।

प्रभात ने वायलिन बन्द करते हुए कहा—"मनहर भी आ गया मुरला! अब इससे एक गीत सुनो।"

मनहर मुरला के पास बैठता बोला—"गजब करते हो कुँवर ? कैसी प्यारी गत बजा रहे थे। क्योंकर बन्द कर दी। कहो मुरला बुखार कैसे आ गया ?"

मुरला ने अपने बुखार से लाल नेत्र उसके मुंह की तरफ फेरते हुए कहा—"जाने क्यों आ गया होगा। तुम तो मुझे एक गीत सुना दो मनहर!"

"कौन-सा गीत सुनना चाहती हो मुरला ?"

"मुकेश या तलक महमूद का गाया कोई भी सुना दो मनहर!"

मनहर गाने लगा

"कहां तक जफा हुस्न वालों की सहते,
जवानी जो रहती तो फिर हम न रहते।"

गीत खत्म होने पर मुरला ने कहा—"गजब का मीठा गला पाया है तुमने! कितना दर्द है तुम्हारी आवाज में मनहर ? तुम हँसते आदमी को रुला देने की शक्ति रखते हो। विश्वास करके मानो, तलक महमूद और मुकेश के गाने तुम उन दोनों से कहीं ज्यादा अच्छी तरह गा लेते हो ?"

मनहर केवल मुस्कराता रहा। फिर उठता हुआ बोला—"अब चलता कुँवर, काकी राह देखती होगी।"

मुरला बोली—"मन्दिर में महाश्वेता से कहते जाना मनहर कि हम लोग क्यों नदी तट पर आज नहीं आये। वह बेचारी राह देखती रही होगी।"

"अच्छा कहता जाऊँगा—" कहता हुआ मनहर कमरे से बाहर हो गया। मुरला बोली—"एक गत और सुना दो कुँवर, मैं सो जाऊँगी।"

प्रभात गत बजाने लगा, मुरला ने आँखें बन्द कर लीं। वर्ष पर वर्ष बीतते गये। ये चारों बालक अब सयाने हुए। मन्दिर के महात्मा ने देवदासी महाश्वेता का पढ़ना बन्द करा दिया है और अब उसे स्वयं धर्मग्रन्थों का अध्ययन करा रहे हैं। मुरला आठवीं में फेल हो गई है। पढ़ने से उनका मन उचाट हो गया है। जमींदार साहिब ने उसका स्कूल जाना बन्द कर दिया है। मास्टर लोग आते हैं। ख्याल है मुरला प्राइवेट परीक्षा देती रहेगी।

प्रभात बम्बई के कालिज में पढ़ता है। बम्बई में उन लोगों का अपना भी एक शानदार बंगला है। कुँवर अपने पुराने नौकर दीनू के साथ वहीं रहता है।

मनहर बृजपुर के जिले नाहरपुर में रहकर पढ़ रहा है। आजकल गर्मी की छुट्टियाँ हैं। प्रभात और मनहर दोनों छुट्टियों में घर आये हुए हैं।

मुरला ने तुलसी चौरे पर दीप जलाकर रखा। फिर माथा टेककर उठ खड़ी हुई और जमींदार गृहिणी के पास जाकर बोली—"मौसी! मैं मन्दिर तक जा रही हूँ।"

वह उसके मुँह की तरफ देखती हुई बोली—"मुरला! तू अब सयानी हुई बेटी! तेरा इस तरह अकेले इधर-उधर जाना उचित नहीं। गौरी माँ को साथ लेती जा।"

"वह बूढ़ी मेरे साथ जाकर क्या करेगी मौसी? मैं अभी महाश्वेता का नृत्य देखकर लौटी आ रही हूँ।"

"अच्छा जा।"

और वह भण्डार घर की तरफ चली गई। मुरला मन्दिर की तरफ उड़ चली। मन्दिर में घण्टे बजने शुरू हो गये थे। आरती माँ गा रही थी—

बृजबासिन रही पुकार
आन मिलो गिरधारी

महाश्वेता तन्मय होकर नृत्य कर रही थी। अपने इष्ट राधेश्याम के आगे। उसके घुंघरु बज रहे थे, छूम छूना नन छूम छूना नन छूम छूम।

बृजपुर के नर-नारी ठगे-से स्तब्ध देवदासी की ओर निहार रहे थे। मुरला को लगा—जैसे यह मन्दिर नहीं स्वर्णपुरी है और कोई देवबाला भगवान् विष्णु से 'वरदान' पाने लिये मनमोहनी नृत्य कर रही है। राम् तबले वाले ने तबले पर जोर से तीन थाप दी। महाश्वेता देवता के चरणों पर माथा टेक कर पड़ रही।

महात्मा ने अपना शीतल हाथ उसके माथे पर फेरते हुए कहा—"तुम धन्य हो बेटी! तुम्हारा ही जीवन सार्थक हुआ है। उठो...... सब को प्रसाद बांटो।"

महात्मा के चरणों पर हाथ रख महाश्वेता ने माथे से लगाये। फिर प्रसाद का थाल उठाकर वह बांटने के लिये दर्शकों की तरफ मुड़ी।

इसी वक्त मुरला ने आकर पहिले भगवान के, फिर महात्मा के चरणों पर सिर झुकाया। महात्मा ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"तुम्हारी हर मनोकामना पूर्ण हो बेटी! आज नदी तट पर दीप प्रवाह करने नह गई क्या?"

"अब जा रही हूँ बाबा।"

महात्मा ने एक तश्तरी में पांच दीप जला कर उसके हाथ पर रख दिये। फिर कहा—"झटपट जाओ बेटी? कुबेला होती जा रही है।"

मुरला दीपप्रवाह करने चली। दरवाजे के पास प्रसाद बांटती हुई महाश्वेता मिली। मुरला ने कहा—"आ, चल न मेरे साथ?"

महाश्वेता ने थोड़ा हँसते हुए धीरे से कहा—"ऊँह, पहिले तुम जाओ जीजी, दीपप्रवाह के बाद अपने कन्हैया से निपट लो। बाद में बांसुरी का स्वर सुन कर मैं भी आ जाऊँगी। मुझे साथ देखकर नाहक में कुँवर चिढ़ जायेंगे—

"चल झूठी..."

कहती हुई मुरला नदी तट की तरफ चली गई। वहां पहुँचकर उसने बड़ी श्रद्धा से नदी में फूल-बताशे चढ़ाकर पांचों दीप बारी-बारी से बहा दिये। फिर तट पर माथा रखती हुई बोली—"मां गंगे! मुझे केवल तुम्हारा भरोसा है। मेरे मन की बात तुम्हारे सिवा कोई दूसरा जानता भी नहीं है। तुम मुझे निराश मत करना मां?"

पीछे से प्रभात बोला—"बस हो चुका मुरला! अब ज्यादा स्तुति मत करो। कहीं प्रसन्न होकर गंगा-मैया प्रगट होने को तैयार हो गईं तो, राजा भगीरथ की तरह मैं भगवान शिव को कहां खोजता फिरूंगा। आओ, इधर प्रसाद दो कब से बैठा राह देख रहा हूँ।"

मुरला ने मस्कराते हुए उसकी फैली हथेली पर थोड़े से बताशे रखते हुए कहा—"मेरे इन थोड़े से बताशों पर तुम्हारे लोभ की सीमा नहीं है, क्यों कुँवर?"

एक बड़े पत्थर पर बैठता प्रभात बोला—"कुछ नहीं कह सकती हो मुरला? तुम्हारी किस वस्तु पर मेरा लोभ नहीं है!"

मुरला का मुँह लाल हो गया। सामने के पत्थर पर वह बैठ गई, फिर बात बनाती हुई बोली—

"सचमुच क्या? अच्छा बताओ, मेरी बिल्ली-मैना पर तुम्हारा समान लोभ है? और गौरी मां पर भी है?"

उसके आकर्षक सुन्दर मुखड़े पर अपने नेत्र जमाते हुए प्रभात बोला, "ज्यादा क्या बताऊँ मुरला! बस इसी से सब कुछ समझ लो। तुम्हारे

चलने से जो धूल पैरों से झड़ती है पृथ्वी पर, उसे भी समेट कर कलेजे में छिपा लेने की इच्छा होती है मेरी।"

प्रभात के इस व्याकुल स्वर से मुरला चौंक गई। बोली—"शायद आज तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है कुँवर।"

"मेरी इस बात का क्या यही उत्तर है मुरला ?"

मुरला ने इसके उत्तर में केवल एक ठण्डी सांस ली। फिर बोली—"इसके उत्तर में मैं मुँह से अगर कुछ न कह सकूं कुँवर तो क्या मेरे मन की बात तुम से छिपी है ?"

प्रभात ने उसके हाथ को मुट्ठी में दबाते हुए कहा—"बस, इसी के भरोसे पर मेरा जीवन टिका है मुरला ?

मुरला थोड़ा घबड़ाकर बोली—"लो अब बाँसुरी बजाओ, बेचारी महाश्वेता कान लगाये मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठी होगी।"

जेब से बाँसुरी निकालकर ओठों पर रखते हुए प्रभात ने पूछा, "कौन-सी गत सुनोगी मुरला !

"वही जो सदैव सुनती हूँ—बंसी रही पुकार राधे राधे राधे।"

नदी के उस सुनसान तट पर बाँसुरी का यह विरह व्यथित स्वर दूर-दूर तक गूंज उठा। महाश्वेता के क़दम तेज हो गये। मनहर पुस्तक एक ओर रखता हुआ उठ खड़ा हुआ और रसोईघर के द्वार पर जाकर बोला—

"ज़रा बाहर जाता हूँ काकी ?

रामा चटाई पर सब्जी कतर रही थी, बोली—"जानती हूँ बाँसुरी बुला रही है। पर देख भैया ! लौट जल्दी आना।"

मनहर दरवाज़े की तरफ जाता हुआ बोला—"क्यों काकी ! अब यह नहीं कहतीं तुम, ओ रे जानवर ! ओ रे पापी ! किसी से मारपीट करके मत आना।"

रामा हँसने लगी। मनहर नदी तट पर जा पहुँचा। महाश्वेता भी

पहुँच गई थी। प्रभात हँसकर बोला—"यह अच्छा रहा, अगर मैं बाँसुरी न बजाऊँ तो तुम दोनों आने का नाम ही नहीं लेते।"

मनहर प्रभात के साथ बैठते हुए बोला—"मैं तो पढ़ रहा था भाई! अब यह महाश्वेता जाने वह क्यों नहीं आई।"

महाश्वेता मुरला के साथ बैठती हुई बोली—"मन्दिर के अनेक कामों में लगी रहती हूँ कुँवर? कहीं माला बनाना, पुजा का सामान सजाना, प्रसाद बाँटना यह...वह...।"

मुरला बोली—"झूठी कहीं की, केवल कान लगाये सीढ़ियों पर बैठी रहती है।"

महाश्वेता ने उसके चुटकी काटते हुए कहा—"अच्छा तो यह बात है। तब तो कुँवर से साफ़ ही कहना होगा। इन्हीं मुरला जीजी ने कहा था कुँवर कि साथ ही क्यों आ मरा करती है, बाँसुरी सुनाकर तब आया कर।"

मुरला आँखें चढ़ाकर बोली—"बाप रे! कितना झूठ बोलती है तू...तुम इस पर कभी विश्वास मत करना कुँवर। ऐसी बात मैं इसी चुड़ैल से कहने जाऊँगी भला।"

प्रभात हँस पड़ा, बोला—"अरे, फिर महाश्वेता को चुड़ैल कहा, कल ही तो माँ कह रही थी। अब इसकी हम सब को इज्जत करनी चाहिये।"

मुँह बनाकर मुरला बोली, "इज्जत का नुस्खा भी तो मौसी कुछ कम नहीं बताती। देवी कहकर पुकारें, मिलने पर इनके श्रीचरणों में माथा रख दें। बाप रे...मुझ से तो यह इस जन्म में होगा नहीं, तुम दोनों मित्र प्रयत्न करके देखो।"

महाश्वेता जल्दी से बोली—"यह सब मुझे अपने से दूर कर देने की बातें हैं कुँवर! मुरला जीजी ठीक कहती हैं। और सब चाहे जो कुछ कहें, पर तुम दोनों मुझे देवी बनाकर अपने से अलग मत कर देना।"

मनहर ने स्नेह भरी दृष्टि से उसकी तरफ़ देखते हुए कहा—

"महाश्वेता ठीक कहती है। हमारी यह छोटी बहिन है। इसे हम 'बेबी' बनाकर अपने से दूर नहीं करेंगे।"

महाश्वेता बोली—"कैसी सुन्दर चाँदनी रात है, आओ नावों की दौड़ करें।"

मुरला सिर हिलाकर बोली, "तुम तीनो जाओ, मैं नहीं जाऊँगी।"

प्रभात ने चकित होकर पूछा—"क्यों ?"

"बिना किसी लालच के मुझे बाजी लगानी अच्छी नहीं लगती कुँवर ?"

"चलो आज बाजी लगाते हैं। जो सब से आगे रहा, वह जो मांगेगा मैं उसे वही दूंगा।"

चारों घाट पर बँधी छोटी-छोटी चार डोंगियों पर कूद गये। मुरला ने अपनी कमर में आँचल लपेट कर डांड़ हाथ में ले लिया। मनहर ने एक-दो-तीन कहा और चारों डोंगियां पानी को चीरती हुई तीर की तरह चण्डी घाट की ओर दौड़ चलीं।

सब से पहिले मुरला घाट पर पहुँची और हांफती हुई डोंगी किनारे से लगाकर घाट पर कूद गई। पाँच मिनट बाद प्रभात, फिर मनहर, सब से पीछे महाश्वेता पहुँची। प्रभात घाट पर कूदता बोला—"मुरला तीर की तरह डोंगी चलाती है। हर दफ़ा बाजी ले जाती है। बता अब क्या लगी ?"

मनहर महाश्वेता भी पास आकर बोला—"भई, गजब करती हो मुरला !"

मुरला अब भ हाँफ रही थी। उसी तरह हँसती रही। प्रभात ने अपनी उँगली की हीरे की जड़ी अंगूठी उतार कर उसकी उँगली में पहिना दी। मनहर और महाश्वेता ने ताली बजाई।

फिर चारों हँसते हुए अपने घर लौट गये।

रात को भोजन के समय मुरला हँसती हुई अपनी मौसी से बोली—

"देखो मौसी ! आज में फिर नाव की दौड़ में इन तीनों से बाजी ले गई। कुँवर ने इनाम में मुझे यह अंगूठी दी है।"

"देखूँ, कौन-सी अंगूठी दी है उसने मुरला।"

कहते हुए उन्होंने उसका कोमल हाथ अपनी हथेली पर रख लिया। उस अंगूठी को देख उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा—"अरे ! यह तो वह अंगूठी है जो तेरे बापू ने तुझे दशहरे वाले दिन दी थी प्रभात।"

प्रभात ने आँखें झुकाकर कहा—"हाँ, यह तो वही है माँ ?"

"और उन्होंने तुझसे यह भी तो कहा था कि यह हमारे वंश की रीति है। इक्कीसवें वर्ष में इस घर का बड़ा लड़का इस अंगूठी को पहिनता है और ब्याह होने के बाद अपनी पत्नी की उँगली में पहिना देता है।"

प्रभात ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और झटपट थाल छोड़कर उठ खड़ा हुआ। जमींदार गृहिणी स्तब्ध उधर देखती रह गई। मुरला का मुंह स्याह पड़ गया। घबराकर बोली—"तब तो मौसा बड़े नाराज होंगे मौसी ? मैं जाकर यह अंगूठी लौटाये आती हूँ।"

और वह भी खाना छोड़कर प्रभात के पीछे-पीछे उसके कमरे में चली गई। प्रभात सोफ़े पर बैठा था। मुरला उसके पास बैठती हुई बोली—

"तुम अंगूठी उतार लो कुँवर !"

वह व्यथित स्वर से बोला—"क्यों, तुम्हें मेरा यह बन्धन क्या पसन्द नहीं आया मुरला ?"

मुरला बोली—"मेरी पसन्द से क्या होगा कुँवर ! मौसा तुम पर बहुत बिगड़ेंगे, इसे मत भूलो।"

"उन्हीं को अपने मन की बात बताने के लिये मैंने जान-बूझकर तुमको यह अंगूठी पहनाई है।

मुरला चुपचाप उसका मुँह ताकने लगी। वह बोला—

"मुरला ! तुम्हारे बिना....अच्छा जाओ....तुम आराम करो जाकर। मेरा अनुरोध है, मेरी पहनाई इस अंगूठी को तुम अपनी जिन्दगी में

अपनी उंगली से कभी अलग मत करना। चाहे कोई तुमसे कुछ भी कहे। मानोगी यह मेरी बात।"

मुरला ने धीमे स्वर से कहा—"मानूँगी।"

और वह अपने कमरे की तरफ चली गई। आठ दिन बाद जमींदार दौरा करके घर आये। जमींदार गृहिणी उनके पास बैठी उनके लिये पान लगा रही है। वह पलना पर लेटे-लेटे हुक्का पी रहे हैं। नौकर-चाकर अपनी-अपनी कोठरियों में जा चुके हैं। सारे महल में सन्नाटा छाया हुआ है। प्रभात के कमरे से वायलिन की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। मुरला लालटैन के सामने बैठी उस अंगूठी की तरफ ताक रही है।

जमींदार बोले—"सोचता हूँ, मुरला का अब ब्याह कर देना चाहिये। इसलिये इसके गाँव और जमीन की देख भाल करने गया था। आखिर जहां बातचीत करूँगा, उसे क्या है क्या नहीं, बताना तो पड़ेगा न?"

उसके हाथ में पान का बीड़ा थमाते हुए वह बोली-"अभी मुरला के ब्याह की जल्दी क्या है, चौदहवां शुरू ही तो हुआ है।"

"तुम तो आंखें बन्द करके घर में रहती हो? देखती नहीं हो प्रभात किस तरह उसके चारों ओर मंडराता रहता है। अभी से मुरला को दूर न किया तो फिर जाने कैसी मुश्किल कर दे यह।"

वह उसके पांयते बैठती बोली-"मेरे ख्याल में अगर मुरला से प्रभात का ब्याह हो जाता, तो कोई बुरी बात तो न थी। ऐसी सुन्दर लड़की तो आस-पास कहीं दिखाई नहीं पड़ती। जैसा प्रभात सुन्दर है वैसी ही मुरला है। दोनों को एक साथ खड़े देख आँखें ठण्डी होती हैं।"

जमींदार नाखुश होकर बोले—"पहिले तो यह कहो, भान्जी के साथ लड़के का ब्याह करोगी, तो लोग क्या कहेंगे?"

"भान्जी कोई मेरी सगी तो है नहीं। मुरला गांव के नाते से ही तो भान्जी है। ब्याह हो न सकता होता, तो मैं आपके आगे ऐसी बात उठा

नहीं सकती थी। फिर कोई ऐरे ग़ैरे की लड़की नहीं है, गांव-जमीन सभी कुछ है उसके।"

"हज़ार गाँव ज़मीन हों, उसके सिर न बाप है न कोई भाई। मेरा अकेला ही तो यह लड़का है। समधी हो, नाते रिश्तेदार आयें-जायें, इसका मुझे भी चाव है। जिससे तुम अस्वाभाविक नहीं कह सकती। मैं तो रायपुर वालों की लड़की घर में लाऊँगा।"

जमींदार गृहिणी क्षण भर तक चुपचाप बैठी रही। फिर बोली—"आपके आगे मेरी तो कुछ चलेगी नहीं, जो मन में आये करो। पर याद रखना यह लड़का भी आपका ही है। मुरला को खो कर पागल न हो जाये तो बात है।"

जमींदार बिगड़ कर बोले—"मां होकर बच्चे को क्या आशीर्वाद दे रही हो ?"

"उसके मन को जानती हूँ तभी ऐसी बात कह रही हूँ। आगे आप जानो।"

"अच्छा तुम चुप चाप रहना। मैं सब ठीक कर लूंगा। अगले वर्ष प्रभात बी० ए०, पास करने के बाद इङ्गलैण्ड पढ़ने के लिये जा ही रहा है। तभी मैं चुपचाप मुरला का ब्याह कर डालूंगा। देखूंगा, आकर क्या कर लेता है मेरा ?"

जमींदार गृहिणी फिर कुछ नहीं बोली। पुत्र के भविष्य की कल्पना कर वह चिन्तित हो उठी।

सन्ध्या के समय प्रभात और मुरला नदी तट पर टहल रहे हैं। मुरला ने चारों तरफ़ के दृश्य को बहुत देर एक टक देखते रहने के बाद कहा।

"कैसा सुन्दर दृश्य है कुंवर ! लगता है चारों ओर की पहाड़ियां जैसे सो रही हैं। उनकी नींद कहीं टूट न जाए, इसलिए नदी बिना कुछ शब्द किये धीरे-धीरे चली जा रही है। फिर देखो, अपनी इस लम्बी

चौड़ी हवेली के एक ओर यह लम्बी सुन्दर झील और दूसरी ओर स्वर्ण-मण्डित कलशों वाला राधेश्याम का यह मन्दिर······कितना सुन्दर और कैसा मनमोहक दृश्य है। कभी-कभी मेरी इच्छा होती है यह सब देखते देखते और तुम्हारी बांसुरी सुनते हुए मैं ठीक इसी जगह हमेशा के लिए आंखें मूंदने का सौभाग्य पा सकूं।"

प्रभात ने चौंककर उसकी तरफ देखा—फिर कहा—"यह कैसी मनहूस बात मुँह से निकाल रही हो मुरला—देखता हूँ, जिस दिन से तुमने कविता लिखना शुरू किया है, हर वक्त मरने की बात तुम्हारे मुँह पर रहती है।"

"अच्छा जाने दो। कोई एक गीत सुनाओ। निकालो बांसुरी।"

प्रभात बांसुरी बजाने लगा। मनहर और महाश्वेता आकर चुपचाप अपनी जगह पर बैठ गये। बीस मिनट तक कुँवर उस गत को बजाता रहा। फिर उसने थक कर बांसुरी जेब में रख ली और रूमाल से मुँह पोछता हुआ बोला—"धन्यभाग! तुम दोनों के दर्शन तो हुए।"

मनहर मन में उठी ईर्ष्या को मन में ही दबाता हुआ बोला—"हमारे ही धन्यभाग हैं कुँवर! जो सरकार की सवारी हवेली से बाहर तो निकली।"

मुरला ने प्रभात का पक्ष लेते हुए कहा—"तुम्हें क्या हवेली का रास्ता नहीं मालूम मनहर!"

"रानी जी! मैं एक ग़रीब आदमी हूं। नौकरी के फेर में इधर-उधर मारा-मारा फिरता हूँ। हुजूर की खिदमत में सलाम करने की फुरसत नहीं पा सका।"

प्रभात बोला—"आज यह कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो मनहर! कहीं भांग-वांग तो नहीं खाली।"

"भांग······नहीं कुँवर! ग़रीब आदमी किस बूते पर नशा करेगा। आजकल जरा नौकरी की खोज में रहता हूँ।"

"अरे भले आदमी ! बी० ए० की पढ़ाई तो पूरी कर लो।"

"पढ़ाई तो अभी छोड़ी नहीं कुँवर ! पर सुना है नौकरी मिलना बड़ी मुश्किल बात है। बड़ी दौड़-धूप के बाद सालों में क़हीं मिलती है। सो मैंने सोचा यह छुट्टियां इसी काम के लिये सही।"

महाश्वेता बोली—"महात्मा कहा करते हैं देश के नौजवानों को चाहिये, क़मर बांध कर खेती-बारी में जुट जायें, ऐसा हुए बिना देश से अन्न कष्ट कभी दूर न होगा ! नौकरी में रखा क्या है और फिर भैया ! तुम तो जमींदार हो तुम्हें तो अपनी जमीनों की उपज पर पूरा ध्यान देना चाहिये।"

मनहर हँस पड़ा, बोला—नौकरी की आशा भी कहां है बहिन ! आखिर एक दिन मुझे भी खेती ही करनी पड़ेगी देख लेना ?"

प्रभात बोला—"तुम एक दम बदलते जा रहे हो मनहर ! बहुत रूखे से हो गये हो।"

"रूखे—"कहता हुआ मनहर हँस पड़ा—बोला—"आज कल जहां जाता हूँ लोग बड़ी रुखाई से पेश आते हैं। मुझसे कहते हैं—'नहीं भाई, हमारे यहां कोई जगह खाली नहीं न कभी होने की आशा है। कोई और दरवाजा खटखटाओ।' हो सकता है यह सब सुनते सुनते मैं भी कुछ रूखा हो गया होऊँ कुँवर ! और मेरे जीवन में इसके सिवा और किसी हरियाली की आशा भी तो नहीं है। एकदम रूखा गर्म-रेत, सुनसान जीवन—और······

सुरला घबरा कर बोली—"सुनो मनहर ! देखो तो तुम्हरी इन बातों से यहां का वातावरण कैसा उदास हो गया है। मेरा जी घबराने लगा है। हम चारों तो सदैव हंसने के लिये ही यहां इकट्ठे होते रहे हैं। आज तुम में यह नई बात क्यों ?"

मनहर ने ठंडी सांस लेते हुए कहा—"सदा हँसना किससे हो सकता है सुरला ! हमारे हँसने के दिन बीत गये। अपने को आगे बढ़ाने के

लिये दुनिया से संघर्ष करने के दिन आये हैं। अब हँसना हँसाना कैसा ?"

मुरला प्रार्थना भरे स्वर में बोली—"मुझे एक गीत सुना दो मनहर ! ईश्वर के लिये अपनी यह बातें कुछ देर के लिये बन्द कर दो।"

मनहर गाने लगा—

नशेमन्द न जलता निशानी तो रहती,
हमारा था क्या ठीक रहते न रहते।
कोई नक्श और कोई दीवार समझा,
जमाना हुआ हमको चुप रहते रहते;
जमाना बड़े शौक़ से सुन रहा था,
हमीं सो गये दास्तां कहते कहते ॥

मनहर के इस व्यथित स्वर से वह तीनों और भी उदास हो गये। मुरला नाख़ुश होकर बोली—"सबको रुला देने में मनहर एक नम्बर है, हँसाना बेचारे से हो ही नहीं सकता।"

इस बार मनहर भी जल गया। जिस लड़की के लिये वह तिल तिल करके अपने को चुपचाप मिटाये दे रहा है, उसी के मुँह से उसके लिये ऐसा व्यंग्य—बिगड़कर बोला—

"मुरला, तुम राजा के घर में रहती हो, तिस पर खुद भी एक गांव और कितनी ही जमीन की मालकिन हो। तुम्हें चारों तरफ़ सुख ही सुख नज़र आ रहा है। किसी ग़रीब के कष्टों को तुम क्या जानो, और अगर वह कहे भी तो तुम सुनना ही क्यों चाहोगी।"

मुरला चौंक पड़ी—उसे याद आया, मनहर जब तब उस पर ऐसा कई बार व्यंग्य कसता रहता है, जलकर बोली—

"गांव की मालकिन होने के लिये मैं नहीं—भगवान् दोषी है। रही राजा के घर में रहने की बात, सो तुम कई बार सुना चुके हो। ठीक से कहो, तुम्हारे इस कहने का असली मतलब क्या है ? मैं आज कुछ नई तो इस घर में आई नहीं हूँ।"

"तुम में नया केवल अभिमान ही हुआ है मुरला ? और मैं···"

प्रभात ने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—

"छिः—बात-बात में झगड़ा कर लेने की तुम दोनों की पुरानी आदत आज भी ज्यों की त्यों है। मुरला, तुम सचमुच बहुत बढ़ जाती हो, यह उचित नहीं। मनहर जरूर आजकल कुछ दुःखी है। तभी ऐसी जली और सख्त बातें उसके मुँह से निकल जाती हैं।"

मुरला बोली—"तुम सदा मनहर का पक्ष लेकर, उसे ऐसी बातें करने के लिये बढ़ावा देते रहते हो। हम अमीर हैं, मनहर गरीब, इस बात को लेकर इन्होंने आज कुछ हमें नया जलील नहीं किया है। समझ में नहीं आता, इनकी गरीबी के लिये मैं ही कैसे दोषी हुई हूँ। रईसों को जब हमारी सरकार ने खत्म किया था, तो इन्होंने जरूर घी के दीये जलाये होंगे। अब सदा सुनाते रहते हैं, रियासतें गईं, जमींदारी भी गई समझो, सो जाये; हमें सुनाने से फायदा।"

मनहर ने भृकुटि चढ़ा कर कहा:—

"निश्चय मुरला ! रियासतें खत्म हुईं जिस दिन, उस दिन एक मैंने ही नहीं, हिन्दुस्तान के लाखों गरीबों के घर में घी के दिये जले होंगे। जिनका लहू चूसकर रियासतें चैन की सांसे ले रही थीं। रईसों को अधिकार क्या था गरीबों के सिर बैठकर खाने का।

"अधिकार था नहीं कैसे ? उनके बाप-दादा ने इन रियासतों की नीवें, अपने खून से सींची थीं। तब क्या अधिकार तुम जैसे आवारों को दे देते।"

मनहर की आँखें क्रोध से 'भक' से जल उठीं—वह कड़ी बात कहने ही वाला था कि प्रभात ने उसके ओठों पर अपनी उँगलियाँ रखते हुए कहा, "छी, मनहर ! जरा-सी लड़की से इस तरह लड़ते तुम्हें शर्म भी नहीं आती ?"

"और यह जरा-सी लड़की मुझे आवारा कह रही है सो कुँवर ?"

मुरला तड़प कर बोली—"जब-जब बढ़कर बोलोगे तभी मैं तुम्हें आवारा कहूँगी मनहर !

प्रभात शान्त स्वर से बोला—"तुम कहती तो ठीक हो, रईसों के अधिकार की बात। पर यह अधिकार उन्हें तभी था, जब वह अपनी ग़रीब प्रजा को सन्तान की तरह चाहते थे। उनके सुख-दुख का बराबर ध्यान रखते थे। आज की तरह कर्मचारियों की हाथ की कठपुतली सा यह राजा जनता को नहीं चाहिये जिसे यहां तक पता नहीं कि उसकी प्रजा पर क्या बीत रही है क्या नहीं।"

फिर चारों उठकर अपने-अपने घर चले गये।

: ३ :

सुबह बाग़ में मुरला टहल रही थी, मनहर पास आकर बोला—

"कल तुम जरूर नाराज हो गई होगी मुरला !"

मुरला ने मनहर के उतरे हुए मुख की तरफ़ ग़ौर से देखा—फिर कहा—"नहीं तो मनहर ? आओ अन्दर चलो।"

"मेरे साथ जिज्जी भी है—फिर आकर बैठूंगा, । अब चलता हूं मुरला ! कुँवर तो शिकार गये होंगे।

"हां···वह तो शिकार गये हैं—आओ एक मिनट के लिये तो आओ, मौसी को प्रणाम नहीं करोगे क्या ?"

मनहर उसके साथ चल पड़ा। जमींदार गृहिणी उसे देखकर बोलीं—"आज सूर्य किधर से निकला था मनहर ! जो तुम इस घर में आये हो।"

मनहर उनके चरण छूता हुआ बोला—"यह क्या कहती हो काकी ? पिछले इतवार को तुम्हारे पास बैठकर खा-पी गया हूँ। इतनी जल्दी भूल गई क्या ?"

"नहीं भाई। इस बार की छुट्टियों में तुम ठीक से मेरे पास नहीं आये, यह बात मुझे बराबर चुभती रहेगी।"

फिर मुरला की तरफ़ देखकर बोली—"चाय मंगा न मुरला ? खड़ी क्या है ?"

मुरला ने चाय लाने के लिये एक दासी को इशारा किया। मनहर भी एक मोढ़े पर बैठकर गप्पे लड़ाने लगा। चाय पीते-पीते उसे ख्याल

था और वह बोला, "अरे मुरला ? बिज्जी ड्योढ़ी पर ही खड़ा रह गया, बुलाओ जल्दी उसे।"

बिज्जी ने आते ही पहिले जमींदार गृहिणी को प्रणाम किया। फिर धप्प से एक मोढ़े पर बैठता बोला—"अमां लानत है तुम पर मनहर ! यहां मजे से बैठे चाय पी रहे हो। उधर बन्दा ड्योढ़ी पर खड़ा तुम्हारी जान को रो रहा था।"

मुरला मुस्कराती हुई बोली—"अच्छा बिज्जी, पहिले यह बताओ, तुम ड्योढ़ी पर खड़े क्यों रहे, अन्दर क्यों नहीं चले आये ?"

बिज्जी हाथ नचाकर बोला—"जलालत है, मैं क्या वहां जान-बूझ कर खड़ा था जीजी ? यही महाशय खड़ा कर आये थे। कहते थे कि तुम अन्दर जा कर गप्पों में लग जाओगे, मैं एक मिनट में लौटा आता हूँ, यहीं खड़े रहो।"

जमींदार गृहिणी हँसती हुई बोलीं—"यह तो बिज्जी के साथ बड़ा अन्याय हुआ है मनहर ?

बिज्जी बोला—"फिर आपकी ड्योढ़ी पर ही काकी ? इसी को कहते हैं दिया तले अन्धेरा।"

मनहर ने कहा—"चुपचाप चाय पी लो देर हो रही है।"

बिज्जी चाय पीने लगा। इसी तरह एक वर्ष बीत गया। बी० ए० पास करके मनहर नौकरी की तलाश में लग गया।

रामा काकी ने गर्म-गर्म फुलका मनहर की थाली में रखते हुए कहा—"बी०ए० पास कर लिया फिर भी तू जैसे खुश नहीं है रे ! आखिर तेरी इस उदासी का कारण कुछ तो मुझे भी मालूम होना ही चाहिए मनहर ?

मनहर हँसने का प्रयत्न करते हुए बोला—"तुम्हीं तो कहा करती हो काकी ? ग़रीबी में मनुष्य कभी प्रसन्न नहीं रह सकता।"

"सो तो मैं झूठ नहीं कहती बेटा ? पर तू तो ऐसा ग़रीब नहीं है। खाने-पीने की तुझे तो कोई चिन्ता नहीं है।"

"वह तो तुम जब तक जीयोगी काकी ? मुझ कभी खाने-पीने की चिन्ता नहीं होने दोगी। पर अब मैं कुछ बच्चा तो हूँ नहीं, सब समझता हू। तुमने स्वयं फाके रखकर भी मुझे दोनों समय भर पेट रोटी खिलाई है। मेरी इस कालिज की पढ़ाई ने तुम्हारे खेत-जमीन सब बन्धक रखवा दिये हैं।"

रामा चौंकी—उसकी थाली में रायता परोसती हुई बोली—"मालूम होता है, मेरे किसी दुश्मन ने तेरे कान भरे हैं। जरूरत पड़ने पर हर एक जमींदार अपने खेतों को बन्धक रखता है। यह तो जमींदारों में एक रिवाज-सा है। इसके लिये मैंने आज तक न तो किसी को दुखित होते देखा है, न लज्जित। इस सारे वर्ष गेहूँ-चना चावल-ईख सब अच्छे हो गये तो खेत छुड़ाते देर क्या लगती है। भले गृहस्थों में सभी को वक्त बे वक्त ऐसा करने की जरूरत पड़ जाती है। कोई तेरी तरह रोने नहीं बैठ जाता।"

"रोने तो मैं भी नहीं बैठा काकी ? पर..."

"पर-पर—क्या रे ? अजीब लड़का है तू—मैं चाहती थी आज तुझसे तेरे ब्याह की बात करती, पर तू जाने कहाँ का रोना लेकर बैठ गया ?"

मनहर ने खाते-खाते मुँह उठाकर उसकी तरफ़ देखा और कहा—"अभी तो मेरे खिलाने की फिक्र में तुम्हें हफ्ते में दो-चार ही फाके करने पड़ते हैं काकी ? एक दूसरी के आ जाने से फिर तुम्हें हफ्ता भर रोटी नसीब न होगी, कहे रखता हूँ।"

इस बार वह नाराज होकर बोली—"किसी एक दिन घर में पिसा अनाज न होने के कारण शायद मैंने रोटी न खाई हो। बस, तू उसकी अच्छी खासी एक कहानी गढ़कर बैठ गया। और फिर जो आयेगी, उसका नसीब क्या उसके साथ न होगा मनहर ?"

"नसीब तो जरूर उसके साथ होगा ? पर यह अभी से कैसे कहा

जा सकता है काकी कि उसके नसीब में हमारे नसीब से कुछ ज्यादा अच्छा विधाता ने लिख दिया होगा। तुम्हें..."

मनहर खा चुका था। यह देख रामा ने उँगली से उसे जाने का इशारा करते हुए कहा—"क्यों रे पापी ? आज तू मुझे कोसने पर तुला है। निकल मेरे चौके से। नहीं तो ऐसा धरु ँगी, रोता फिरेगा।"

मनहर हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ। फिर हाथ धोकर बोला—"नाराज मत हो काकी ? अगर नौकरी मिल गई, तो तुम शौक से घर में बहू ले आना। नहीं तो नहीं।"

यह कहता हुआ वह घर से बाहर हो गया। रामा सोचने लगी—"जब दूसरे के दुःख से इसकी आँखें भर आती हैं, तब मेरी मुसीबतें यह कहाँ सहन कर सकता है। सब बातें इतना छिपाकर रखती हूँ, पर इसे टोह मिल ही जाती है। फिर मुँह लटका कर बैठ जाता है।"

इसी समय डाकिये ने पुकारा—"मनहर भैया ? घर में हो क्या ?"

रामा ने तवा उतार कर आँचल से हाथ पोंछते हुए दरवाजे के पास आकर कहा—

"अभी-अभी बाहर चला गया है। क्या बात है शंकर ?"

वह बोला—"भैया के नाम की रजिस्ट्री है। नाहरपुर से किसी मास्टर साहेब ने भेजी है। आप दस्तखत करके ले लो बहूजी ?"

रामा ने दस्तखत करके वह रजिस्ट्री ले ली। फिर उसे मनहर की किताबों पर रखती हुई अपने घर के धन्धे में लग गई। रात को जब मनहर नाहरपुर से लौटा और खा-पीकर बिस्तर पर जा लेटा। तब जैसे रामा को उस रजिस्ट्री की बात याद आई बोली—"एक रजिस्ट्री है मनहर ! तेरी पुस्तकों पर रखी है। पढ़ तो भैया कहाँ से आई है ?"

कहती हुई रामा अपनी कोठरी की तरफ चली गई। मनहर ने रजिस्ट्री खोलकर पढ़ी। फिर सुन्न मुन्न उसी तरह बिस्तर पर पड़ा रह गया।

रामा पुकार कर बोली—"तू ने पत्र पढ़ लिया मनहर।"

"हाँ, काकी।"

"किसका है?"

"मास्टर साहेब हैं कोई। उन्हीं का है—रेवा कौन है काकी?"

"मेरी भाँजी है। क्यों?"

"उसी के लिये मास्टरजी ने लिखा है। आकर रेवा को ले जाओ।"

ताबड़तोड़ मनहर की कोठरी में आकर घबराई-सी वह बोली—"क्यों जीजी और जीजाजी कहाँ है। रेवा को मैं क्यों ले आऊँ भला।"

मनहर की आँखें भर आईं। बोला—"मौसा-मौसी अचानक बीमार हो गये थे। यहां शहर में आकर इलाज करा रहे थे। पर......रेवा अब अकेली रह गयी है।"

रामा सब समझ गई। माथे पर हाथ मारकर वह वहां जमीन पर बैठ कर बिलखने लगी। मनहर रोता हुआ उससे चिपट गया। बोला—"काकी? चुप हो जाओ। मैं तुम्हारे इन आंसुओं को सचमुच नहीं देख सकता।"

रामा ने अपने आँसू पोछ डाले और मनहर को छाती से लगाये बैठी रही गुम सुम।

मनहर ने उठकर मुँह हाथ धुलाया। फिर उसके पलंग पर जाकर लिटा दिया और उसके पैर सहलाता बोला—"सोने का प्रयत्न करो काकी। सुबह मैं रेवा को तुम्हारे पास ले आऊँगा।"

रामा उसके सिर पर हाथ फेरती बोली—"यही ठीक रहेगा बेटा! जा अब तू सो रह। मैं सो जाऊँगी। तू जा।"

"रोओगी तो नहीं?"

"नहीं, रे नहीं। तू जा सो रह जाकर। दिन भर का थका मांदा है।"

मनहर जाकर बिस्तर पर पड़ गया।

दूसरे दिन सुबह ही अपनी काकी का पत्र लेकर मनहर शहर पहुँचा मास्टरजी का घर उसे जल्दी मिल गया। नौकर ने बाहर के कमरे में उसे बिठाकर अन्दर खबर कर दी। मास्टर जी का लड़का उससे मिला। हाथ मिलाने के बाद वह मीठे शब्दों में बोला—"बैठिये साहेब! पिता जी तो स्कूल चले गये हैं।"

मनहर कुर्सी पर बैठता बोला—"मैं काकी का पत्र लेकर आया हूँ। रेवा के लिए......।

कहते हुए उसने जेब से पत्र निकाल कर उसके हाथ पर रख दिया। वह पत्र लेकर अन्दर चला गया। थोड़ी देर बाद आकर बोला—"रेवा जीजी अभी आ रही है। आप चाय पीकर जाइयेगा। मैं तो स्कूल जा रहा हूँ।"

मनहर बोला—"आप स्कूल जाइये। मेरा फ़िक्र मत कीजिये। मैं अपने घर में बैठा हूँ......।"

लड़का चला गया। मनहर अपने विचारों में मग्न हो गया। रेवा चिक उठाकर धीरे से अन्दर आ गई। पर मनहर का ध्यान भंग नहीं हुआ। वह उसी तरह गुम सुम बैठा रहा। रेवा चकित हो गई। फिर जरा खाँसते हुए उसने गले में आँचल डाल, धरती पर माथा रखते हुए कहा—"मैं......मैं रेवा हूँ। हमें यहाँ से कब चलना होगा।"

मनहर चौंक पड़ा और खड़ा होकर रेवा की तरफ देखने लगा। देखा, रंग सांवला है, पर ऐसा साफ और सुन्दर है कि देखते ही बनता है। एकहरा बदन, क़द लम्बा है। आँखें बहुत सुन्दर, लम्बी आम की फांक सी। एक क्षण में वह उसे अच्छी तरह देख गया। फिर आँखें झुका कर बोला—"तुम चाहो तो अभी चल सकते हैं। पर इस समय मास्टर साहब तो स्कूल जा चुके हैं। उनके वापिस लौटने पर ही जाना हो सकेगा। कब तक वह लौट आते हैं।"

"कोई साढ़े चार बजे तक ?"

"अच्छा तब तक मैं अपने काम से बाजार वगैरह हो आता हू ।"

"अच्छा ।"

मनहर चला गया । रेवा जाकर अपने कपड़े वगैरह समेटने लगी ।

दूसरे दिन ठीक दोपहर के समय, मन्दिर की सीढ़ी पर बैठी महाश्वेता भगवान के लिये बड़े-बड़े फूलों के गजरे गूंथ रही थी ।

अचानक प्रभात आकर बोला—"अरे... इस वक्त भी मन्दिर के द्वार पर ही जमी हो । मैं तो अपनी तरफ़ से यहाँ एकान्त समझ कर ही आया था ।"

अस्त-व्यस्त आँचल को ठीक से ओढ़ती हुई महाश्वेता बोली—"अकेले में चोरी-चोरी भगवान से क्या कहना चाहते हो। यही जान लेने के लिये मैं यहाँ बैठी थी और फिर भेंट-पूजा के समय पुजारी का होना जरूरी भी तो होता है कुँवर ?

"ओहो, क्या कहने ? बड़ी पुजारिन बनी। ला मैं यह चला । तुझ सी चुड़ैल के आगे मैं कुछ न कहूँगा ।"

महाश्वेता भृकुटि चढ़ाकर बोली—"अच्छा तो तुमने मुझे चुड़ैल कहा और उस दिन सबको शिक्षा दे रहे थे—महाश्वेता को देवी कहकर सम्बोधन करना चाहिये ।"

प्रभात हँसता हुआ बोला—"दुनिया चाहे तुम्हें महादेवी भी कहने लगे । पर हम तीनों से तो महाश्वेता 'जी' भी कहते नहीं बनेगा ।"

महाश्वेता प्रसन्न होती हुई बोली—"यही तो होना चाहिये कुँवर ! आखिर मेरे जीने के लिए भी तो किसी का सहारा होना चाहिए । तुम तीनों के स्नेह के बल पर ही मैं सोचती हूँ, मेरा भी कोई है । नहीं तो बाबा तो दिन-रात यही पढ़ाते रहते हैं । तू मनुष्य से बहुत ऊँची है, बहुत महान् । तेरा मनुष्य से क्या सम्बन्ध । तू देवता की वस्तु है......।

"महात्मा शायद ठीक ही कहते हों महाश्वेता ? पर......अच्छा अब चलता हूँ।"

महाश्वेता व्यस्त होकर उठ खड़ी हुई, बोली—"यह क्या ? बिना प्रसाद लिये ही मन्दिर से खाली हाथ लौट जाओगे कुँवर ! तुम अन्दर जाकर प्रार्थना करो, मैं अभी प्रसाद लिए आती हूँ। अरे ! जाओ भी, मैं नहीं सुनूँगी, विश्वास करो।"

प्रभात हँसता हुआ अन्दर चला गया। महाश्वेता तेज कदमों से महात्माजी की कोठरी में घुसी। वह इस वक्त बैठे गीता पाठ कर रहे थे चारणी मां और कई एक गांव के बैठे लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे। महात्मा चकित होकर बोले—"ऐसा क्या पा गई बेटी ! बहुत प्रसन्न नजर आ रही हो।"

क्षण भर में जैसे फूँक मारकर जलती हुई दीपमाला को किसी ने बुझा दिया हो ऐसा अँधेरा मुँह हो गया। देवदासी का सुन्दर मुँह स्याह पड़ गया, बुझी सी बोली—"प्रसन्न······नहीं तो बाबा ! मैं तो आपसे कुँवर के लिये प्रसाद लेने आई थी।"

"प्रसाद"—कहते हुए बाबा ने सामने की चौकी से थोड़ी-सी कलाकन्द उठाकर एक चांदी की तश्तरी में रख उसकी ओर बढ़ाते हुए पूछा—"इस असमय कुँवर यहां कैसे ?"

झटपट महाश्वेता बोली—"मुरला जीजी को खोजने आये थे।" सन्तुष्ट होकर महात्मा बोले—"जाओ ले जाओ।"

महाश्वेता प्रसाद लेकर लौट चली। वह सोच रही थी, "यह क्या ? मैं बाबा के सामने झूठ क्यों बोली—कुँवर ने तो नहीं कहा था कि 'मैं मुरला को खोजता यहां आया हूँ।' उन्होंने तो कहा था, प्रार्थना करने आया हूँ। तब मैं......मैं।"

प्रभात बोला—"अरे ! चींटी की चाल चली आ रही हो। यहां तो हम प्रसाद से ही निराश हो चले थे, लाओ दो जल्दी।

महाश्वेता उसके हाथ पर तश्तरी रखते हुए बोली—"भगवान के "प्रसाद' से कोई निराश नहीं होता कुँवर !"

हाथ पर रखकर प्रभात ने कलाकन्द खाई। तश्तरी महाश्वेता को वापस कर दी और बोला—"अब चलता हूँ महाश्वेता ?

"अच्छा" कहते हुए वह फिर माला बनाने बैठ गई, प्रभात चला गया।

उधर चारिणी मां बोली—"आज्ञा हो तो एक बात निवेदन करूँ बाबा।"

"कहो न बेटी !" कहते हुए महात्मा ने ग्रन्थ बन्द कर दिया। गांव के लोग जा चुके थे। चारणी बोली—"महाश्वेता अभी बच्ची है, उस पर इतना नियंत्रण उचित नहीं।

महात्मा गावतकिये से पीठ टेकते हुए बोले—तुम शायद ठीक कहती हो बेटी ! पर मेरी यह अभिलाषा भी तुमसे छिपी नहीं है। मैं चाहता हूँ महाश्वेता वेदों में वर्णित देवदासी की तरह पवित्र, उज्ज्वल चरित्र तथा महान् बने। आज की दुनिया जिन दुर्गुणों के कारण देव-दासी के चलन से घृणा करने लगी है, उन दुर्गुणों की छाया भी मैं महाश्वेता के निकट सहन नहीं कर सकता। पूजा के फूल-सी पवित्र तन और मन से स्वच्छ मेरी महाश्वेता केवल भगवान कृष्ण की अपनी वस्तु बने। राधेश्याम ही उसके सर्वस्व हों, कठिन साधना से महाश्वेता में एक दिन ऐसी शक्ति आ जाये चारणी कि जिस रोगी को वह छू दे वह रोग मुक्त हो जाय। इसकी आँखों में एक ऐसी पवित्र ज्योति जग-मगा उठे कि जो इसके सामने वासना मन में लेकर खड़ा हो, वह इसके देखते ही भस्म हो जाये। चारणी ! साधना से यह सब कुछ सम्भव है बेटी ?

चारणी ने भगवान के उद्देश्य से धरती पर माथा रखते हुए कहा—"मंगलमय आपकी इस अभिलाषा को पूर्ण करेंगे बाबा ?"

ठीक उसी समय मन्दिर का घण्टा बजा। अच्छा सगुन समझ कर महात्मा मुस्करा दिये।

: ४ :

प्रभात को इङ्गलैण्ड गये छः महीने बीत चुके हैं। मुरला बहुत उदास रहती है और जब तब अपनी मौसी से पूछती रहती है—"डाक्टरी सीखने की कुँवर को जरूरत क्या थी ? और जब डाक्टरी ही सीखनी थी, तो बम्बई में रहकर सीखते। वहां उन्हें एकदम अकेला इतने वर्षों के लिये क्यों भेज दिया मौसा ने ?"

जमींदार गृहिणी इस लड़की के दर्द से व्यथित हो उठतीं। उसे कलेजे से लगाकर कभी तो रो देतीं, कभी कहतीं—"जा बेटी, बैठकर पढ़, नहीं तो मास्टर जी बिगड़ेंगे। रोज रोज तेरी एक ही बात का मैं क्या उत्तर दूँ ? बताओ :······"

वह चुपचाप अपने कमरे में जाकर पढ़ने लगती। एक दिन नदी तट पर दोनों सखियां मिलीं। महाश्वेता ने पूछा—"कुँवर पत्र तो लिखते हैं न मुरला जीजी ?"

"हाँ महाश्वेता ! बहुत लम्बे-लम्बे—तुम्हारे और मनहर की भी अनेक बातें होती हैं उसमें। एक तो आज ही आया है। पढ़ोगी।"

कहते हुए उसने मुट्ठी में रखे पत्र को महाश्वेता के हाथ पर रख दिया। वह दम साधकर एक ही सांस में वह पत्र पढ़ गई और फिर पत्र मुरला को लौटाते हुए बोली।

"ओह—कितना प्यार करते हैं वह तुम्हें जीजी ? मैं सोचते भी भय खाती हूँ। तुम्हें खोकर उनकी दशा क्या हो जायेगी ?"

मुरला चौंक पड़ी—बोली—"यह क्या कहती हो महाश्वेता।"

महाश्वेता स्थिर कण्ठ से बोली,—"मैं ठीक कहती हूँ मुरला जीजी ? हो सके तो कुँवर को फौरन बृजपुर वापिस लौटने के लिये लिखो।"

मुरला ने सिर हिलाते हुए कहा—"असम्भव...यह बात बिल्कुल असम्भव-सी है महाश्वेता ! पहिले तो वह मौसा की आज्ञा बिना वहां से हिल ही कैसे सकते हैं। और दूसरे...मेरे पत्र...मौसा...जरूर पढ़ लेते हैं, यह मुझे किसी तरह मालूम हो गया है।"

महाश्वेता दबी जुबान से बोली—"तब बाबा ठीक ही कहते थे, जमींदार ने पढ़ने के बहाने कुँवर को यहां से दूर कर दिया है। और अब मुरला का सम्बन्ध बासीपुर के जमींदार से तय कर रहे हैं।"

मुरला को जैसे काठ मार गया हो—उसका मुँह कागज की तरह सफ़ेद पड़ गया, ओठ कांपने लगे। बोली—"नहीं...मौसा...ऐसा क्यों करेंगे ? मौसी ऐसा नहीं होने देंगी। वह जानती हैं कि कुँवर मुझ से ब्याह करना चाहते हैं, उन्होंने इन लोगों को बताने के लिये ही तो मुझे यह अँगूठी उस दिन पहिना दी थी।"

"परन्तु बासीपुर वालों से सम्बन्ध तय हो गया है मुरला जीजी ? सारा गांव इस बात को जानता है।"

मुरला स्तब्ध बैठी नदी की ओर ताकती रही। बहुत देर बाद महाश्वेता ने उसे हिलाते हुए कहा—"उठो...जीजी ! अन्धेरा होता चला।"

मुरला—"हां चलो"—कहती हुई उठ खड़ी हुई।

घर आकर वह चुपचाप अपने कमरे में आकर पड़ गई। अपने हृदय की व्यथा वह किससे कहे ? यहां कौन है उसका ? मौसी, नहीं मौसी भी तो मौसा से अलग होकर नहीं चल सकती। जो उनसे अलग होकर चलने की क्षमता रखता था, वह इस वक्त सात समुद्र पार बैठा है।

मुरला के मां नहीं है, बाप भी नहीं है। उसके लिये दर्द क्यों होगा

किसी को ! अपना-अपना स्वार्थ देखते हैं दुनिया वाले । अगर एक अनाथ, निरीह बालिका का दिल चकनाचूर हो भी जाये तो किसे फ़ुरसत है कि घूमकर उसकी तरफ़ देखे। मुरला जैसी अनेक रोज जीती-मरती रहती हैं।

मुरला की बूढ़ी धाय, जिसने इसे पाल-पोस कर बड़ा किया है, मन ही मन मुरला के इस सम्बन्ध से खुश नहीं है। गौरी की भी यही आकांक्षा थी। मुरला का ब्याह प्रभात से हो, पर एक गरीब नौकरानी की आवाज ही क्या ! फिर जमींदार के सामने मुरला को तेजी से अपने कमरे की तरफ़ जाते देख गौरी हाथ का काम एक ओर करती हुई उसके कमरे में गई। देखा, मुरला अपने बिस्तर पर औन्धी पड़ी फूट-फूट कर रो रही है।

पास जाकर वह बोली—"क्या हुआ बेटी ? कांपते कण्ठ से मुरला बोली—"क्या यह सच है गौरी माँ ? मौसा मेरा ब्याह बासीपुर कर रहे हैं।"

गौरी सन्न हो गई। इस प्रश्न का उत्तर उसे ही देना होगा। यह उसने नहीं सोचा था। बोली—"किसी न किसी जगह तो ब्याह की बात करनी ही थी बेटी ? तब बासीपुर का तो वंश, जमींदारी सब कुछ बहुत ऊँचा बताते हैं।"

मुरला तड़पकर उठ बैठी। बोली—"यह तुम कह रही हो गौरी मां ? मेरे मन की बात क्या तुम से छिपी है, कहो तो।"

गौरी की आँखें भर आईं। बोली—"तुम्हारे मन की बात एक मुझ से ही नहीं, इस घर में किसी से छिपी नहीं है बेटी ? तुम दोनों की सुन्दर जोड़ी देखकर गांव वालों की आँखें ठण्डी होती थीं। पर तुम्हारे मौसा तो धन के पीछे दीवाने हैं। पुत्र की कीमत बस बारह लाख रुपया ले रहे हैं, सो तुम कहाँ से दोगी बेटी ? जाती हूँ शायद मालकिन बुला रही हैं। देखूं......।"

और वह बहाने से मुरला के सामने से हट गई। मुरला प्रभात के चित्र को कलेजे से लगाती हुई बोली—"तुमसे अलग होने की तो कभी कल्पना की ही नहीं थी। समझ में नहीं आता। यह सब मैं कैसे सहूँगी। तुम तक खबर भेजने का कोई उपाय मेरे पास नहीं है। मेरे सब पत्र खोल लिए जाते हैं। पर एक दिन शायद तुम मेरी आज की इस विवशता पर विश्वास ही न कर सको। मुझे विश्वासघातिनी समझकर घृणा करने लगो। आह......मैं तो बेमौत ही मर गई। प्रभात, तुम्हारे पिता को मेरे लिए तो कोई दर्द नहीं था। पर तुम्हारे दर्द का भी उन्होंने ख्याल नहीं किया। प्रभात...!

और वह चित्र पर मुँह रखकर फिर सिसक उठी।

थका, टूटा मनहर घर के आँगन में घुसा। रेवा तुलसीचौरे पर दिया जला रही थी। मनहर को देख उसने चटपट गले में आँचल डाल तुलसी माँ को प्रणाम किया और चौरे से नीचे उतर आई।

तब तक मनहर आँगन में पड़ी एक खाट पर लेट चुका था। थोड़ा इधर-उधर करने के बाद रेवा उसके पास जाकर बोली—"बहुत थक गये लगते हैं।"

मनहर एक ठण्डी साँस लेता बोला—"हाँ रेवा! आज रोज से कुछ ज्यादा ही थक गया हूँ। क्या करूँ, इतना पैर तोड़ने पर भी कामयाबी का मुँह कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा है। क्या उम्रभर इसी तरह नौकरी की तलाश में मुझे मारे-मारे फिरता रहना होगा।"

रेवा बोली—"थोड़ी देर के लिये इन बातों की चिन्ता छोड़ दीजिये। उठकर हाथ-मुँह धो डालिये मैं आपके लिए चाय तैयार किये लाती हूँ।"

"अच्छा, अभी उठता हूँ रेवा? काकी कहाँ है?"

"जमींदार साहेब के यहां कथा सुनने गई हैं। अब आती ही होंगी।" यह कहती हुई वह रसोईघर में जाकर चाय बनाने लगी। मनहर मुंह-

हाथ धोकर जब आँगन में लौटा तो मारा आ चुकी थी। रेवा ने एक तिपाई पर केतली और प्याला रख दिया। फिर एक तश्तरी में ताजी भुजिया बनाकर ले आई।

मनहर बैठकर खाने लगा। रामा स्नेह से उसकी पीठपर हाथ फेरती हुई बोली—"ऐसा सुन्दर रंग तेरा, कैसा सांवला पड़ गया रे मनहर? तू क्यों इस तरह मारा-मारा फिरता है रे। हम तीनों के लिये खाने भर को तो बहुत है बेटा? फिर खेती-बारी में तू जरा दिलचस्पी ले तो यही उपज दूनी हो सकती है। अपने घर दाल-रोटी का तो कोई घाटा नहीं है मनहर।"

"यही तो काकी? मेरा मन यह मानने को तैयार नहीं कि जीवन का ध्येय केवल दाल-रोटी ही है।"

रामा गवंई-गांव की सीधी स्त्री थी। उसकी समझ में नहीं आया। घर बैठे इज्जत से अगर दाल-रोटी मनुष्य को मिल जाये तो फिर इससे ज्यादा वह और क्या चाह सकता है।"

बोली—"तेरी बातें मेरी तो कुछ समझ में आती नहीं मनहर! दाल-रोटी से ज्यादा......"मनहर उसकी बात काटता हुआ बोला— "काकी! तुम्हारी समझ में आये कैसे। कभी बूजपुर छोड़कर बाहर तो तुम निकलीं नहीं, बाहर निकलो तो पता लगे। आजकल इस दाल-रोटी के साथ मनुष्य के कैसे दो-दो हाथ हो रहे हैं। केवल इसीलिये कि मनुष्य अपने जीवन का इसे ध्येय ही समझ बैठा है।"

"न समझे तो करे क्या? इसे न पाने के कारण ही तो लोग भूखे मरने लगते हैं।"

"पर क्यों? केवल यहीं तक हम क्यों सोचते हैं। इस समस्या के हल होते ही हम अपने को परम सुखी क्यों समझने लगते हैं? दूसरे देशों में तो ऐसा नहीं है काकी! यह मानता हूँ, हमारा भारत बहुत अर्से से गरीब चला आ रहा है। पर आज की तरह इसे पहिले कभी

अन्न-वस्त्र और ठिकान के लिए इस तरह नहीं तरसना पड़ा। देश के टुकड़े हो जाने से इसकी और भी दुर्दशा हो गई है। इधर अन्न की उपज थोड़ी है और आदमी चौगुने बढ़ गये हैं। हमारी गवर्नमेण्ट करे भी क्या? कहाँ तक हमें दूसरे देशों से मांगकर खिलाये?"

अब तक रेवा चुपचाप रसोई के द्वार पर खड़ी मनहर की बातें सुन रही थी। रामा को उत्तर न देते देख धीरे से बोली—"इसके लिए उपाय है तो?"

चौंककर मनहर ने उस सुन्दर सांवली मूर्ति की ओर देखा और पूछा—"क्या उपाय है रेवा?"

"वही जो हमारे नेतागण अपने भाषणों में नित्य बताते रहते हैं। भारत के हर नौजवान को चाहिये नौकरी का ख्याल छोड़कर अन्न की उपज पर ध्यान दे, किसान बने। तभी भारत से अन्न कष्ट दूर होगा।"

रामा मुस्कराती हुई बोली—"रेवा बिलकुल ठीक कहती है बेटा?"

सकपका कर मनहर बोला—"रेवा कहती तो ठीक है। पर हर एक के बूते की तो खेती-बारी होती नहीं काकी? शहर के नौजवान इसके नाम से घबराते हैं। नौकरी के इन्तजार में उम्रभर भूखे मरते रहेंगे। पर खेती-बारी नहीं करेंगे।"

रेवा बोली—"वह तो शहर के हैं, इसलिए उनकी यह बात क्षम्य हो सकती है। पर आप तो गांव के हैं। आप इस काम से क्यों घबराते हैं?"

रामा बोली—"मुझे हराना सीखा है तू। अब रेवा की बातों का उत्तर दे।"

मनहर ने चाय का प्याला खत्म कर तिपाई पर रख दिया फिर रुमाल से मुँह पोंछता हुआ बोला—"सुनो रेवा? मैं पहिले ही कह चुका हूँ, मनुष्य के जीवन का ध्येय केवल दाल-रोटी तक ही सीमित नहीं है। इससे अलग और भी बहुत से

काम उसे करने हैं, देश के दूसरे कामों में भी उसे भाग लेना चाहिये। जैसे कि स्वतन्त्र देश के सभी लोग करते हैं। आज हम भी गुलाम नहीं हैं किसी के, स्वतन्त्र हुए हैं पर ऐसा जैसे अभी तक हम महसूस ही नहीं कर पा रहे हैं। क्यों? सो मेरी समझ में नहीं आता। यह तो वही हिसाब हुआ जैसे पक्षी को बहुत दिन पिंजरे में बन्द रखो फिर उड़ाना चाहो तो वह उड़ता नहीं है और फड़फड़ा कर पिंजरे के पास लौट आता है। उसी तरह हम आज भी एक-दूसरे के भरोसे पर जीना चाहते हैं। तकलीफ या जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं, हम झल्ला कर कह देते हैं—भई क्या बतावें, हमारी गवर्नमेण्ट का इन्तजाम ही खराब है, कमबख्त कोई काम ढंग से नहीं होता। पर इन्तजाम कर कौन रहा है, हमारे अपने ही भाई तो हैं वही सब जब अपने कर्तव्य को भुलाकर गड़बड़ करने पर तुल गये हैं तो गवर्नमेण्ट बेचारी क्या करे? वह बेचारी हमें आराम पहुँचाने का जितना ही प्रयत्न करती है अपने भाइयों की बेईमानी के कारण हम उतना ही दुःखी होते चले जा रहे हैं। अगर भारत का एक-एक आदमी ईमानदारी से गवर्नमेण्ट का हाथ बँटाने लगे तो कोई कारण नहीं है कि यही भारत चार दिन में खुशहाल न हो जाय। हमारे यहां रिश्वतखोरी तो इस बेशर्मी से शुरू हुई है कि हम दूसरे देश के आदमियों के सामने आँख उठाकर बात नहीं कर सकते। यह सब क्यों रेवा?"

काकी बोली—अरे भैया! उसमें क्यों क्या? घोर कलयुग आ गया है?"

मनहर बोला—"केवल कलयुग ही नहीं काकी? हम सब स्वार्थी भी बहुत हो गये हैं। हमारा ध्येय है, केवल अपने परिवार का पेट भरना। पड़ोसी भूखा मर रहा है, उसे रोटी न मिलने का कारण क्या है, इसे हम जानना तक नहीं चाहते? अगर किसी तरह जान भी जायें तो उसका दुख तो क्या बंटायेंगे, उलटा उसकी आँख बचाकर, उसके पास से

निकलेंगे। इसलिये कि कहीं वह कुछ मांग न बैठे, अब तुम्हीं बताओ काकी ? क्या यही हमारा पड़ोसी के प्रति कर्तव्य है, यही धर्म है। हम उस वक्त यह क्यों नहीं सोचते, जो मुसीबत आज इस गरीब पर है। कल मुझ पर भी तो आ सकती है तब कहां भागेंगे कहाँ छिपेंगे ?"

मनहर खाट पर लेट गया। और बोला—"यहां शहर में एक दफ़्तर हमारी गवर्नमेण्ट ने खोला है। वहां अर्जी देने से जो जिस योग्य होता है, उसे वैसा ही काम हमारी सरकार दिला देती है। आहा⋯अगर तुम उस दरवाजे का हाल देखो काकी ? तो रोकर वहां से भाग आओ।"

रामा चकित होकर बोली—"ऐसा क्या है रे वहां मनहर ?"

मनहर के मुँह से एक गर्म सांस निकली। बोला—"वहां सुबह के तीन बजे से लोग आ-आकर बैठने लगते हैं, सैंकड़ों की तादाद में। पहिले मैं बुलाया जाऊँ, इस ख्याल से कितने ही भाई तो उस दरवाजे पर रात को ही आकर सो जाते हैं। जरा ख्याल करो काकी ? ऐसी कड़ाके की सर्दी में जब कि हम लोग लिहाफ़ से मुँह निकालने का साहस नहीं कर सकते। बच्चे जिनकी अभी मसे भी नहीं भीगी हैं, मामूली कम्बलों में लिपटे उस बर्फ़ जैसी सड़क पर आ पड़ते हैं। इसी तरह गर्मी के दिनों में सांप-बिच्छू को ललकारते से उन झाड़ियों के पास आ सोते हैं, केवल इस दाल-रोटी के लिये।"

और मनहर जैसे कुछ थक गया हो उसने आँखें बन्द कर लीं और चुप हो गया। रेवा बोली—"इसके बाद।"

मनहर हँसा, बोला—"इसके बाद रेवा! इस तपस्या के बाद कहीं न कहीं से उनकी पुकार आ ही जाती है। निमोनिये महाराज बुला ले जाते हैं कइयों को, कितनों को नाग देवता-नाग लोक में शरण देते हैं। जो बच जाते हैं, वह दफ्तर में एक कर्मचारी के आगे पेश हो जाते हैं, चिट्ठी मिल जाती है। उस चिट्ठी के साथ अपनी अर्जी, बताये हुए स्थान पर भेज कर अब उस दफ्तर के चारों ओर वह मँडराने लगते

हूं। पर नौकरी अभी कहां रखी है! वहां का धूर्त कर्मचारी चाहता है। कुछ रिश्वत मिले तो अर्जी अफ़सर के आगे पेश करूं। पर उस ग़रीब के पास ज़हर खाने को तो दमड़ी नहीं, उसे रिश्वत के चार-छै रुपये कहां से दे। फलस्वरूप वह ग़रीब यहां भी नाकामयाब होता है, रिश्वत देकर नौकरी कोई दूसरा ले जाता है।"

रेवा बोली—"आख़िर भाई के हाथों ही भाई का गला कटता है, रिश्वत देने वाले यह भी नहीं सोचते हम रिश्वत देकर इस कर्मचारी का तो ईमान बिगाड़ रहे हैं। साथ में कितने ही गरीब भाइयों का गला भी काट रहे हैं। पर अगर वह अफसर से जाकर शिकायत करता तो शायद वह…।"

मनहर बीच में बोल उठा—"अरे कहां रेवा? वह अफ़सर उसी कर्मचारी का कुछ न कुछ ज्यादातर रिश्तेदार ही निकल आता है। अफ़-सर से जाकर कहो तो कह देता है—अच्छा तुम जाओ, हम उसे देखेंगे। फिर उस देखने का दिन आता नहीं।"

"आपको इतनी बातें कैसे मालूम हुईं?"

"कुछ सुनकर, कुछ आँखों से देखकर। यही कारण है रेवा! अब मेरा मन नौकरी से हट गया है। मैं चाहता हूँ, दाल-रोटी का ख्याल छोड़कर कुछ लोगों को इस धाँधली का भण्डा फोड़ करना चाहिए। यह हमारा कर्तव्य है इससे कईयों का भला होगा, मैं यही करूँगा रेवा।"

रामा बोली—"तब फिर तू क्यों कहता रहता है, मैं नौकरी खोजता फिरता हूँ।"

"नौकरी खोजते-खोजते ही तो मुझे यह पता लगा है काकी कि मुझे नौकरी की खोज छोड़कर पहिले यह पता लगाना चाहिए कि वह क्यों नहीं मिलती?"

रेवा इस बार हँस पड़ी, बोली—"आपकी यह बात बिलकुल कम्यु-निस्टों जैसी है।"

चौंक पड़ा, मनहर बोला—"शायद, पर रेवा ! हमें कम्युनिस्ट बनाता कौन है ?"

रेवा बोली—"सो भी मुझ से छिपा नहीं है । अपनी आँखों से कितने ही नेक लड़कों को कम्युनिस्ट बनते देख चुकी हूँ । मुसीबतों से घबराकर जो बहादुर हैं, यह देखने निकल पड़ते हैं कि मुसीबतें क्यों हैं ? वे अगर हैं तो उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने का तरीका क्या है ?"

मनहर प्रसन्न होकर बोला—"शाबाश रेवा ! तुम में ऐसी आग है, जो भारत की हर लड़की में होती अगर तो हमारा भारत सब देशों से आगे बढ़ जाता ।"

रामा बोली—"अच्छा रेवा ! अब तू झटपट रसोई तैयार कर, बड़ी अबेर हो गई । चल मनहर अन्दर चल, ओस पड़ने लगी है बेटा ।"

मनहर रामा के साथ उसके कमरे की तरफ़ चला गया, रेवा रसोई तैयार करने लगी ।

दूसरे दिन रेवा अपने हाथ की लगाई उस छोटी-सी बगिया में पानी दे रही थी । ताराचन्द आँधी की तरह घर के आंगन में घुसा । वह बिना मुड़े ही बोली—"क्या हुआ तारी ?"

माथा पकड़कर तारी धप्प से तुलसीचौरे पर बैठ गया और बोला—"तुमने तो बिलकुल स्तब्ध कर दिया जीजी ? बिना मुड़े ही कैसे जान लिया कि मैं ही आया हूँ ।"

रेवा मुस्कराती हुई उसकी तरफ़ मुड़ी, बोली—"एक मैं ही क्यों ? तुम्हारी चाल से सारा गाँव परिचित है । आंधी-तूफान की तरह तुम दूसरे के आँगन में फट पड़ते हो । कहो, आज तुम्हारा जोड़ीदार बिज्जी कहाँ है ? बड़ी अच्छी जोड़ी है तुम दोनों की । एक ताड़-सा लम्बा दूसरा डेढ़ फुट का······।"

बिज्जी नाराज़ होकर बोला—"जीजी ! बन्दा पीछे ही खड़ा है ।

बहुत ज्यादा बुराई न करो। तुम्हें मानना ही होगा, तुम मेरी चाल से परिचित नहीं हो।"

रेवा हँसती हुई बोली—"नहीं भैया ! तुम्हारे क़दम ऐसे होले हैं, सोचती हूँ, शायद तुम भी उनसे परिचित नहीं हो।"

ताराचन्द हँसता हुआ बोला—"भई बिज्जी ? जीजी ने बात सोलह आना पक्की कही है। तुमने अपनी चाल की नजाकत से तो इस गाँव की स्त्रियों का भी मात कर रखा है।"

"अमां लानत है तारी। जब होता है तुम भाँड की तरह मेरी ही प्रशंसा करने में जुट जाते हो। आखिर तुम्हें यह मर्ज क्या है ?"

मोढ़ों की तरफ़ इशारा करती हुई रेवा बोली—"देखो, इन मोढ़ों पर बैठकर लड़ाई करो दोनों। मैं अभी चाय बनाकर लाती हूँ। पीयोगे न बिज्जी ?"

ताराचन्द एक मोढ़े पर बैठता हुआ बोला—"अय हय जीजी ! क्या पूछती हो बेचारे से। बना लाओ न चाय। ठण्डी साँसें लेता हुआ एकदम पाँच प्याले जैसे-तैसे पेट में उतारने से यह पीछे नहीं हटेगा। क्या करें बेचारा, आजकल इसका दिल और दिमाग़ दोनों आतशबाजी की तरह जल रहे हैं।"

बिज्जी अपने मोढ़े को उससे दूर करता हुआ बोला—"अमां जलालत है तुम पर। तुम्हारी यह जुबान कतरनी को भी मात करती है।"

ताराचन्द बोला—"देखा जीजी ? पूरा आतशबाजी हुआ जा रहा है या नहीं। अच्छा जा मुआफ किया। काकी कहाँ हैं ?"

"मन्दिर तक गई हैं।"

"और मनहर ?"

"वह तो सुबह ही शहर चले जाते हैं।"

रेवा चाय बनाकर ले आई। फिर उन दोनों के साथ उसने खूब

भी चाय पी। एकाएक बोली—"मुरला तुम्हारी बुआ की लड़की है न तारी ?'

"हाँ, जीजी ?"

"उसकी सगाई का क्या तय रहा ?"

'होना क्या था जीजी ? शादी पक्की कर दी गई है। मुरला जीजी का मुँह देखो तो रोना आता है।"

बिज्जी बोला—"असां लानत है, रोना आता है क्या ? अच्छी खासी छाती फटती है भैया तारी ? तुम नहीं जानते। कल्पना से बाहर जो बात हो जाती है, वह आदमी को पागल कर देती है।"

ताराचन्द बोला—"जमींदार काका ने मुरला जीजी से जो ज्यादती की है, वह लड़की है इसलिये चुपचाप सह गई है। पर मैं दिखा दूँगा जीजी ! कुँवर आकर आफ़त न कर दे तो बात है। अपने पिता को वह सबक देगा, जन्म भर याद करेंगे। वह अपने नाम का प्रभात है।"

बिज्जी हाथ मलता हुआ बोला—"मुझे भी ऐसा ही लगता है। जमींदार काका के साथ प्रभात दादा जितनी बुरी करेंगे, उतनी मुझे खुशी होगी। पर इससे मुरला जीजी का क्या भला होगा ?"

रेवा बोली—"तब तुम सब कुँवर को पत्र लिखकर खबर क्यों नहीं कर देते।

ताराचन्द बोला—"सो मैं कर देता जीजी ! ताराचन्द असल पेशावरी है। पर मुझे जमींदार काका ने कहा—अगर तुमने ऐसा किया तो अच्छा न होगा ? मुरला जीजी भी मुझे अलग बुलाकर रोने लगी। बोली—तारी, तू कुछ मत करना भैया ! मैं नहीं चाहती, मेरे भाई के नाम कोई बदनामी आये। जो मेरे भाग्य में है होकर ही रहेगा और वही होने दे। मैं चुप हो गया।"

बिज्जी बोला—"मुझ पर तो ऐसे नीले-पीले हुए काका जैसे मैं उन्हें लिख ही चुका था। राम राम करके पीछा छुड़ाया। इसका फल

पायेंगे आगे देख लेना। जलालत है, तुमको नहीं मानना चाहिये था। तुम माने ही क्यों ? फिर कहते हो, मैं पुलिस आफिसर होने जा रहा हूँ। क्या ख़ाक पुलिस आफिसर बनोगे। दम तो तुममें है नहीं। सन्तरी बादशाह चाहे बन जाओ, आफिसर बनाने वाले पर लानत है।"

तारी बिगड़कर बोला—"चार फुटे आदमी हो, अवाही तवाही बकते रहते हो। जलालत है, लानत है। पर तुमसे होता-हवाता कुछ नहीं। बस दूसरों के कन्धे पर रखकर बन्दूक चलाना भर आता है।"

फिर रेवा की तरफ़ मुड़कर बोला—"असल में जीजी ! यह तो है पागल। अब, जब कि हम दोनों को ख़ास तौर पर बुलाकर मना कर दिया गया है तो हमारा लिखना तो कुछ ठीक नहीं लगता। पर अगर मनहर दादा लिख दें कुँवर को तो जमींदार काका चूँ नहीं कर सकते। सच पूछो तो जमींदार काका मनहर दादा से डरते हैं।"

रेवा का सिर गर्व से ऊँचा हो गया। बोली—"तो वह तो कुँवर के परम मित्र हैं। चारों साथ-साथ खेलकर बड़े हुए हैं। मित्र के इस दर्द से उन्हें भी तो चोट पहुँचेगी। मैं आज उनसे कहूँगी, वह जरूर अपने मित्र को लिखकर होशियार कर देंगे।"

तारी ठण्डी साँस लेता हुआ बोला—"अब फायदा क्या जीजी ? शादी तो तय हो गई। उन्नीस मई को तो बारात बृजपुर पहुँच जायेगी।"

बिज्जी बोला—"अमां तो पूछने में भी कुछ हर्ज है सन्तरी बादशाह ? चलो उठो अब, जीजी को भी कई काम करने हैं।"

"अमां लानत है बिज्जी ? तुम्हें जीजी के कामों की तो कहाँ फ़िक्र है। यह कहो 'पास' के घर हाजिरी देने जाना है।"

बिज्जी बोला—"अमां लानत है, तुम्हारी 'पेशीनगोई' पर। कुछ ढंग की बातें करना सीखो, लम्बोदर त्रिपाठी।

तारी उसे मारने को उठा। बिज्जी भागकर आँगन से बाहर हो

गया। रेवा उस दिन सारा दिन बड़ी अनमनी रही। रात को मनहर बड़ी देर से आया। इसलिये रेवा उससे बातचीत नहीं कर सकी। सुबह भी वह अनमने मन से घर के धन्धों में लगी थी। मनहर नहा कर रसोई के द्वार पर आ खड़ा हुआ और बोला—"अरे···तुम्हारा तो अभी कुछ भी तैयार नहीं है रेवा? अच्छा कोई बात नहीं। मैं जाता हूँ। तुम आराम से रसोई चढ़ाना।"

वह लज्जित होकर बोली—"आप चौके में आकर आसन पर तो बैठिये, मैं खाने को देती हूँ।"

रेवा ने झटपट बेसन गूँधकर तवा चढ़ा दिया। दही में जीरे का बघार लगा दिया। टमाटर का लच्छा काटकर परांवठे सेंकने लगी। मनहर बाल बना कर जब आसन पर बैठा, तो थाली परोसी रखी थी। मनहर तृप्ति के साथ भोजन करता हुआ बोला—"तुम सचमुच रेवा? एक सुघड़ गृहिणी होओगी, जिसके घर जाओगी, उसे निहाल कर दोगी। कितने थोड़े समय में तुम कितनी जल्दी खाने-पीने का बन्दोबस्त कर डालती हो कि देखकर आश्चर्य होता है।"

उसकी थाली में दूसरा परांवठा रखते हुए वह बोली—"मुरला का विवाह बासीपुर पक्का हो गया। सुना है आपने?"

"जमींदार घराने की बात भला बिना सुने कोई रह सकता है रेवा?"

"सुना है, कुँवर मुरला को बहुत प्रेम करते हैं। इस ब्याह से उन्हें करारी चोट बैठेगी।"

"सो तो बैठेगी ही।"

रेवा ने चकित होकर मनहर के मुँह की तरफ़ देखा। हर एक की मुसीबत में छाती तानकर खड़ा होने वाला मनहर यह कैसी रूखी-रूखी बातें कर रहा है। फिर अपने उस मित्र और सखी के लिये जो बचपन में उसका एक अंग-सा रह चुके हैं। बोली—"आप उन दोनों के मित्र

हैं, विवशता ने मुरला को पिंजरे में बन्द कर रखा है। उसके पंख तोड़ दिये गये हैं ! मित्र के नाते क्या आपका यह कर्तव्य नहीं था कि आप कुँवर को इस आफ़त की सूचना दे देते ?"

"शायद था रेवा ?

"तब आपने उन्हें सूचना क्यों नहीं दी ?"

मनहर से और खाते नहीं बना। थाली सरकाकर वह झटपट उठ खड़ा हुआ। और चौके से बाहर जाता हुआ बोला—"उसे तुम क्यों जानना चाहती हो रेवा ? मनुष्य में···कोई न कोई···कमजोरी···तो।" और वह बिना पूरी बात किये, हाथ धोकर आंगन से बाहर हो गया। रेवा स्तब्ध द्वार की ओर बैठी ताकती रह गई। आज उसकी समझ में आया, मनहर के क्हाँ घुलता रहता है, क्यों मनहर इतना निराश रहता है ? तवे पर का परावठा जल कर खाक़ हो गया, पर रेवा को जैसे जान ही नहीं पड़ा। रामा ने आँगन में आते ही कहा—"यह क्या रेवा ? चूल्हे पर जल क्या रहा है बेटी ! अरे, इस तरह फटी-फटी आँखों से क्या देख रही है तू ?"

रेवा ने चौंककर तवा उतारते हुए कहा—"ओह···कुछ नहीं मौसी ? एक परावठा जल गया है।"

रामा अन्दर कोठरी में चली गई।

: ५ :

सन्ध्या ! काली होती जा रही थी । मुरला अपने लम्बे-चौड़े बाग़ में टहलती हुई फूल चुन रही थी । महाश्वेता ने आकर कहा—

"मुरला जीजी ?"

वह चौंककर बोली—"कौन महाश्वेता ! अरे यह क्या ? तुम तो नृत्य की पोशाक में ही चली आ रही हो । क्या हुआ तुम्हें ?"

"आज तुम्हारे व्रत का दिन है जीजी ?"

"सो याद है न बहिन ? मैं व्रत रखे हूँ ।"

"तब फिर दीपप्रवाह करने क्यों नहीं गईं । समय तो बीतता आ रहा है ।"

मुरला चुपचाप फूल तोड़ती रही, महाश्वेता उसके पास आकर बोली—"पिछले सोमवार को भी तुमने ऐसा ही किया था ।"

मुरला ने एक गुलाब का बड़ा-सा फूल उसके कंकण में खोंसते हुए कहा—"मैं बड़ी स्वार्थी हूँ महाश्वेता ? मन मुआफ़िक़ वर पाने के लिए ही तो लड़कियाँ दीपप्रवाह किया करती हैं । सो मुझे मिल गया, अब गंगा मैया की ज्यादा खुशामद से फ़ायदा क्या ? कहो तो ।"

"गंगा मैया से रुठा नहीं करते बहिन ! बाबा आज कह रहे थे, दीपप्रवाह अपने प्रिय की मंगल कामना के लिए भी होता है ।"

घबराकर मुरला बोली—"प्रिय की मंगल कामना के लिये, तब…

तू ज़रा ठहर महाश्वेता ! मैं अभी दीप सजा कर लिये आती हूँ ।"

और वह पांच मिनट बाद दीपों से सजी थाली लिये आ पहुँची। फिर तेज़ी से दोनों नदी तट की तरफ़ चल दीं । मुरला बोली—"पिछले सोमवार को जो मैंने जान-बूझ कर गंगा मैया के प्रति अवज्ञा दिखाई है महाश्वेता ? उससे विदेश में कुँवर पर कोई विपत्ति तो न आ जायेगी ।"

महाश्वेता ने देखा, मुरला भय से बिल्कुल पीली पड़ गई थी। बोली—"अरे बड़ी डरपोक हो जीजी ? उसके लिये तुम प्रायश्चित कर डालना, मां क्षमा कर देंगी ।"

"वही करूँगी, मैं प्रायश्चित ही करूँगी महाश्वेता । बाबा से पूछकर मुझे कल ही लिखकर भिजवा देना कि मुझे क्या करना होगा ?"

"अच्छा ।"

उन्नीस मई को मुरला का ब्याह हो गया। जमींदार साहब ने दिल खोल कर खर्च किया। टक्कर भी तो बासीपुर वालों से थी। दूर-दूर तक इस ब्याह की प्रशंसा के गीत गाये जाने लगे।

मानो जमींदार साहब ने अपने ही हाथों अपने बेटे की तमाम खुशियां बासीपुर वालों को लुटा दीं।

बिदा वाली रात ? सितमे-सितारों से झिलमिलाती हुई लाल रेशमी-पोशाक में सजी नवबधू देवता और महात्मा का आशीर्वाद लेने मन्दिर में आई। महात्मा क्षण भर तक स्तब्ध उसकी रूपराशि की ओर ताकते रह गये। मुरला ने पहिले भगवान के चरणों पर सिर रखा। फिर महात्मा के चरणों पर माथा रख सिसक उठी।

उस नन्हीं बालिका को इस तरह सिसकते देख महात्मा का विशाल वक्षस्थल जैसे फटने-सा लगा। बड़े-बड़े आँसू उसकी आँखों से निकल कर उसकी सफ़ेद सुन्दर दाढ़ी में उलझ गये। उसे उठाकर उन्होंने अपनी छाती से चिपका लिया और कांपते कण्ठ से बोले—

"तुम साक्षात् दुर्गा हो मुरला ? साहस से काम लो। राजपूत लड़कियां बड़ी स्यानी होती हैं। भगवान पर भरोसा रखो बिटिया ! वह जो कुछ करते हैं, मनुष्य के भले के लिए ही करते हैं, और जो कुछ होता है, उसे वैसा ही होना होता है। अचानक कुछ नहीं होता बेटी ? होनहार पहिले से ही सब रचकर रखती है। जाओ ! परमात्मा तुम्हें अमर सौभाग्य प्रदान करे।"

फिर उन्होंने उसके सिर पर फूल और चन्दन छिड़क कर माँग में सिन्दूर लगाया और उसे दरवाज़े तक छोड़ आये। चारणी से मुरला मिली। फिर महाश्वेता से लिपट गई।

इसके बाद एक पुर्जा उसके हाथ में घोंसते हुए बोली—"यह कुँवर का पता है। जो कुछ हुआ है, सब समझा कर तुम कुँवर को लिख देना। अब मैं उन्हें किस मुँह से और क्या लिखूँ—कह तो।"

महाश्वेता ने वह पुर्जा अपनी मुट्ठी में दबा लिया। मुरला चली गई। महाश्वेता चारणी मां से लिपट गई। चारणी बोली—"मत रो बेटी ? आशीर्वाद दे अपनी सखी को।"

और चारणी ने अपने आँचल से अपने और महाश्वेता के आँसुओं को पोंछ डाला। तीन दिन मनहर बारात की अगवानी में लगा रहा था। जमींदार के कामों में जो उसने एक पैर खड़े होकर हाथ बटाया था। इससे वह बहुत खुश थे। सब से कह रहे थे भई ! यह लड़का मनहर तो बड़े काम का है। सब जगह इसकी तारीफ़ सच्ची ही होती है। सचमुच यह सबके काम आता है लड़का।"

परन्तु जब 'बिदा' का समय आया तो मनहर आँख बचाकर चुप-चाप अपने घर की तरफ आ गया। पर आँगन में पैर रखते ही वह आवाक् खड़ा का खड़ा रह गया।

देखा, झिलमिलाते हुए लाल कपड़ों में सजी राजरानी-सी मुरला आँगन में खड़ी रो रही है। रामा उसे बार-बार छाती से लगा रो

उठती है। मुँह चूमती है, समझाती है। रेखा स्तब्ध तुलसीचौरे से पीठ टेके आँसू बहा रही है और देख रही है मुरला की उस वक्त की बिखरती हुई इस अतुलनीय रूपराशि को। मनहर से यह दृश्य देखा नहीं गया। इच्छा हुई लौट चले पर रामा ने उसी समय कहा—"आ गया रे। लड़की कब से 'बिदा' लेने के लिए खड़ी है।"

'बिदा' कहता हुआ मनहर मुरला के सामने आ गया। मुरला ने मुँह उठाकर मनहर की तरफ़ देखा। उसकी आंखों से लगातार दो धारें आँसुओं की गालों पर बह रही थीं। मनहर को लगा जैसे उन आँसुओं का बाँध टूट गया है। मुरला अपने को उनमें डुबो देने का प्रयत्न कर रही है। उन आँसुओं को देखने के पहिले तक मन ही मन मनहर यह सोचकर खुश था, मुरला अगर उसे नहीं मिल सकी तो क्या? प्रभात भी उसे पा नहीं सका।

पर इस मुख पर आँसू देख उसका सारा उत्साह मन्द पड़ गया। हृदय बैठने लगा। सोचने लगा, मैं अगर चाहता तो यह आँसू मुस्कराहट में बदल सकते थे। यह मैंने क्या किया। घृणित ईर्ष्या के वशीभूत होकर मैंने अपनी प्राण-प्रतिमा को सदा के लिए ये आँसू भेंट कर दिये।

मुरला ने उसके पैरों पर आज पहली बार हाथ रख कर माथे से लगाया। फिर बोली—"मेरे सब अपराध क्षमा कर देना मनहर! मैं जाती हूँ।"

"मनहर ने उसे अपने पास खींच उसके दोनों हाथ अपनी मुट्ठी में दबाते हुए कहा—"जाती हो मुरला। जाओ, ईश्वर तुम्हें सदा सुखी रखे।"

मुरला चली गई। मनहर को लगा जैसे उसका रहा सहा भी सब कुछ उन महावर लगे लाल पैरों के साथ चला गया। कटे वृक्ष की तरह वह धम्म से वह आंगन में पड़ी एक खाट पर गिर पड़ा और

बोला—"जाओ काकी ! मुरला को 'बिदा' कर आओ। वह जा रही है सदा के लिए पराई होकर। हमारी मुरला......अपनी मुरला...... आज से बासीपुर वालों की हो गई। जाओ...काकी ! तुम उसे बिदा कर आओ। मैं अभागा उसे......।

रामा चली गई। मनहर ने अपनी दोनों बाहों में अपना मुँह छिपा लिया और बच्चों की तरह फूट-फूट कर होने लगा।

रेवा अब भी उसी तरह चौरे से पीठ टेके खड़ी थी। मनहर रोता रहा। वह चुपचाप देखती रही। पर जब उसने देखा, यह रोना कभी बन्द न होगा, तब धीरे-धीरे उसके पास आकर बोली—"तब सुबह की खुशी झूठी थी। सच यह रोना ही है। और अभी क्या ? आगे चलकर आपको ऐसा पश्चात्ताप होगा कि आप कभी अपने को क्षमा नहीं कर सकेंगे।"

"किसलिये रेवा ?"

"मित्र के प्रति जो आपने यह विश्वासघात किया है इसके लिये। जानते हुए भी जो मुरला की हँसी को आँसुओं में बदल दिया है इसके लिये अगर आप चाहते तो सदा-सदा मुरला इसी गांव में रह सकती थी।"

मनहर आँसू पोछ खाट पर उठ बैठा। फिर बोला—"तुम ठीक कहती हो रेवा ? मैं चाहता तो मुरला—हमारी मुरला सदा-सदा इसी गाँव में रह सकती थी। पर ईर्ष्यावश मैंने यह होने नहीं दिया। एक जीवन तो बहुत दिन से व्यर्थ हो चुका था रेवा ? परन्तु आज दो जीवन और व्यर्थ हो गये।"

"व्यर्थ" कहते हुए रेवा ने एक चुभती हुई दृष्टि मनहर के मुँह पर डाली और कहा—"जिस एक जीवन के व्यर्थ हो जाने की बात आप कह रहे हैं, वह हुआ भी अगर तो केवल उसके अपने लिये। नहीं तो दूसरों के लिये आज भी उसके जीवन का वही मूल्य है, जो इससे पहिले एक

दिन था। अच्छा बताइये तो अगर हम किसी चीज को पसन्द कर लें। हृदय उसे पाने के लिए व्याकुल भी हो उठे। पर हजार प्रयत्न करने पर भी उसे हम न पा सकें, तो इसके लिये हमारा क्षुब्ध और खिन्न हो उठना अनिवार्य है। पर बस! इस जरा-सी बात के लिये हमारा जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा, यह बात तो मेरी समझ में नहीं आई। क्या केवल प्रेम में सफलता पाने के लिये ही हमारा जन्म हुआ था? माता-पिता के प्रति, देश के प्रति, समाज के प्रति क्या हमारा कोई कर्तव्य नहीं है। जीवन व्यर्थ उसी का होता है, जो अपने देश के साथ गद्दारी करता है, दूसरे की स्त्री पर बुरी दृष्टि डालता है, अपनों से विश्वासघात करता है; डाकू बन जाता है। आपने तो ऐसा कुछ भी नहीं किया है।"

मनहर ने चकित होकर रेवा के मुँह की तरफ देखा। उस सांवले सलोने मुख पर उसे एक अजीब सी चमक दिखाई दी। धीमे स्वर से बोला—"इस लड़की को तुमने देखा है रेवा? एकदम हड्डियों का ढांचा है। यह प्रभात को बहुत प्यार करती है। उसे खोकर जीवित रह सकेगी इस पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है। उसके आँसू देखे थे तुमने, किसी के मुख पर मैंने इतने आँसू कभी नहीं देखे रेवा?"

"वह लड़की है, शायद इसीलिये मैं उसकी बात और भी अच्छी तरह आपको समझा सकती हूँ। उसे मैंने दो-चार दफ़ा ही देखा है, इतने से ही समझ गई हूँ। वह किस तर्ज की लड़की है, मैं दावे के साथ कह सकती हूँ, बड़ी धीरता और बहादुरी से मुरला अपने जीवन को व्यर्थ होने से बचायेगी। पति-पुत्र समाज की प्यारी बन कर, वह अपने जीवन को सफल बना लेगी। हाँ,...प्रभात के लिये जरूर भय है, जैसा उनका स्वभाव सुना है, उससे लगता है वह अपने को मिटा लेंगे।"

मनहर एक ठण्डी सांस लेकर खड़ा हो गया, फिर बोला—"अच्छा मैं बाहर जाता हूँ। काकी आयें तो कह देना रेवा।"

रेवा स्थिर कण्ठ से बोली—"मेरी एक बात मानेंगे ?"

"मानूंगा क्यों नहीं ?

"तब आज भर आप कहीं मत जाइये।"

क्षण भर तक मनहर खड़ा सोचता रहा। फिर बोला—"अच्छा नहीं जाता।"

और वह अपने कमरे में जाकर पड़ रहा, रेवा ने पुकार कर पूछा—"चाय बना लाऊँ।"

"हाँ—" कहने के बाद मनहर सोचने लगा—"इस लड़की में यह कैसा प्रकाश है। मुँह सांवला है, पर हृदय की चमक सूर्य की रोशनी को भी मात करती है। हर बात का इसके पास कैसा नपा-तुला उत्तर है, कैसा मुँहतोड़ जवाब है। इसकी चाल, मुस्कराहट-महारानियों जैसी है, और करके अपनी बात मनवा लेने की इसमें अजीब शक्ति पाता हूँ।"

इसी तरह कुछ दिन बीते कि एक दिन कोई अन्धा भिखारी मन्दिर की सीढ़ी पर बैठा गा रहा था।

राधे राधे बन्सी रही पुकार।

महाश्वेता सीढ़ी पर बैठी बड़बड़ा उठी—"बन्द करो यह गाना। ब्रजपुर में न वह पुकारने वाली बन्सी रही, न पुकार सुनकर दौड़ आने वाली राधा। फिर यह गाना क्यों ? बन्द करो।"

मनहर सामने आकर बोला—"महाश्वेता।"

चौंककर बोली वह—"ओह भैया ! आज तीन महीने बाद तुम्हारी सूरत देख रही हूँ। एक दिन था जब कि हम चारों रोज नदी तट पर मिलते थे, नावों की दौड़ होती थी, गाने गाते थे और आज···"

मनहर चार-पाँच सीढ़ी नीचे उतर कर बैठ गया और बोला—"सब कुछ समाप्त हो गया महाश्वेता ? वह दिन अब लौटकर नहीं आ सकते। उनकी याद भी······जैसे,······सुना···गौरी माँ बासीपुर से आई हुई हैं।"

"हाँ, दो-चार दिन के लिए आई हुई हैं।"

"तुमने पूछा था—मुरला कैसी है !"

महाश्वेता कठोर स्वर से बोली—"जैसी हम लोग उसे देखना चाहते थे, वैसी ही है वह। बासीपुर के जमींदार खानदानी रंगीले हैं। पहली पत्नी से भी उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। मुरला से भी नहीं है। जमींदारों की पत्नियाँ केवल महल की शोभा बढ़ाने के लिए होती हैं, सो मुरला तो इस बात में अपना जोड़ नहीं रखती। घर के अन्दर मुरला की ही हुकूमत है। उसके सामने जमींदार सहमे से रहते हैं। अपनी इस बालिका पत्नी पर उन्हें स्नेह भी कुछ कम नहीं है। पर गौरी माँ कहती हैं, घर से बाहर जमींदार के लिए मुरला का कोई अस्तित्व नहीं है। आठ-आठ रोज तक मुरला उनकी सूरत को तरसती रहती है। पर इसमें जमींदार कर क्या सकते हैं भैया ? उनके एक मुरला ही तो नहीं है न ? अनेक हैं। बासीपुर के जिले सुचेतगढ़ में उनका बंगला है। ज्यादातर जमींदार साहेब वहीं बने रहते हैं।"

मनहर का मुँह उतर गया। बोला—"मुरला ने तुम्हें पत्र नहीं लिखा महाश्वेता ?'

"लिखा है। क्या पढ़ोगे भैया !"

मनहर ने सिर हिला दिया। महाश्वेता अन्दर से मुरला का पत्र ले आई। मनहर ने कांपते हाथों से वह पत्र ले लिया और पढ़ने लगा। मुरला ने लिखा था—

महाश्वेता,

पत्र लिखने को अनेक बार सोच चुकी हूँ, पर क्या लिखूँ ! सो आज लिखने में भी समझ नहीं पा रही हूँ। मेरे लिए कोई चिन्ता मत करना। सखी। मैं खूब सुखी हूँ। सुन्दर महल, ढेरों धन और अलंकार, दर्जनों नौकर-चाकर हैं। जो कहती हूँ वही होता है। इससे ज्यादा बड़े सुख की कोई लड़की कल्पना भी नहीं कर सकती ? मेरे पति शिव के समान ही

भोले और लापरवाह हैं। उनका हृदय निष्कपट है। वह मुझे बहुत चाहते हैं। मेरे आराम के लिए वे सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। मैं अगर बीमार पड़ जाऊँ तो उनकी चिन्ता का ठिकाना नहीं रहता।

फिर भी लोग उनकी बदनामी करते हैं। उन्हें रंगीला राजा कहते हैं। कहते हैं, उन्हें यही सब करना था तो मुरला से ब्याह क्यों किया। मैं भी कई बार जैसे उनसे पूछ लेना चाहती हूँ—क्यों तुमने मुझ से ब्याह किया? महाश्वेता! तुमने सबके सब धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया है। विश्वास करके मानना, मैं अपनी सखी से झूठ नहीं बोलूंगी। मैंने ठीक एक हिन्दू लड़की की तरह अपनी प्रीति का गला घोंटकर, अपने स्वामी के चरणों पर अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। पर तुम्हें दुःख होगा सखी! तुम्हारी सखी की 'भेंट' उन्हें स्वीकार नहीं हुई। ऐसा लगता है वह उन जैसा भोला आदमी समझ ही नहीं सका। उनके चरणों पर किसी ने क्या डाल दिया है? या फिर उन्होंने सोचा हो, यह तो स्वभाविक था। पति के सिवा हिन्दू नारी की और गति ही क्या है? पहिले लिख चुकी हूँ वह शिव के समान भोले और लापरवाह हैं। कभी-कभी यह लापरवाही बहुत ज्यादा चुभ जाती है। बहुत इच्छा होती है कि सती की तरह इस देह का त्याग कर इन्हें इस लापरवाही का दण्ड दे फिर से विधुर बना दूं। पर सोचती हूँ, इससे क्या होगा? मेरी ही तरह एक और दूसरी को बाँध लायेंगे। उस दूसरी के लिए ही मैं अपने को उत्सर्ग कर रही हूँ। इससे मुझे सन्तोष होता है। कुँवर को तुमने सब समझा कर लिख दिया होगा। तुम्हारे सिवा अब यहाँ उनका कोई हमदर्द नहीं है सखी? मनहर कहाँ हैं? कैसे हैं? लिखना। और क्या लिखूँ!

तुम्हारी
मुरला

मनहर का चेहरा स्याह पड़ गया। यह पत्र है या मुरला ने अपना

हृदय खोलकर रखा है। उसने पत्र महाश्वेता को वापिस कर दिया। वह बोली—"देखा भैया? अपनी सखी के विवाह का परिणाम। जमींदार युवक हैं, मुरला बालिका! दोनों एक दूसरे से कैसे खुश रह सकते हैं। सोचो तो···देखो, पत्र पर इन अनगिनत आँसुओं की बूंदों के दाग़ देखो, जो पत्र लिखने में मुरला की आँखों से बरसते रहे हैं।"

मनहर के हृदय को चीरती हुई एक गर्म साँस निकल गई। वह अस्थिर हो उठा। बोला—"तुम ठीक कहती हो बहिन? मुरला के इन आँसुओं का असली कारण मैं ही हूँ। मैं चाहता तो यह आँसू मुस्कराहट में बदल सकते थे। पर मैंने ऐसा नहीं चाहा?"

कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ, और "जाता हूँ" कहने के बाद झटपट वहाँ से चला गया।

: ६ :

रामा की तबीयत आजकल ठीक नहीं रहती, कभी बुखार, कभी खाँसी लगा ही रहता है।

मनहर डेढ़ हफ़्ते से घर नहीं आया है। मुरला के आँसुओं के दाग़ों ने उसे पागल-सा बना दिया है। वह दिन-रात अपने को धिक्कारता रहता है। क्या यही तुम्हारा प्रेम था मनहर? अपने ही हाथों तुमने उसका गला घोंट डाला, जिसके चरणों में तुम अपना सब कुछ न्यौछावर कर चुके थे।

और वह अपने इस दर्द को कम करने के लिए शराब के गिलास पर गिलास ख़त्म कर देता। कभी-कभी ख़ुमार उतरने पर वह सोचता, काकी कैसी होंगी? रेवा क्या सोचती होगी! किसी चीज़ की ज़रूरत हुई तो वह किससे क्या कहेगी। पर क्षण भर बाद मुरला की वह दो आँसू भरी आँखें उसके सामने आ जातीं। वह सब कुछ भूलकर मुरला के दर्द से व्यथित हो उठता। कहता—"मुरला! प्राण देकर भी अगर मैं अब तुम्हारे इन आसुओं को मिटाने का कोई उपाय पा जाता, तो कभी पीछे न हटता। मुरला! काश! तुम समझ सकतीं। आज तुमसे ज्यादा मनहर तुम्हारे लिये आँसू बहा रहा है और सदा बहाता रहेगा।

इसके बाद वह अन्धाधुन्ध शराब पीता।

उधर मनहर की चिन्ता में रामा की दशा और बिगड़ने लगी।

उसने खाना-पीना एकदम कम कर दिया। सोचती—कहाँ होगा वह, क्या करता होगा ? कौन जाने कैसा होता जा रहा है दिनों दिन। घर से जैसे उसका जी हटता-सा जा रहा है, क्यों ?

और वह कराह उठती। रेवा पूछती—"क्या कहीं दर्द हो रहा है मौसी ?"

"नहीं रे नहीं !"

घर के आँगन में रसोई की तरफ़ रेवा ने छोटी-सी बगिया बना रखी थी। उसी के पास रामा खाट बिछाये पड़ी रहती थी। रेवा चुप-चाप घर के धन्धों में लगी रहती थी। रसोईघर से निकली तो तीनों कमरे साफ़ कर डाले, सब चीज़-वस्तु ठीक-ठिकाने से रख दी। कपड़े तह करके रख दिये, बिस्तर तरीके से तख़्त पर सजा दिये। खाटें उठाकर छप्पर के नीचे डाल दीं। आंगन लीप दिया। झटपट नहाकर पनी भर लाई। फिर रसोई चढ़ाने के बाद अपनी बीमार मौसी का गर्म पानी से हाथ-मुँह धुला दिया। कपड़े बदल दिये। पथ्य तैयार कर खिला-पिला दिया।

इसके बाद दोनों समय मनहर की राह देखती रहती। कुबेला होने पर जब खाने बैठती तो मौसी टोकती—

"क्यों रे रेवा ? यह भी कोई खाने का समय है। बीमार पड़ गई तो बेमौत मर जायेगी बिटिया ? देख तो रही है। दवा-दारु के लिए न तो मेरे पास पैसा है, न कोई आदमी। एक लड़का है, सो दिनों-दिन जाने कैसा होता जा रहा है। पहिले दिन भर बाहर रहता था, पर रात को घर जरूर आ जाता था। अब तो अठवाड़ों शक्ल नहीं दिखाता। तुझे कहा था, जरा रमई से जाकर पूछ, वह दुष्ट जरूर जानता होगा कि मनहर आजकल कहाँ है ? इन्हीं दुष्ट छोकरों ने तो उसे बिगाड़ा है। इन्हीं अवारों के साथ घूम-फिर कर मेरा मनहर ऐसा हो गया रे।"

रेवा बोली—"मैं कल उनके घर गई थी न मौसी ? रमई कहता था, कल शहर जाकर पता लगायेगा। वह कहाँ हैं, और क्या कर रहे हैं ?"

रामा ने फिर कुछ नहीं पूछा, चुपचाप कम्बल से अपने को ढक कर करवट बदल ली।

दूसरे दिन जब बहुत सुबह रेवा उठकर नदी तट जाने लगी, तो रामा बोली—"सर्दी बहुत है री रेवा ? थोड़ा दिन चढ़े जाना बेटी ! तुझे ऐसी जल्दी करना भी क्या है ? कौन-सा किसी ने दफ़्तर या स्कूल जाना है।"

रेवा ने दरवाजा खोलते हुए कहा—"स्कूल या दफ़्तर तो सचमुच मौसी किसी ने नहीं जाना, पर तुम्हारे इन भगवान देवता के सामने धूप, बत्ती तो मुझे ही करनी है। तुम झटपट ठीक हो जाओ और अपने राम जी को सम्भाल लो। सच पूछो तो घर के इतने कामकाज के बाद, बस तुम्हारे इन्हीं देवता की सेवा में मेरा मन नहीं लगता मौसी ? श्रद्धा जो नहीं है। झूठमूठ पाखण्ड करते सचमुच मुझे आलस्य आता है।"

दांतों से जीभ काटते हुए रामा बोली—"राम राम ! यह क्या बकती है रे रेवा ? उन पर श्रद्धा नहीं है, किस दोष से बेटी ?"

रेवा बाहर निकल गई थी। मुड़कर बोली—

"दोष गिनाने बैठूँगी, तो फिर आज का काम-धन्धा सब हो चुका मौसी ? केवल इतना ही कहे जाती हूँ कि जो दीन दुखियों की पुकार नहीं सुनता, उनके आंसू पोछने में असमर्थ है। उसे घण्टी बजाकर "दीनानाथ प्रसन्न होवो" कहने से होगा क्या ? कहीं-कहीं तो उलटा देखा है। जिन्हें गरीबों के लिये दर्द है। उन्हें भी वह दुनिया की निगाहों से गिराने की कोशिश में रहता है। ऐसे भगवान को पूजकर होगा क्या मौसी ? केवल समय नष्ट करना है।"

कहती हुई रेवा जल्दी-जल्दी आंगन से बाहर निकल गई ? रामा ने माथे पर हाथ मारते हुए कहा—

"बाप रे ! यह तुम्हारी लड़की है जीजी ? सच कहता है मनहर, एक दम आग है आग। इसका बस चले तो भगवान को भी ठोक पीट कर रख दे। ऐसा ही मेरा मनहर है। दोनों जैसे एक ही मिट्टी के बने हैं।

उधर रेवा जब घाट पर पहुँची तो देखा, शंकर की बहू और रधिया घाट पर पहुँच चुकी हैं, और दुनिया भर की चर्चा शुरू कर रखी है। रेवा खिन्न हो उठी। आगे बढ़कर उसने दोनों को नमस्कार किया। वे बोलीं—"सुखी रहो बीबी ? आज तो बहुत दिनों बाद दीखीं। नहाना-धोना क्या घर में कर लेती हो ?"

रेवा कलसी मांजती हुई बोली—"नहीं जीजी ? घर में क्या नहाऊंगी भला ? एक तो मौसी बीमार हैं, दूसरे रामधन की बहू भी बीमार पड़ी है। घर का चौका-बासन भी आज कल मुझे ही करना पड़ रहा है। मौसी को भी देखना-सुनना पड़ता है। इसलिये रोज तड़के ही नहा-धोकर चली जाती हूँ। आज उठा ही नहीं गया। सुबह आँख खुली तो यह वक्त हो गया था।

शंकर की बहू मुँह मटकाकर बोली—

"रामधन की बहू बीमार है, तो गांव में महरियों की क्या कमी है बीबी ? किसी दूसरी को बुला लिया होता। मनहर जब लोगों के लिये मुट्ठी भर-भर धन उड़ा रहा है, तब तुम्हीं लोग पैसे के लिये इस तरह कष्ट क्यों पाओगी भला। नहीं, क्यों रधिया जीजी ?"

रधिया बदन मलती हुई बोली—"मैं तो भाई उससे कुछ खुश नहीं हूँ। रामा काकी ने उस लड़के को प्यार ही प्यार में बरबाद करके रख दिया। भला रेवा ! जरूरत क्या थी ? उस चमार की बेटी के ब्याह में मनहर को इतना रुपया देने की। जमींदार ने तो दिया नहीं। जो देते

तो कोई बड़ी बात न थी, पर मनहर तो गाँव का धन्ना सेठ है बाबा ?"

रेवा चुपचाप पानी में उतर गई। मनहर ने कब, स तरह चमार की बेटी के ब्याह में रुपया दे डाला। यह वह कुछ जानती तो थी नहीं। इसलिये बोली भी नहीं।

शंकर की बहू बोली—"अरे मैया! मनहर की बातें तो रहने ही दो। उस दिन हमारे 'यहाँ' अपने एक बेगारी को पीट रहे थे। उससे बीस रुपये लेने थे। कमबख्त देता न था। मनहर ने देख लिया। आकर बोला—"खबरदार दादा? अब हाथ मत छोड़ना। जानते हो अपनी गवर्नमेंट है। जरा शिकायत हो गई तो सीधे जेल जाओगे। जा रे मनसुखा! भाग जा! तेरे बीस रुपये दादा को मैं चुका दूँगा।"

रधिया सूखी धोती पहनती हुई बोली—"पर रुपये दिये तो क्या होंगे बहू ?"

"नहीं जीजी! रुपये उसने कल ही रमई के हाथ भेज दिये हैं।"

"अच्छा!" कहती हुई रधिया रेवा की तरफ़ मुड़कर बोली—

"रमई रात शहर से लौट आया था रेवा ?

रेवा उत्सुक होकर बोली—

"वह मिले थे भौजी ?

"हाँ, मिला था न ? रमई बता रहा था। जाने कौन से होटल म वह रहता है।"

"घर आने के लिये कुछ कहते थे रमई से।"

रधिया हँस पड़ी। हाथ नचाती हुई बोली—"अरी बहिना! उसके होश-हवास ठिकाने होते, तब न घर आने के लिये कुछ कहता-सुनता। शराब के नशे में उसे होश ही कहाँ था। पाँच आदमियों में बैठा जुआ खेल रहा था।"

"जुआ" कहते हुए रेवा जैसे सुन्न-सी हो गई। रधिया घर जाने के

लिये सीढ़ियाँ चढ़ती हुई बोली—

"हाँ बीबी ! जुआ ही तो कह रहा था रमई ।"

और वे दोनों चली गईं। रेवा स्तब्ध ठण्डे पानी में खड़ी सोच रही थी—तुम्हारे लिये अब मैं यह क्या सुन रही हूँ ?

धीरे से उसने कमर की कलसी उतार कर घड़ौन्जी पर रख दी, और कन्धे पर से अन्गोछा उतार कर आंगन क ..लगनी पर फैला दिया। फिर वह थोड़े से फल तोड़ कर देवता के घर की तरफ़ जाने लगी। रामा बोली—

"और गीली धोती नहीं उतारेगी क्या ?"

रेवा ने मुड़कर कहा—"पूजा के बाद चूल्हा सुलगाऊँगी। उसके पास बैठते ही धोती सूख जायेगी मौसी ! ऐसी ज्यादा गीली नहीं है।"

पूजा के बाद उसने चाय तैयार की और मौसी के पास लेकर आई। वह बोली—

"आज घाट पर इतनी देर कैसे हुई रेवा ?"

चाय तिपाई पर रखते हुए वह बोली—"घाट पर शंकर की बहू और रधिया जमा थीं। एक बार पकड़ पाये, तो कहाँ छोड़ती हैं मौसी ?"

"रधिया से तूने पूछा नहीं। रमई शहर से लौटा या नहीं।"

"लौट आया है।"

"मनहर के लिये क्या कहता था ?"

रेवा सोचने लगी, जो सुना है वह मौसी से कह देना उचित है या नहीं। दुःखी तो जरूर होंगी, पर कहीं अगर रधिया सुनाने बैठ गई, तो बस मौसी को रुलाकर ही छोड़ेगी। मैं ही कहे देती हूँ। बोली—

"रमई कहता था, मिले थे वह। अच्छी तरह हैं।"

"इतने दिन से घर क्यों नहीं आया। रमई ने पूछा नहीं ?"

"शायद रमई ने यह उनसे नहीं पूछा। अपनी माँ से वह कहता था

कि मनहर शराब के नशे में थे, और फ़लाश खेल रहे थे।"

रामा उठकर बैठ गई। बोली—"यह कैसी बात रेवा? मनहर ने तो आजतक कभी शराब को छुआ तक नहीं था।"

रेवा थोड़ा हँस दी, बोली—

"आजकल के जमाने में तो शराब का चलन बिल्कुल चाय की तरह हो गया है मौसी? ऐसा कोई आदमी तुम शहरों में मुशकिल ही पाओगी जो चार दोस्तों में बैठ शराब न पीता हो।"

"परन्तु यह बात तो कुछ अच्छी नहीं है बेटी?

"गवई गाँव के लिये यह बात बुरी ही है, पर शहरों में तो इसे पीना फ़ैशन मानते हैं।"

"भाड़ में गया यह फ़ैशन! और यह "फ़लाश" खेलना क्या है।"

रेवा रसोई की तरफ चली गई थी। कई क्षण तक सोचती रही। फिर चूल्हे में तीन-चार फूकें मारने के बाद बोली—

"यह एक खेल होता है मौसी! क्लब में बैठकर लोग आम तौर पर इसे खेलते हैं।"

रामा नाराज होकर बोली—

"खूब भला लड़का है। मैं यहाँ पन्द्रह दिन से चिन्ता कर करके मरी जा रही हूँ और वह वहाँ बैठा तरह-तरह के खेल खेलता फिरता है। यह कैसा हो गया मेरा मनहर रेवा?"

रेवा ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। रसोई की चौखट पर बैठकर चुपचाप चाय पीने लगी।

रामा ने पूछा—"चूल्हे पर क्या चढ़ा दिया बेटी?"

वह बोली—"भात के लिये अधहन चढ़ा आई हूँ मौसी!"

"रामधन की बहू की और खैर-खबर मँगाई रेवा?"

"हाँ मौसी! धुनिया मिली थी। कह रही थी, आज दोपहर को वह चौका-बासन करने आएगी। अब अच्छी हो गई है।"

कहते हुए वह एक थाली लेकर भन्डार घर में घुसी। घड़ में हाथ डाल कर उसने चावल निकाले। मुश्किल से दो मुट्ठी चावल निकले। सोचने लगी—चलो इससे मौसी का तो पेट भर ही जायेगा। मेरी इस जून खाने की इच्छा भी तो नहीं है, अगर भूख लगी तो सब्जी तोड़कर बनाते देर क्या लगेगी?

चावल बीनकर उसने उबलते पानी में छोड़ दिये, फिर मौसी के पास जाकर बोली—

"इस जून भात के साथ क्या खाओगी मौसी?"

रामा ने उसकी तरफ़ करवट लेते हुए कहा—"क्या खाओगी मौसी? यह भी कोई ग़रीब आदमी से पूछने की बात है रेवा? जो घर में हो और इज्जत के साथ मिल जाये, वही खाकर उस दाता का शुक्र मनाना चाहिये।"

रेवा ने बगिया में घुसते हुए कहा—

"तुम्हारे भगवान जिस तरह दूसरे लोगों को दे रहे हैं, तुम्हें भी दे सकते हैं अगर चाहें तो, पर देते नहीं हैं। यह देख मेरा तो, उनका शुक्र मनाने को रत्तीभर जी नहीं चाहता मौसी? मैं तो सोचती हूँ इस बगिया पर मैंने बड़ी मेहनत की है। इसकी सब्जी खाते समय मुझे किसी का शुक्र मनाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि यह मेरी अपनी मेहनत का फल है।"

रामा नाराज होकर बोली—"भई रेवा? तू तो मेरे मनहर से भी ज्यादा नास्तिक है। राम-राम···कितना बढ़ कर बोलती है। मुन्ना बता। तूने बगिया में मेहनत तो की, पर धरती में ही भगवान् इन्हें सड़ा देते तो तेरी मेहनत क्या करती?"

"सो मैं जानती हूँ मौसी? दूसरे की ख़राबी करने में तो तुम्हारे भगवान् अपने चारों हाथों से काम लेते हैं। मैं इसके लिये कुछ कम सतर्क नहीं रहती। जिन बेचारों को केवल दो मुट्ठी अन्न मिलता

हो, उनकी थाली पर, तुम्हारे दीनबन्धू की सदैव लार टपकती रहती है। ऐसी नियत है इनकी, और जहाँ थाली भर-भर कर नौकर कुत्तों को अन्न डाल देते हैं, वहाँ भगवान् की दृष्टि नहीं पहुँचती, तब शेषशैया पर पड़े खुर्राटे लेते रहते हैं।"

रामा बोली—"रहने दे रेवा ? ऐसी बातें कहकर मेरा जी न दुखा बेटी ?"

रेवा चुप हो गई। फिर बोली—"मटर बना दूं मौसी ?"

"मटर टमाटर रसे के बना ले, भात के साथ यह तुझे भी तो भाते हैं न ? मैं भी वही खा लूंगी।"

"अच्छा" कहती हुई रेवा रसोई घर की तरफ़ चली गई, उसने मौसी को यह जानने नहीं दिया कि इस जून उसके खाने की तो कोई बात ही नहीं है।

दोपहर को मौसी जब खा-पी कर सो गईं। तो रेवा छप्पर के नीचे जाकर, सूखे मटरों का आटा पीसने लगी। मौसी ने पुकारकर पूछा—"अरी क्या पीसने लगी है बेटी ? रामधन की बहू आ तो रही है। दे देना पीस देगी ? तू क्यों इतनी मेहनत करती रहती है, कह तो।"

रेवा बोली—"कल पुस्तक में पढ़ा था मौसी ? कभी-कभी चक्की चलाने से फेफड़े अच्छे रहते हैं। इसलिये बे मतलब में सूखे मटर पीस रही थी, रामधन की बहू क्या करेगी इसमें ?"

क्षण भर तक रामा गुम सुम खाट पर पड़ी रही, फिर बोली—"इस वर्ष भी खेती अच्छी नहीं हुई, क्यों री रेवा ! घर का अनाज कहीं चुक तो नहीं गया बेटी ?"

रेवा चक्की चलाना बन्द करके बोली—"अभी तो ढेरों चावल, गेहूँ पड़ा है मौसी ? खाट पर पड़े-पड़े तुम दुनिया भर की चिन्ता करती रहती हो। तभी तो बीमारी जल्दी जा नहीं रही है।"

रामा बोली—"पहिले भण्डार घर हमेशा खुला पड़ा रहता था।

कभी ताला नहीं लगाया। अब तू उसमें हर वक्त ताला जड़े रखती है। इसी से मुझे सन्देह हुआ है, शायद वह खाली हो गया है।"

रेवा हँस पड़ी, बोली—"मौसी ? सचमुच में तुम बड़ी भोली हो, उल्टी ही बात कह रही हो। यह लो ! तुम्हारी रामधन की बहू भी आ गई, क्यों भाई ! अब कैसा जी है ?"

"अच्छा है जीजी !" कहती हुई वह रामा की कोठरी की तरफ़ गई। पैर छूने के बाद फिर चौके के द्वार पर आकर बोली—"कर लूँ चौका-बरतन जीजी ! तुम ने खा लिया ?

"हाँ खा लिया—" कहते हुए रेवा चक्की पर से उठ खड़ी हुई। इधर महाश्वेता का पत्र प्रभात ने पाया तो स्तब्ध बैठा पत्र की ओर देखता रह गया। उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया। पत्र के अक्षर लिप-पुत कर एक हो गये। मन पुकार उठा—'मुरला···मेरी मुरला··· अब मेरी नहीं रही, ओह···!'

उस दिन सारा दिन वह अपने कमरे से बारह नहीं निकला। उसके मित्र आये, पर वह अपनी जगह से टस से मस नहीं हुआ। हार-कर सब उसे अकेला छोड़कर चले गये। रात को उसने अपनी छाती में पिस्तौल मार लिया। उसकी पड़ोसिन राजकुमारी शिवाला ने उसे सम्भाला।

छै महीने बाद छाती का वह जख्म ठीक हुआ। प्रभात बिस्तर छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। डाक्टर जान्सन को प्रभात से पुत्रवत् प्रेम हो गया था। 'एक बार घर आ जाओ' ऐसे कितने ही पत्र उसके पिता और माता ने लिखे, पर प्रभात किसी तरह भी भारत लौटने को तैयार नहीं हुआ। उसका हृदय सबसे खट्टा हो चुका था, वह सोचा करता, निरीह बालिका···उस पर क्या बीत रही होगी। बापू ने उस मातृ-पितृ विहीन लड़की पर यह कैसा जुल्म किया है। उसका नहीं, तो मेरा तो ख्याल करते बापू ! मनहर चाहता, तो मुझे पहिले लिख देता, मैं अगर पहुँच

जाता, तो मुरला मेरी ही रहती। भारत जाकर करूँ क्या? जो मेरा था। वह पराया हो गया, अब वहाँ अपना है ही कौन, किसके लिये जाऊँगा मैं भारत? नहीं···मैं नहीं जाऊँगा, पर हाय मैं क्या सचमुच अब कभी मुरला को नहीं देख सकूँगा।

प्रभात ने सब जगह आना-जाना छोड़ दिया। दिन-रात किताबें लिये वह अपने कमरे में घुसा रहता। डाक्टर जान्सन उस पर बहुत प्यार करने लगे थे, वह उसके दिल टूट जाने की बात अच्छी तरह समझ रहे थे, और जानते थे। यह टूटा हुआ दिल अब अगर सम्भाल कर किसी जगह न लगाया गया, तो यह खूबसूरत नौजवान लड़का अपने को खत्म कर लेगा। वह उसके कमरे में आकर घण्टों उसे लेक्चर देते और जँचा देते कि जितने अच्छे-अच्छे मशहूर आदमी हो चुके हैं। सब इसी तरह चोट खा कर अपने को दुनिया के लिये दे देते रहे हैं।

एक दिन उन्होंने आकर कहा—"प्रभात, तुमने जिस शान से अपनी इस वर्ष की परीक्षा पास की है। उसके लिये एक मुझे, ही नहीं हमारे मैडकिल कालेज······को तुम पर गर्व है। तुम पहिले भारतीय हो जो यहाँ इस तरह फर्स्ट आये हो। आज तुम्हारे आनर में कालेज बड़ी ग्रेन्ड पार्टी दे रहा है। तुम ठीक आठ बजे वहाँ पहुँच जाना।"

प्रभात ने अचम्भे के साथ कहा—"पर मैं तो कभी किसी पार्टी में नहीं जाता डाक्टर जान्सन?"

उन्होंने उसके दोनों कन्धों को प्रेम से सहलाया और कहा—"इसे तुम मेरा हुक्म मानो बच्चे? और अपने को एक दम मेरे भरोसे छोड़ दो। मैं जो कुछ करूँगा, तुम्हारी बेहतरी के लिये ही! अच्छा ठीक आठ बजे।"

और वह चले गये, प्रभात ने मुरला के चित्र के सामने जाकर कहा—"कुछ घण्टों के लिये मैं तुमसे अलग हो रहा हूँ, डरोगी तो नहीं,

नहीं तुम राजपूत हो, डरोगी नहीं। वहां से आकर बातें करेंगे, सो मत जाना।"

और उसने अपने होंठ उस ठण्डी तस्वीर से लगा दिये।

पार्टी में प्रभात को आया देख लड़के-लड़कियां खुश हो कर तालियां पीटने लगे। डाक्टर जान्सन ने उसे अपने पास बैठाते हुए कहा—"प्रभात इस डिनर सूट में तुम बेहद खूबसूरत लग रहे हो। आज सर्दी बहुत है। लो बाराण्डी का गिलास पीयो, फिर जरा बांसुरी और वायलिन हो जाने दो।"

मन न होने पर भी प्रभात ने डाक्टर का मन रखने के लिए अपने कमरे से बांसुरी और वायलिन मँगा ली।

पहिले उसने बासुरी बजाई। अंग्रेज और भारतीय जो भी वहां सैंकड़ों की तादाद में मौजूद थे, मन्त्रमुग्ध सर्प की तरह बुत से बैठे उसकी तरफ़ ताक रहे थे।

बांसुरी खत्म हो गई, प्रभात ने रुमाल से मुँह पोछा। तालियों की गड़गड़ाहट से हाल गूँज उठा, कुमारी शिवाला प्रभात की क्लासफैलो थी। आकर बोली—"वही गत बजाओ कुन्वर, जो तुम सदा अपने कमरे में बजाते रहते हो।"

प्रभात हिन्दी में बोला— "उसे क्यों सुनना चाहती हो शिवाला? कमरे के बाहर उसे बजाने में मुझे बहुत तकलीफ़ होगी?"

शिवाला का मुँह उतर गया। डाक्टर जान्सन बोले—"मैं समझा नहीं प्रभात! तुम्हारी सहपाठिनी क्या चाहती है! पर तुम आज के दिन उसका दिल न तोड़ो।"

प्रभात ने एक ठण्डी सांस लेकर बांसुरी फिर ओठों से लगा ली। बांसुरी पुकार उठी—

बन्सी रही पुकार, राधे राधे, राधे! बन्सी रही पुकार।

कुमारी शिवाला एक टक उसका मुँह ताकती रही।

भोजन के बाद प्रभात ने डाक्टर के कहने से वायलिन भी बजाई। अँग्रेज लड़कियां दंग रह गईं। आपस में कहने लगीं—आज पहली बार एक ही जगह इतनी बातें देखने को मिली हैं। प्रभात-सा खूबसूरत बहुत कम दिखाई पड़ता है। फिर इतना पढ़ने में होशियार, ऐसा वायलिन और बाँसुरी का मास्टर। क्या लड़का है। इसकी मित्रता को सब लड़कियां तरसती ही रहेंगी। डाक्टर जान्सन कहते हैं वह एक भारतीय लड़की पर दीवाना है। जिसकी शादी एक दूसरे के साथ हो चुकी है। तब से यह एकान्त में रहता है। आज डाक्टर जान्सन के कहने से पार्टी में शामिल हुआ है।

इसी समय प्रभात डाक्टर जान्सन से इजाजत लेकर अपने कमरे की तरफ चल दिया। उसने दरवाजे पर खड़े होकर हाथ उठा कर सब को नमस्कार किया। सबने तालियां बजाईं। वह मुस्कराता हुआ चला गया।

अपने कमरे में आकर उसने मुरला के चित्र के आगे बांसुरी और वायलिन रखते हुए कहा—"तुम्हें आज मैंने बहुत कष्ट दिया मुरला! मैं जानता था, तुम मेरी उस पुकार से आ तो नहीं सकोगी। केवल तड़पोगी, पर शिवाला नहीं मानी। मुझे क्षमा कर दिया है न! मुस्करा रही हो, बड़ी प्यारी हो, सो अब सो जाओ! बहुत देर हो गई।"

उसने फिर उसे चूमा और एक सौफ़े पर रख कर उस चित्र को उसने कम्बल से ढक दिया। फिर कपड़े उतार कर अपने पलँग पर पड़ गया। अगले दिन डाक्टर जान्सन अपने बंगले के आगे बाग में टहल रहे थे। उनके मुँह में एक बड़ा-सा चुरुट लगा हुआ था। इसी वक्त शिवाला घोड़े पर चढ़ी वहाँ आई, डाक्टर ने आगे बढ़कर उसे घोड़े पर से उतारा और कहा—"गुडमार्निंग शिवाला! आज सुबह ही सुबह कैसे!

घोड़े की रास फाटक के कुन्डे से अटकाती हुई शिवाला बोली—"गुडमारनिङ्ग सर ! मैं आपसे कुछ जरूरी बात करना चाहती हूँ। इसीलिये सुबह ही सुबह आपको कष्ट दिया है।"

डाक्टर उसे बाग में ले आये और मुस्कराते हुए बोले—"निश्चय ! वह जरूरी बातें तुम्हारे मित्र प्रभात के बारे में हैं।"

शिवाला का मुंह लाल हो गया, बोली—"आपका कहना ठीक है सर ! मैं उन्हीं के बारे में कुछ पूछना चाहती हूँ।"

"तो कहो बेटी ! पहिले बताओ ! चाय पीयेगी क्या !"

"नहीं डाक्टर ! मैं अभी पी कर चली आ रही हूँ।"

डाक्टर बाग में पड़ी एक कुर्सी शिवाला के आगे सरकाकर दूसरी पर खुद बैठ गये। शिवाला बैठती हुई बोली—"प्रभात उस लड़की को शायद बहुत प्यार करते हैं।"

"शायद क्या बेटी ! सचमुच वह उसे बहुत प्यार करता है।"

शिवाला जरा इधर-उधर कर बोली—"पर डाक्टर ? वह उसकी तस्वीर के साथ इसी तरह पेश आते हैं, जैसे मुरला ही हो वह।"

डाक्टर ने दूसरा सिगार सुलगा लेने के बाद कहा—"इस बात को मैं जानता हूँ बेटी ! प्रभात के कमरे में मैं कितने ही समय सिर्फ़ यही देखने गया हूँ कि इस वक्त मुरला का चित्र कहाँ होगा ! हर वक्त वह उसकी आंखों के सामने होता है। बीमारी में भी मैं उसे देखता रहा हूँ, क्षण भर के लिये भी उसके चित्र को उसके आगे से मैं कभी हटा नहीं सका।"

शिवाला बोली—"यहाँ तक तो आश्चर्य की कुछ बात नहीं थी डाक्टर ! अनेक अपने प्रेमी के चित्र पर ऐसा मोह करते देखते आये हैं, पर प्रभात तो मुरला से रात-रात भर बातें करता रहता है। सुबह उसके कमरे में मैं कई बार गई हूँ। देखा है, वह धीरे-धीरे बोलता था—रात को मुरला तीन बजे के बाद सोई है शिवा ! आहिस्ता बोलो;

उसकी नींद टूट गई तो उसका सर दुखने लगेगा। कभी बाहर जाने के लिये कहो तो कहते हैं, नहीं मुरला अकेली कैसे रहेगी। वह तो बाहर निकलना चाहती नहीं। दिनभर मैं कालिज में रहता हूँ। वह कमरे में अकेली दिक्क आ जाती है। अब तुम्हारे साथ जाने से वह नाराज हो जायेंगी, नहीं तुम जाओ शिवा! मैं अब मुरला से बातें करूँगा।

डाक्टर कई मिनट तक चुप-चाप सिगार पीते रहे। फिर बोले—"इतना तो तुम्हें जानना चाहिये बेटी? आखिर मेडीकल शिक्षा ले रही हो कि जब आदमी आत्महत्या करता है, तब वह अपने होश-हवास में नहीं होता। प्रभात भी इस चोट से जब पागल होगया, तब उसने उसी पागलपन की झोंक में अपने हृदय पर गोली चला ली! छः महीने की मेरी कड़ी मेहनत से उसकी जान तो बच गई, पर थोड़ी सी कसर दिमाग में रह ही गई। हालांकि मैं इसका सारा इलाज पागलपन का भी करता रहा हूँ। डाक्टर फ़िलप कहा करते थे, यह क्या? आप ऐसे ऐन्जक्शन प्रभात को क्यों दे रहे हैं। अगर मैं इसका इलाज न करता रहता शिवाला? तो आज प्रभात को तुम एक पागल के रूप में पातीं।"

शिवाला सिहर उठी। डाक्टर बोले—"अगर तुम उसे सचमुच पसन्द करती हो तो हिम्मत न हारो, कभी न कभी उसके दिमाग से यह असर चला ही जायेगा और तब वह तुम्हारी इस सेवा और प्यार की जरूरत कद्र करेगा।"

"बचपन का प्रेम है वह डाक्टर? प्रभात की 'नस' 'नस' में समाया हुआ है। उसका असर इस जन्म में कभी नहीं उतर सकता। पर मैं तो उन्हें इसलिये प्यार करती हूँ डाक्टर? वह प्यार करने योग्य है, उससे कुछ पाने की मुझे ख्वाहिश नहीं।"

"यही प्रेम सच्चा प्रेम है बेटी? ईश्वर तुम्हें सफलता दे। जहां तक हो सके बेटी, उसे खुश रखने का प्रयत्न करो। उसकी सब बातें चुपचाप मान लिया करो। इसी से उसका दिमाग़ ठीक रह सकता है।"

शिवाला थोड़ी देर बाद उठ कर चली गई ।

दोपहर के समय वह प्रभात के फ्लैट में गई, उसके बूढ़े पुराने नौकर दीनू ने आकर दरवाजा खोल दिया और पूछा—"आज तुम पढ़ने नहीं गई बिटिया ?"

शिवाला ड्राइङ्गरूम के एक सोफ़े पर बैठती बोली—"आज मेरा जी ठीक नहीं था दीनू काका ? पड़े-पड़े ऊबने लगी तो तुम्हारे पास चली आई ।"

दीनू बोला—"इलायची और दालचीनी की चाय बनाये लाता हूँ, सर के दर्द के लिये बहुत अच्छी चीज है ।"

शिवाला सोफ़े की पीठ से सिर टेकते हुए बोली—"बाद में चाय बना देना । इस वक्त बैठकर मुझसे बातें करो दीनू काका ! मेरा मन उदास हो रहा है ।"

दीनू ग़लीचे पर सामने बैठ गया । शिवाला बोली—"अपने छोटे मालिक के बचपन की बातें सुनाओ दीनू काका !"

दीनू बताने लगा—शिवाला सब सुनती गई । बीच-बीच में खोद-खोद कर पूछती भी रही । दीनू ने बाद में कहा—

"मालिक ने अपने ही हाथों अपने एकलौते लाल का सब कुछ मट्टी में मिला दिया बिटिया ! बिटिया की तस्वीर तो तुमने देखी ही है । साक्षात् राजलक्ष्मी-सी सुन्दर है ।"

शिवाला बोली—"तुम्हारे छोटे मालिक कभी उन्हें भूलकर घर-गृहस्थी करेंगे ऐसी आशा तुम्हें होती है क्या !"

दीनू दृढ़ता से सिर हिलाते हुए कहा—"इन्हीं हाथों से इन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है बिटिया ? जितना इसके बारे में मैं जानता हूँ इतना इनके मां-बाप नहीं जान सकते । बड़े जिद्दी हैं छोटे मालिक । पिस्तौल से बच जरूर गये हैं, पर उनकी खुशी कोई लौटा कर नहीं ला सकता । डाक्टर जान्सन का भला हो जिन्होंने उनको एसी लाइन में

डाल दिया है। जिससे उनकी तबीयत काम में लगी रहती है। पर वह अब इस जीवन में किसी दूसरी लड़की को अपना नहीं बना सकते।"

शिवाला का मुँह बर्फ़-सा सफ़द पढ़ गया। बोली—"तुम्हें-तुम्हें कुँवर पर कोई सन्देह नहीं होता दीनू काका ?"

"सन्देह" कहते हुए दीनू चौंक पड़ा, चकित होकर बोला—"किस बात का सन्देह बेटी ?"

"यही···कि वह कुछ अजीब से हो गये हैं······सदा से वह क्या ऐसे ही थे ? सिवा पढ़ने के और कभी कहीं आते-जाते न थे। किसी से बोलते, बातचीत नहीं करते थे।"

"मैंने तो तुम्हें अभी बताया है बेटी ? मुरला बिटिया, मनहर भैया और महाश्वेता, इन तीनों के साथ दिन भर ऊधम होता था। सन्ध्या को घोड़ों की दौड़, नाव की दौड़, गाना-बजाना चलता था। पढ़ने के लिये तो मालिक चिल्लाते ही रहते थे पर कुँवर कभी पुस्तक लेकर नहीं बैठते थे। मालकिन भी कह देती थी—"अच्छी तरह पास तो हो जाता है। हर वर्ष।" फिर क्यों उसके पीछे पड़े रहते हैं आप ? खेलने-कूदने दें—बच्चों के यह दिन फिर लौट कर नहीं आते।"

"सच कहती थीं तुम्हारी मालकिन, वह दिन फिर लौटकर नहीं आते। मुरला नाव की दौड़ में भी खूब होशियार थी क्या ?"

"कुछ न पूछो बेटी ? तीनों मुँह ताकते रह जाते और मुरला बिटिया तीर की तरह पानी को चीरती हुई, आगे निकल जाती। चित्र में उसकी बीच की उँगली में जो बहुत बड़े हीरे की तुम अंगूठी देखती हो न। वह एक दिन नाव की बाजी की जीत में ही तो कुंवर ने पहनाई थी। यह अंगूठी दशहरे वाले दिन मालिक ने कुंवर को दी थी। कहा था—इक्कीसवें वर्ष में इस वंश का बड़ा लड़का इस अंगूठी को पहनता है, और शादी के बाद यह अंगूठी अपनी पत्नी की उँगली में पहिना देता है।"

"मालिक को पता लग गया था, कुंवर ने वह अंगूठी मुरला को दे दी ?"

"हाँ बेटी ! पर उन्होंने कुछ कहा नहीं मुंह से। कुंवर की मन्शा समझ-कर, उन्होंने बहाने से बच्चे को विदेश भेज चुपचाप बिटिया का ब्याह दूसरी जगह कर डाला।"

"तो ऐसे खुश मिजाज थे तुम्हारे छोटे मालिक ? परन्तु अब। जैसे वह सब कुछ भूल गये हैं।"

"फिर भी तुम्हें कोई सन्देह नहीं होता दीनू काका ?"

"मैं बूढ़ा समझा नहीं बेटी ? कुछ तुमने देखा, वह—वह समझते हैं कि मुरला उनके साथ रह रही है। वह उससे बातें करते हैं। हमारे साथ कहीं बाहर नहीं जाते, कहते है मुरला का जी नहीं लगेगा, वह नाराज हो जायेगी। कभी कहते हैं, आहिस्ता बोलो—वह सो रही है, रात तीन बजे के बाद । कच्ची नींद जागने से उसका सिर दुखने लगता है।"

दीनू का चेहरा उतर गया बोला—"वह सब तो रोज देखता ही हूँ बेटी ! पर इसके लिये अब उन्हें कहा क्या जा सकता है ? वैसे पढ़ने में तो सब ठीक है।"

"पढ़ने में तो वह…सबसे आगे रहते हैं। डाक्टर जान्सन कहते हैं और सब तरह से ठीक हैं। पर दिमाग़ पर मुरला छाई हुई है। उसे खोकर जो दुख से उन्होंने आत्म-हत्या करने की कोशिश की थी। उससे वह बच गये भाग्य से, पर दिमाग़ में यह बैठ गया। मुरला को वह जैसे पा गये हैं।"

"अब क्या होगा बेटी ?"

"उनके दिमाग़ से मुरला को हटाया नहीं जा सकता क्या ?"

डरकर दीनू बोला—"ऐसी कोशिश मत करना, नहीं तो वह पूरे पागल हो जायेंगे।"

"अच्छा···कोई और तरकीब सोचूँगी।"

"अब चाय बना लाऊँ बेटी ?"

"अच्छा बना लाओ काका ?" दीनू चला गया।

पूरे ! बीस दिन बाद एक सन्ध्या को मनहर ने अपने घर के आंगन में पैर रखा। सामने तुलसीचौरे पर एक ओर बैठी रेवा सब्जी कतर रही थी।

मनहर को देखकर उसका कलेजा धड़कने लगा। कन्धे पर खिसक गये अंचल को उठाकर उसने सिर पर ओढ़ लिया। मनहर ने पास आकर मीठे स्वर में कहा—"कैसी हो रेवा ?"

"जी अच्छी हूँ।" कहती हुई रेवा चौरे से उतर गई। मनहर बोला

"काकी कहाँ है !"

मनहर के आगे मोढ़ा रखते हुए वह बोली—"अपनी कोठरी में सो रही हैं। आज फिर तबियत कुछ ख़राब सी हो गई है।"

मनहर मोढ़े पर बैठता हुआ बोला—"अभी रास्ते में वैद्य जी मिले थे। कहते थे काकी बीच में बहुत बीमार हो गई थी। पर तुमने तो मुझे ख़बर नहीं दी रेवा ?"

रेवा फिर अपनी जगह बैठकर सब्ज़ी कतरने लगी थी। बोली—"आप थे कहाँ, यह तो मैं जानती नहीं थी। जानती तो ख़बर देती कैसे नहीं, फिर भी रमई को तो भेजा था। वह कहता···था······।"

कहते-कहते रेवा चुप हो गई, मनहर को याद आया—'हाँ···एक बार रमई आया तो था···पर उसकी कोई बात सुनने को मैं तैयार नहीं हुआ था' लज्जित होकर वह बोला—

"हाँ···एक बार आया था वह, याद आया। ग़लती मेरी ही थी रेवा ? काम लगे होने का यह मतलब हरगिज़ नहीं होता कि घर वालों की सुध-बुध ही लेना छोड़ दी जाये। रामा ने आवाज़ पहचान कर कहा—"कौन मनहर ! अरे तू आया है क्या ?"

मनहर जल्दी से उठकर उसके पास गया। रामा ने उसे पैर छते देख छाती से लगा लिया और कहा—"क्यों रे पागल? ऐसा क्या कर रहा था शहर में। जो एक दिन भी घर नहीं आ सका?"

"कर तो काम ही रहा था काकी।"

"क्या तुझे कोई नौकरी मिल गई रे मनहर।"

मनहर हँस पड़ा, बोला—"मुझे तो कोई नौकरी नहीं मिली काकी? पर मैं नौकरी को मिल गया।"

"सो कैसे बेटा! मैं तो कुछ समझी नहीं।"

"अरे! इसमें समझना क्या है? पहिले मैं नौकरी के पीछे मारा-मारा फिरता था। फिर पक्का कर लिया कि नौकरी नहीं करेंगे। तब लोग मेरे पीछे फिरने लगे, मनहर यह कर लो वह कर लो, अब वही करता हूँ। इसी से कहता हूँ, नौकरी को म मिल गया?"

रामा ने पूछा—"तूने चमार की बेटी के ब्याह में रुपया दिया मनहर—"

मनहर ने उसके पैरों को सहलाते हुए कहा—"हाँ काकी? रोता फिर रहा था, मैंने कहा था काकी से माँगकर दूंगा, फिर मैं भूल गया तुमसे कहना और शहर चला गया, जब वहाँ पहुँचा, इधर-उधर से करके उसे रुपये दिये। क्या हो गया ब्याह?"

"हाँ!—पर मनहर! तू इस तरह हर एक को रुपया क्यों देता है रे···यहाँ के लोग बड़े नाशुके हैं। बाद में कहते हैं, मनहर जरूर जुआ खेलता है। तभी इस तरह रुपया बाँट देता है। नेक कमाई हो, तो देते छाती फटे।"

मनहर को बहुत बुरा लगा, पर ऊपर से हँसकर बोला—

"तुम इन बातों की परवाह मत किया करो काकी?"

"जा! जाकर चाय पीले, रेवा ने चाय बाहर लगा दी है। प्यालों की आवाज आ रही है।"

मनहर ने बाहर आकर देखा, रेवा ने सचमुच तिपाई पर चाय लगा दी है, मोढ़े पर बैठ वह चाय पीने लगा।

रेवा बोली—"आपको कोई नौकरी नहीं मिली, नौकरी को आप मिल गये, इसका मतलब ठीक से मौसी समझी नहीं है। पर मैं समझ गई हूँ।"

मनहर चुपचाप चाय पीता रहा। रेवा बोली—

"रमई ने आकर उस दिन बताया था, आपने यहाँ का कोई सन्देश उससे सुनना ही नहीं चाहा, क्योंकि आप उस वक्त······

मनहर ने उसे चुप होते देखकर कहा—"नशे में था, तब यह सुनकर तुम्हें, मुझ से घृणा तो हुई होगी रेवा ?"

"मेरे किसी व्यवहार से आपको आज ऐसा कुछ आभास मिला है क्या ?"

"नहीं।"

"मैंने तो आपको जब शुरू-शुरू में देखा था, तब भी आप होश-हवास में नहीं थे।"

होश-हवाश में नहीं था। कहती क्या हो रेवा ? तब तक तो सचमुच—मैंने कभी शराब को छुआ तक नहीं था।"

उसकी खाली प्याली में चाय डालती हुई वह बोली—"आप शराब के नशे में न थे।"

और वह रसोई घर में जाकर चूल्हे पर चढ़ी सब्जी को देखने लगी। आध घण्टे बाद जब वह अपना काम ख़त्म कर चौके से बाहर निकली तो देखा, मनहर उसी तरह मोढ़े पर गुम-सुम बैठा है। रेवा ने लालटेन जलाकर आंगन के बीचोबीच एक खम्भे से लटका दी और उसके पास जाकर बोली—"मनुष्य को केवल शराब का नशा मदहोश कर सकता है ऐसी तो बात है नहीं, धन के नशे में भी मनुष्य अपना ज्ञान खो बैठता है, फिर शराब का नशा तो केवल कुछ घण्टों के लिए चढ़ता है। होश

आने पर इन्सान सम्भल सकता है। पश्चात्ताप कर सकता है, पर धन और प्रेम के नशे में मदहोश हो चुका हो तो उसके होश में आने की आशा ही क्या है, कहिये तो।"

मनहर ने सिर उठाकर रेवा के मुंह की तरफ़ देखा, उसके उज्ज्वल सांवले मुखड़े पर लालटैन की पड़ती हुई रोशनी बड़ी भली लग रही थी, एक हाथ से वह उस खम्भे को पकड़े थी, चौड़ी, लाल किनारे वाली सफेद धोती में रेवा की सांवरी सुडौल देहलता लिपटी हुई उसकी सुन्दरता में चार चांद लगा रही थी।

मनहर ने आंखें झुकाकर कुछ कहा, पर आवाज रेवा के कान तक नहीं पहुँची। क्षण भर तक इन्तज़ार करते रहने के बाद वह बोली—

"और फिर जब कोई ऐसा मदहोश किसी चौराहे पर अपने डगमगाते पैरों से पहुंच जाता है तो प्रयत्न करने पर भी उसकी समझ में यह नहीं आता, किस तरफ़ वाली सड़क पर जाने से वह सीधा अपने घर तक पहुँच जायेगा। ऐसी हालत में उसे दूसरे का सहारा लेना ही चाहिये, पूछताछ करनी ही चाहिये। बिना ऐसा किये वह कभी अपनी असली मन्जिल पर नहीं पहुँच सकता।"

"यह तो तुम बिल्कुल ठीक कहती हो रेवा? पर जिस अभागे को चौराहे पर आस-पास कोई दिखाई ही न पड़े, तब उसके पास इसके सिवा चारा ही क्या है कि वह खुद हर सड़क पर टक्करें मारकर देखे। आखिर कभी तो असली मन्जिल उसे मिल ही जायेगी।"

रेवा हँसी। मोती के दाने से सुन्दर, सफेद-स्वच्छ दाँतों की एक झलक मनहर को दिखाई दी। जैसे घण्टा में बिजली चमकी हो ऐसा लगा मनहर का। उसने फिर आंखें घुमा लीं—वह बोली—"ऐसा कभी हो सकता है क्या? रात-दिन चलने वाली सड़क पर कोई दिखाई न दे। यह कहिये मदहोश को सूझता कहां है। नशे में बिल्वमंगल भी तो सांप को रस्सी समझ बैठे थे।"

मनहर इसका कोई उत्तर न दे सका, वह बोली—

"चलिये ! मुँह-हाथ धो डालिये, भोजन बिल्कुल तैयार है।"

"क्या बनाया है ?

"जो-जो आपको भाता है वही, वेसन पालक की भुजिया है, कढ़ी के साथ बाजरे की रोटी है।"

उछल पड़ा मनहर, बोला—"आहा, आज इतने दिन बाद घर की रोटी खानी नसीब होगी। नहीं तो शहर के उस होटल का 'बियरर' तो रेवा ? साग-सब्जी थाल में रखता है तो खाने में लगता है, जैसे घास-फूस ऊबाल कर कंचन की थाली में सजा दिया हो।"

रेवा मुस्कराती हुई बोली—"पर महीने में पच्चीस दिन जब वही घास-फूस नसीब में लिखा है, तब उसकी इसतरह बैठकर बुराई करनी क्या उचित है ?"

मनहर हँसता हुआ उठकर मुँह-हाथ धोने चला गया।

मनहर की थाली में गर्म-गर्म बाजरे की रोटी रखती हुई वह बोली—"एक बार भी आप कभी मुरला को देखने उसके गांव नहीं गये क्या ?" मनहर ने खाते-खाते कहा—"नहीं रेवा ? मैं उसको देखने कभी नहीं गया ? क्यों ? मेरे जाने से क्या वह खुश होगी रेवा !"

"सारा बचपन उसके साथ खेल कर बिताया है आपने ! यह तो आपके ही समझने की बात है।"

"तभी तो—कह रहा हूँ मैं। वह मुझे देखकर और भी दुखी होगी।"

रेवा ने क्षण भर तक इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। फिर उसकी थाली में रोटी और कढ़ी परोसते हुए कहा—"वह बीमार है, उसे एक बार देखने जाना आपका फ़र्ज है।"

मनहर ने चौंककर कहा—"बीमार है। क्या हुआ है उसे ?"

"उसके लड़की हुई है। तब से बीमार चली आ रही है। जाइये एक बार उसे देख आइये।"

"अच्छा ! किसी दिन देख आऊँगा ?"

फिर कई क्षण खामोशी में कट गये । मनहर बोला—"तुम्हारी उस दिन की भविष्य वाणी पूरी नहीं उतरी रेवा ? बच्चे और समाज की प्यारी चाहे मुरला बन गई हो, पर पति की प्यारी तो शायद नहीं बन सकी है।"

"सन्तोष की बात है। मुरला ने प्रयत्न करने में कोई कसर उठा नहीं रखी। हर जगह उसकी प्रशंसा हो रही है। पति को वह प्यार करती है, आदर करती है। ग़लती तो उसके पति की है, जो ऐसी पत्नी की कद्र न कर सके, नहीं तो आज उनके घर में स्वर्ग उतर आता। अरे, आप तो उठे जा रहे हैं, एक रोटी तो और लें।"

"नहीं रेवा ! अब और नहीं ! पेट भर गया है।"

कहता हुआ मनहर हाथ धोकर अपने सोने के घर में चला गया। मौसी को पथ्य देकर उसने खुद रोटी खाई, और चौका उठा दिया। ताले-कुण्डे बन्द कर वह सोने के लिये मौसी के पास गई, वह बोली—

"रेवा ! बेटी यह कम्बल मनहर को और दे आ। सर्दी काफ़ी है। बाहर क्या बारिश हो रही है ?"

"नहीं मौसी ? मामूली बूँदें पड़ रही हैं।"

और वह कम्बल लेकर मनहर की कोठरी में घुसी ? देखा मनहर चित्त पड़ा, दरवाजे की ही ओर देख रहा है। सकपका कर बोली—"मौसी ने यह कम्बल भेजा है।"

कहते हुए उसने वह कम्बल मनहर को ओढ़ा दिया, उसके लौटते देख मनहर बोला—

"सुनो रेवा !"

रेवा मुड़ी और दरवाजे पर ही ठहर गई। वह बोला—

"आख़िर फिर उस मदहोश को घर का रास्ता कौन बतायेगा—"

रेवा ने अपने लम्बे नेत्र मनहर के मुँह पर लगाते हुए कहा—

"रास्ता बताना भी क्या कुछ मुश्किल बात है, वह भी एक मदहोश को—जिसके भी होश-हवास सही-सलामत होंगे, वही उसे ठीक रास्ते पर लगा देगा।"

"तुम ऐसा कर सकोगी रेवा ?" रेवा का मुँह लाल हो गया। आँखें नीची कर स्थिर कण्ठ से बोली—"शायद कर सकूँ ?"

मनहर उठकर बैठ गया। व्याकुल कण्ठ से बोला—"तब पहिले यही बताओ रेवा ? मैं क्या करूँ ? हमारे देश में कितने ही परिवार आज भूखे मर रहे हैं, कितने ही होनहार युवक बेकारी से तंग आकर आत्म-हत्या कर रहे हैं। कैसे क्या करने से ये सब मुश्किलें दूर हो सकती हैं ? मैं वही करूँगा। तुम बताओ रेवा, मुझे क्या करना होगा ?"

रेवा स्तब्ध उसका मुँह ताकती रह गई। इन बातों का वह लड़की क्या उत्तर दे सकती थी। मनहर फिर बोला—"हमारे भारत की वह नारी जो सदा यहाँ देवी की तरह पुजती रही है, आज पेट की ज्वाला को बुझाने के लिए वेश्या बनकर सब का मनोरंजन कर रही है। क्यों रेवा, ऐसा क्यों है ? दुनिया में हर चीज का बिकना मैं सहन कर सकता हूँ, पर नारी की इज्जत का नहीं।"

रेवा चुप ही रही, मनहर कहता गया—"इसी से कहता हूँ रेवा ? जब तक हम, यानी हमारे देश के नौजवान कमर बांधकर गवर्नमेण्ट का हाथ नहीं बँटायेंगे, तब तक भारत की दशा सुधर नहीं सकती और यह तभी होगा जब कि हर नौजवान यह सोच लेगा कि उसके जीवन का ध्येय केवल दाल-रोटी ही नहीं है, देश के प्रति भी उसका कुछ कर्त्तव्य है। अपनी और अपने परिवार की चिन्ता तो सभी कर लेते हैं। पर यथार्थ में मनुष्य वही है, जो दूसरों के लिये कुछ करता है, अपने को मिटा कर दूसरों को बनाता है। जीवन भी उसी का सार्थक है, वही जीने का अधिकारी है, नहीं तो अपना पेट तो कुत्ता भी भर लेता है।"

दरवाजे से पीठ टेके रेवा उसकी बातें ध्यान से सुन रही थी।

बोली—"उस शहर वाले होटल में बैठकर, आप राजसत्ता का हाथ बँटा रहे हैं या देश की इन सब असुविधाओं को दूर करने में संलग्न हैं। क्या इस बात पर मुझे विश्वास कर लेने के लिये ही कहते हैं ?"

"तुम्हें जोर देकर, इस पर विश्वास कर लेने के लिये मैं नहीं कह सकता रेवा ?"

"तब क्या मैं पूछ सकती हूँ—यह शराब और जुए की लत देश के ग़रीबी में किस तरह सहायक होगी ?"

मनहर रेवा के इस व्यंग्य से तिलमिला उठा, बोला—"ग़रीबी का एकमात्र सहायक धन है रेवा ? जुए से यही मिलता है।"

"मिलता है, पर क्या सदा मिलता ही रहेगा। जुआ कभी इसे नष्ट नहीं कर सकेगा ! ऐसा आप निश्चित रूप से कह सकते हैं क्या ?"

मनहर इस बात का उत्तर खोजने लगा, रेवा उसे चुप देखकर बोली—"यह सहारा ग़लत है, इससे देश के ग़रीब भाई-बहिनों का कुछ भला नहीं हो सकता, उल्टा सहायक नष्ट हो सकता है।"

मनहर क्षीण हँसी हँसकर बोला—"तुम ठीक से मेरी बात समझीं नहीं रेवा ? और शायद मैं समझा कर कह भी नहीं सका—मेरा मतलब है, जैसे भी हो कुछ धन इकट्ठा कर लूँ, फिर एक होटल खोल कर उसकी आमदनी से इन सब की सहायता करूँ ? नहीं तो कोरी सहानुभूति से इन सब का क्या भला हो सकता है। यह समस्या तभी हल होगी, जब कहीं से रुपया पाऊँगा। इसके लिये जुआ तो क्या ? अगर मुझे कहीं डाका भी मारना पड़ा, तो पीछे नहीं हटूँगा।"

"डाका।" रेवा चौंक पड़ी, रधिया यही तो कहा करती है। बोली—"अब आराम कीजिये ! मैं जाती हूँ।"

"मेरी किसी बात से नाराज़ तो नहीं हुई न ?"

"नहीं—"

"हाँ···रेवा ? मुझसे कभी नाराज़ मत होना। सच पूछो, तो मुझ

से कोई भी खुश नहीं है, या दूसरे शब्दों में मेरा कोई हमदर्द नहीं है। कोई मेरा मित्र नहीं है। तुम···तुम अगर मेरी हमदर्द बन सकीं तो मैं बड़ा भारी सहारा पा जाऊँगा। शायद मैं आदमी बन जाऊँ...और... अच्छा, जाओ आराम करो, एक अभागे की दास्तां कहाँ तक सुनोगी।"

रेखा धीरे-धीरे चली गई, मनहर आप ही आप कह उठा-"तो तुम··· मुरला, बीमार हो···मैं-मैं आऊँगा, तुम्हारे पास। मुझे विश्वास है। तुम अपने इस बाल-सखा के अपराध को जरूर भूल गई होगी।"

दूसरे, दिन सन्ध्या को मनहर मन्दिर की तरफ गया। पूजा-अर्चना के बाद उसने महात्मा के चरण छुए। महात्मा बोले—

"यशस्वी हो बेटा? बहुत दिन बाद दिखाई पड़े, कहाँ थे।"

"नाहरपुर में ही था बाबा? देवी महाश्वेता और चारणी मां कहाँ हैं?"

"अपनी कोठरी में ही होंगी बेटा? जाओ चले, जाओ, मिल आओ, जाकर? महाश्वेता तो मुरला, कुँवर और तुमसे बिछुड़कर एकाकिनी हो गई है। बहुत समझाता हूँ कि तू देवदासी है, तेरे मन में किसी के प्रति इतनी मोह-माया का हो आना नियम-विरुद्ध है। पर उसके हृदय में यह बात बैठती नहीं है, चारणी के तोता, मैना जब तुम सब के नाम लेते हैं तो महाश्वेता रोने बैठ जाती है।"

मनहर चारणी की कोठरी की तरफ चला, मैना ने उसे आते देख हमेशा की तरह कहा। मनहर प्रभात···मुरला···महाश्वेता-

तोता चिल्ला उठा-"कहाँ है वे चारों···कहाँ हैं वे चारों—"

मनहर का मन भी जैसे पुकार उठा—"कहाँ हैं वे चारों, कहाँ हैं।"

चारणी मां उसे पैर छूते देख बोली—"यशस्वी हो बेटा? आओ बैठो। इस चटाई पर बैठो।"

मनहर चटाई पर बैठ गया और बोला—"महाश्वेता कहाँ है मां?

"अभी बुलाती हूँ।" कहती हुई चारणी उसे बुलाने चली गई।

मनहर सोचने लगा, एक दिन था जब हम चारों यहाँ बैठकर जाने कितना ऊधम मचाते थे और आज वह दोनों······

महाश्वेता आ गई, मनहर ने उठ कर उसके पैरों पर हाथ रखा। वह मुस्कराती हुई बोली—"कल्याण हो भैया! पर आज यह इज्जत जो तुमने मुझे बख्शी है। उससे मुझे सुख नहीं मिला।"

"सो जानता हूँ महाश्वेता? पर ऐसा करना जरूरी है, नहीं तो यह सब लोग···वैसे हृदय में तो तू वही चुड़ैल बहिन है मेरी?"

महाश्वेता उसके पास बैठ गई, बोली—"कहाँ रहते हो भैया! क्या करते रहते हो? तुम्हारी तो बड़ी-बड़ी कहानियां सुनने म आती हैं।"

"कहानियाँ···कैसी कहानियाँ तुमने सुनी हैं महाश्वेता?"

"यही, तुम लोगों को मुट्ठी भर-भर कर रुपया बाँटते फिरते हो। जो तुम्हारे नाहरपुर के होटल वाले कमरे के दरवाजे पर पहुँच आता है। निहाल हो कर लौटता है।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद···कुछ नहीं भैया, पर मैं कहती हूँ। अगर पुण्य ही लूटना चाहते हो? तो अपने देश में ग़रीबों की कमी नहीं है। नाहरपुर में किसी को कुछ देने-दिलाने की जरूरत नहीं है।"

"यह क्यों महाश्वेता? नाहरपुर में भी तो अनेक ग़रीब हैं।"

"पर दुष्ट कितने हैं! एक तो तुम उन्हें जैसे-तैसे कर के रुपया देते हैं, ऊपर से यहाँ आकर कहते हैं—बिल्कुल अवारा हो गया है मनहर, शराब पीता है, जुआ खेलता है। तभी रुपया बांटता फिरता है, कौन-सी उसकी मेहनत की कमाई है, जो देने में मुश्किल पड़े।"

मनहर का मुँह क्रोध से तमातम उठा। पर क्षण भर बाद ही उसने अपने को सम्भाल लिया और मुस्कराते हुए बोला—

"मूर्ख हैं ये लोग महाश्वेता? इन पर गुस्सा नहीं, दया आती है।

रेखा भी ऐसी बातें सुन दुखी हो उठती है। काकी को भी रन्ज होता है। पर खैर, छोड़ो यह बातें···यह कहो···तुम को ऐसी बुझी-बुझी क्यों देख रहा हूँ।" हँसती हुई बोली—"जलना और बुझना दीपक के वश की बात नहीं होती जो वह बता सके, क्यों वह सन्ध्या को जलाया जाता है और क्यों सुबह होते ही बुझा दिया जाता है?"

"देखता हूँ। तुम्हारे मन की आँधी ने बवण्डर का रूप धारण कर लिया है, तुम उसे रोकने में असमर्थ हो चुकी हो। परन्तु लोग यह नहीं समझते। कहते हैं—महात्मा का स्वप्न सच्चा हो गया, उसकी शिष्या महाश्वेता पूर्ण देवदासी बन चुकी है। उसके चरणों की रज से केवल बृजपुर ही नहीं···आस पास के गाँव भी धन्य हुए हैं।"

"सुनकर तुम्हें कैसा लगा था भैया?"

"कुछ अच्छा नहीं लगा था। तुम्हें मैं मानुषी देखना पसन्द करता हूँ। देवता की तरह पत्थर नहीं।"

महाश्वेता हँसी। बोली–"पर जो देवता के चरणों में उत्सर्ग हो गई हो। उसे मानुषी रहने से चल भी तो नहीं सकता। पत्थर की होगी वह तभी तो समाज के नियम और अत्याचार सहन कर सकेगी।"

मनहर निरुत्तर हो गया। ठीक तो कहती है महाश्वेता, इस उम्र में, ऐसे कड़े नियमों का पालन जैसे हर बात में अपने मन को मारना, मनुष्य से हो सकता है क्या। ठीक है महाश्वेता को पत्थर ही बनना पड़ेगा।

महाश्वेता बोली—"मुरला बीमार है।"

"हाँ···मैंने रात रेखा से सुना था।"

"उसे देखने नहीं जाओगे क्या, भैया?"

"मेरे जाने से वह दुखी तो न होगी महाश्वेता?"

बहुत देर तक महाश्वेता कुछ नहीं बोली—मनहर भी चुपचाप बैठा रहा, तोता-मैना वही बात दोहराये चले जा रहे थे—'वे चारों कहाँ हैं?'

महाश्वेता बोली—"मुरला बड़ी समझदार है भैया ? तुमसे जो अपराध बन पड़ा है उसे उसने अब तक जरूर क्षमा कर दिया होगा। वह हम दोनों को भी बहुत प्यार करती है बहुत···। कुंवर ने उसका प्रेम पाया है—तो हम दोनों ने ममत्व पाया है, यह कोई मामूली चीज नहीं है ! उससे जाकर मिलोगे, तो सब समझ में आ जायेगा।"

"अच्छा···मैं कल जरूर बासीपुर आऊँगा बहिन···अब चलता हूँ।"

और वह उठ खड़ा हुआ। महाश्वेता साथ-साथ कमरे के बाहर तक गई। फिर बोली—"सदा की तरह आज भी बाग़ में से गुजरते हुए कोई गीत गाते हुए निकलना भैया ? मैं तुम्हारे मीठे स्वर को सुनने के लिये बिल्कुल तरस गई हूँ।"

"अच्छा बहिन !" कहता हुआ मनहर सीढ़ियाँ उतर गया। बाग़ में से निकलते हुए वह तलक़ का गीत गा उठा—

जली जो शाखे चमन साथ बाग़बाँ भी जला।
जला के मेरे नशेमन को आसमां भी जला।
एक मैं हूँ एक मेरी बेबसी की शान है।
अब तो तुझ बिन जिन्दगी भी मुझ पे एक इलजाम है।
दिल पे क्या गुजरी तेरे जाने से कोई क्या कहे,
सांस जो आती है वह भी दर्द का पैग़ाम है।

दूर होती गई आवाज और फिर बन्द हो गई, महाश्वेता के मन में यह शब्द उमड़-घुमड़ कर कष्ट पहुँचाने लगे।

दिल पे क्या गुजरी तेरे जाने से कोई क्या कहे,
सास जो आती है वह भी दर्द का पैग़ाम है।

: ७ :

मुरला आँखें बन्द किये पलंग पर पड़ी है। गौरी माँ ने आकर कहा—"क्या सो रही हो बिटिया ?" मुरला ने बिना आँखे खोले कहा—"नहीं···।"

"मनहर भैया तुम्हें देखने आये हैं।"

"मनहर" कहते हुए मुरला ने आँखे खोल दीं, फिर थके स्वर से बोली—"कहाँ है। बुला क्यों नहीं लाई।"

गौरी वापिस चली गई, मनहर कमरे में आया, मुरला के सूखे होंठों पर उसने एक अजीब-सी मुस्कान देखी। वह बोली—

"आओ मनहर, तुम्हें मेरी सुध कभी न कभी आयेगी जरूर···इस पर मुझे पूर्ण विश्वास था। बैठो, इस कुर्सी पर बैठो—कहो कैसे हो ?"

मनहर कुर्सी बिल्कुल उसके पास करता बोला—

"जानता कहाँ था कि तुम इतनी बीमार हो गई होगी मुरला।"

"जान सकते भी कैसे हो मनहर ? तुम तो बृजपुर रहते नहीं, तुम ऐसे क्यों हो गये मनहर ?"

मनहर उसकी इस ठण्डी सांस से चौंक पड़ा, बोला—

"ऐसा कैसा मुरला ?"

"निर्मोही···काकी की सुध नहीं रखते, गाँव में रहते नहीं, अपनी जमीन-जगह का इन्तजाम नहीं करते, और···और···"

मनहर जैसे उसकी बात पूरी करता हुआ बोला—"और जुआ खेलते हो, शराब पीते हो, बुरे आदमी बन गये हो।"

मुरला हँसी। बोली—"बुरे तुम कभी नहीं बन सकते मनहर ? कभी नहीं, तुमसे ज्यादा तुमको मुरला जानती है।"

"इतना विश्वास अच्छा नहीं मुरला ! तो क्या तुम सचमुच नहीं जानतीं, तुम्हारे विवाह की खबर मैं चाहता तो कुँवर को दे सकता था, और तुम दोनों की जिन्दगी बन सकती थी, अब भी मैं बुरा आदमी नहीं हूँ।"

"कैसे भोले हो तुम, जिन्दगी बनानी क्या मनुष्य के हाथ में होती है मनहर, पहिले-पहिल मैंने भी तुम पर बहुत गुस्सा किया है। बहुत दिन तक सोचते रहने के बाद मेरी समझ में आया है। इसमें मनहर का क्या दोष ? भगवान को जब यह मन्जूर ही न हुआ ? अगर तुम कुँवर को खबर कर भी देते और फिर-फिर अगर कुँवर को ही कुछ हो जाता, तो भी यह ब्याह न हो सकता। मुझे तो इतने से ही सन्तोष है कि वह अब ठीक है।"

"तुम्हें वह पत्र लिखते हैं।"

"नहीं..."

"क्यों .."

मुरला की आँखें डबडबा आईं, बोली—"दीनू काका का पत्र बराबर पाती हूँ, पढ़ोगे क्या ?"

मनहर ने सिर हिलाया। मुरला ने तकिए के नीचे से पत्र निकालकर उसके हाथ पर रख दिया। वह पढ़ने लगा। पत्र समाप्त कर वह आध घण्टे तक चुपचाप बैठा उस पत्र की ओर ताकता रहा। फिर बोला—"इसका मतलब इस बीमारी के बाद प्रभात भूल गया। क्यों उसने आत्महत्या करने की कोशिश की थी ? मुरला पराई हो चुकी, यह सब उसके दिमाग से उतर गया। जैसे और वह समझने लगा कि मुरला उसके साथ है। कुछ भी हो, डाक्टर इसे थोड़ा पागलपन ही कहते हैं।

"पर मुरला उसकी जान को तो आराम है न। जिसे वह चाहता है वह उसके साथ है?"

"मेरे दुःख को तुम नहीं समझो मनहर! अगर प्रभात होश में होते तो मैं उसे समझा-बुझाकर ठीक कर लेती। उनका ब्याह करा देती। अपने वंश के वही तो एक दीपक हैं।"

मनहर मुरला के पीले सुन्दर चेहरे की तरफ ताकता बैठा रहा। मुरला ने हाथ बढ़ाकर उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"मेरे अच्छे मनहर! क्या कुँवर अब सदा ऐसे ही रहेंगे।"

मनहर ने उसके रूखे बालों पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा—"लिखा तो है बीनू ने कि जल्द ही कुंवर का डाक्टरी कोर्स खत्म हो जायेगा। मुश्किल से छः महीने रह गये हैं। तब शिवाला और डाक्टर जान्सन उन्हें भारत भेजने की कोशिश करेंगे। यहाँ आने पर तुम्हें देखकर उनके हवास ठीक नहीं होंगे क्या? इस पर क्या तुम्हें विश्वास होता है मुरला?"

मुरला हँसी। बोली—"ऐसा ही मैं भी सोचती हूँ मनहर! पर... ....तुम्हारे कहने से......मुझे और भी तसल्ली हो गई। वह यहाँ आयेंगे तो जरूर ठीक हो जायेंगे।"

"और क्या......उन्हें है ही क्या? अच्छी तरह पढ़ रहे हैं। एकाएक चोट लगने से कभी-कभी मनुष्य में ऐसी कसर हो जाती है, सो अपने प्रिय को सामने पाते ही दूर हो जाना कौन मुश्किल बात है। ओह गौरी माँ! तुम मेरे लिए चाय ले आयीं।"

गौरी बोली—"पियो भैया! देखो तो बिटिया का चेहरा कितना खिल गया है आज! ऐसा होता है पीहर के लोगों का प्रेम......वहाँ का पक्षी भी देखकर लड़की निहाल हो जाती है। कुंवर विदेश जा बैठे। महाश्वेता वैधवासी है। कहीं आने-जाने का उसके लिए नियम नहीं है। पर तुम भैया! अगर कभी-कभी बिटिया को देख जाया करो तो चार

दिन में मेरी बच्ची पलना छोड़कर उठ बैठे......

कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा गईं। मनहर बोला—"अगर ऐसी बात है तो मैं हर आठवें दिन यहाँ आया करूँगा। गौरी माँ! तुम चिन्ता मत करो। मुरला की सेहत के बारे में सोचना तो मेरा सबसे पहिला कर्त्तव्य है, नहीं क्या मुरला?"

मुरला बोली—"पन्द्रह मील की दौड़ है, ठट्ठा नहीं मनहर!"

"पचास मील भी हो तो क्या? मोटर साइकिल पर देर क्या लगती है। जमींदार साहेब कहाँ हैं?

मुरला हँसी। बोली—"जब तक मेरी हालत खराब थी, दिन-रात इसी कमरे में बने रहते थे। अब जरा बाहर आने-जाने लगे हैं।"

गौरी माँ बोली—"बिटिया की बीमारी में ही पता चला, कितना प्यार करते हैं इन्हें मालिक। सारी-सारी रात टहलते रह जाते, न खाते न पीते।"

मुरला ने इसे स्वीकार किया। थोड़ी देर बाद मनहर मुरला से बिदा लेकर बृजपुर लौट आया।

संध्या के अंधेरे में गुलाब की क्यारियों के पास घुटने टेके महाश्वेता बैठी है। फूलों की डलिया उसके पास पड़ी है। फूल तोड़ते-तोड़ते वह जैसे अपने विचारों में खो गई हो। कहाँ बैठी है, क्या करने आई थी, अभी उसे खोजते हुए चारणी मां भी यहां आ सकती है, सब जैसे उसके ध्यान से उतर चुका था। वह गुम-सुम बैठी थी।

महात्मा कई मिनिट तक चुपचाप उसकी तरफ़ देखते रहे। फिर पुकारा—"महाश्वेता!"

वह चौंक पड़ी और डलिया लेकर उठ खड़ी हुई। बोली—"आज्ञा बाबा।"

महात्मा उसके पास चले आये। उसके उतरे हुए चेहरे पर अपनी दृष्टि जमाकर बोले—"तुम्हारी तबीयत क्या कुछ खराब है बेटी?"

"नहीं तो बाबा।"

"तब तुम इतनी दुखित और परेशान क्यों नजर आती हो ?"

महाश्वेता निरुत्तर हो गई।

वह बोले—"तुम इस मन्दिर की एक ख्याति प्राप्त देवदासी हो। तुम पर एक हिन्दू गर्व कर सकता है। ऐसा पवित्र और उज्ज्वल चरित्र है तुम्हारा बेटी। मेरा स्वप्न सच्चा हुआ है। हमारे शास्त्रों में वर्णित देवदासी सी ही तुम हुई हो महाश्वेता ! मुझे तुम पर गर्व है। पर देखता हूं......।"

कहते-कहते वह चुप हो गये। महाश्वेता ने अपने बड़े-बड़े नेत्र उनके मुंह पर स्थापित करते हुए स्थिर कण्ठ से पूछा—"मेरे किसी आचरण पर आपको शिकायत है बाबा।"

"हां बेटी ! तुम्हारे चिन्तन में कृष्ण के सिवा कुछ और नहीं होना चाहिए।"

"मेरे चिन्तन में अब कृष्ण नहीं है, ऐसा सन्देह आपको क्यों हुआ बाबा।"

"सन्देह......नहीं बेटी सन्देह तो नहीं है। मगर क्या तुम आज दृढ़ता से मुझे यह कह दोगी—बाबा ! मेरे चिन्तन में अब भी कृष्ण है और सदा यहीं रहेंगे। तो मैं तुम से बिना एक शब्द बोले यहाँ से चला जाऊँगा।"

"मेरी बात पर आपको विश्वास हो जायगा बाबा!"

"क्यों नहीं होगा बेटी ! झूठ तुम नहीं बोल सकतीं। ऐसी शिक्षा तुम्हें दी ही नहीं गई।"

"आप ठीक कहते हैं बाबा ! मैं झूठ नहीं बोलूँगी आपसे। इस वक्त मैं कृष्ण के लिए कुछ भी नहीं सोच रही थी।"

"तब बेटी।"

"मैं......मैं......धीरे-धीरे इस बात पर से मेरा विश्वास उठता

जा रहा हूँ बाबा ! कि देवदासी बनकर भगवान के चरणों में उत्सर्ग होने से देवता प्रसन्न होते हैं या इससे विश्व का कुछ भला हो सकता है। अन्न-वस्त्र के लिये व्याकुल प्राणी आश्रय के लिये ठोकरें खाते फिर रहे हैं। और हमारे भगवान......हमारे जन्मदाता राज-भोग खाकर हीरे जड़े गहने और जर्क वर्क पोशाक से सजी देवदासी का नृत्य देखकर प्रसन्न होते होंगे। देश गरीबी की मार से हाहाकार करता फिर रहा है और उसके भगवान, कर्णधार, सोने के रत्न-जड़ित सिंहासन पर विराजमान होकर नृत्य और भजन-कीर्तन का आनन्द लूट रहे हों। असम्भव है बाबा ! असम्भव है। क्या कभी यह हो सकता है कि बेटा सामने भूख से तड़प-तड़प कर जान दे रहा हो और पिता जर्क वर्क कपड़ों से सुसज्जित मोतियों की झालर वाले क्षेत्र के नीचे बैठा संगीत और नृत्य से तृप्ति ले रहा हो। यह सब झूठ है......सब झूठ......मेरे कृष्ण, मेरे...देवता कभी ऐसे निर्दयी नहीं हो सकते, बाबा कभी नहीं।"

महात्मा को उत्तर खोजे नहीं मिला। ज्ञान और भक्ति पर घण्टों उपदेश देने वाला महात्मा आज इस नन्हीं बालिका के सामने निरुत्तर हो गया।

महाश्वेता ही फिर बोली—"मैं देवता की हूँ। मैंने अपना सब कुछ इनके चरणों में उत्सर्ग कर दिया है। जीवन-मरण में यही मेरे स्वामी हैं, यही संगी, यही साथी और सदा-सदा रहेंगे। मनुष्य से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, न कभी होगा, बस ! यहीं तक मैं देवदासी हूँ बाबा ! पर मैं यह मानने को कभी तैयार नहीं कि मेरा काम केवल बनाव शृंगार कर देवता के सामने नृत्य करना भर है। बहुत सोचने पर भी मैं अपने मन को इस बात के लिये राजी नहीं कर सकी। मेरा मन कहता है भगवान के ऊपर उत्सर्ग होने का अर्थ है उसके प्राणियों पर उत्सर्ग हो जाना, देश पर मर मिटना।

महात्मा स्थिर कण्ठ से बोले—"निश्चय इसका यही अर्थ है बेटी !"

"तब मैं दीन-दुःखी प्राणियों की सेवा करूँगी बाबा !"

"तथास्तु ।"

कहते हुए बाबा ने उसके माथे पर हाथ रख दिया। फिर जैसे एका-एक कुछ याद आ गया हो। इस तरह उन्होंने कहा—"कल रात रसई के हाथ तुमने मनहर को बुलवाया था क्या ?"

महाश्वेता मन ही मन हँसी। बोली—"हाँ बाबा ! मैंने उन्हें बुलवाया था।"

"क्यों बेटी ?"

"वह मेरे बाल सखा हैं। भाई के समान हैं। उन्हें इस तरह बुलवाना क्या अनुचित है बाबा ?"

"हाँ बेटी ! इस तरह किसी को भी बुलाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है, यह बात नियम-विरुद्ध है, क्योंकि तुम देवदासी हो। तिस पर अपना मनहर अब पहिले-सा मनहर कहाँ है, उसका चरित्र भ्रष्ट हो चुका है, कोई भी भले घर की लड़की उससे बात करने में भय रखती है, पसन्द नहीं करती है। तुमने क्या नहीं सुना, वह शराब पीता है, जुआ खेलता है, और भी जाने क्या-क्या करता है ?"

"मैंने सुना है न बाबा ? और कल रात इसीलिये तो बुलवाया था।"

"क्या उपदेश देने के लिये बेटी ?"

महाश्वेता ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं··· मैं उन्हें उप-देश देने योग्य नहीं हूँ बाबा ? मैंने तो केवल उनसे यह जानना चाहा था क्यों उन-सा सदाचारी युवक ठीक रास्ते पर चलते-चलते यकायक ऐसे ग़लत रास्ते पर मुड़ गया।"

महात्मा हँसे, बोले—"मनहर कभी ठीक रास्ते पर चला हो ऐसा मुझे तो याद नहीं पड़ता महाश्वेता। बचपन में भी इसके उधम से सारा गाँव त्रस्त रहता था।"

"बालकपन की बात जाने दो बाबा ! होश सम्भालने के बाद से

मनहर ने ऐसा कोई काम इस गाँव में नहीं किया है, जिसके कारण उनकी निन्दा करने का किसी को साहस हो।"

"अब भी तो वह शराब इस गाँव में नहीं पीता। जुआ भी कभी उसने इस गाँव में नहीं खेला। इससे क्या तुम उसे शराबी और जुआरी नहीं समझतीं बेटी।"

"बाबा! मनहर भैया के धन से आज इस गाँव के कितने ही आदमी कैसी-कैसी मुसीबतों से छुटकारा पा चुके हैं, लड़की का ब्याह कर चुके हैं, रोजगार में लग चुके हैं।"

"यह सच है—पर मनहर शराबी है। जुआरी है। इसी से उसकी हर नेकियों को कोई महत्व नहीं देता।"

"यह सरासर अन्याय है बाबा! उनकी नेकियों को गाँव वाले महत्व नहीं देंगे और बुराइयों को चार आँख से देखेंगे। यह बात तो बहुत गिरी हुई है, वह जुआरी क्यों हैं, यह भी तो सोचने की बात है बाबा? उनकी जैसी परिस्थितियों में पड़ने से मनुष्य जुआरी तो क्या, डाकू तक हो जाने को विवश हो जाता है। देखने की वस्तु है, उनका महान् हृदय जो अपने को मिटाकर दूसरे को बनाने के लिए बदनाम हो रहा है।"

"हत्या की है, तो जज फांसी ही देगा बेटी? किसी अच्छे उद्देश्य से तुमने किसी के प्राण लिये हैं इसे देखने का कानून में नियम नहीं है।"

"दुनिया को केवल नियम की दोहाई देनी आती है, मैं ऐसे नियमों को नहीं मानती। मैंने मनहर की बातें सुनी हैं। मुझे स्वीकार करना पड़ा है बाबा! वह हम सब से बहुत ऊँचे हैं, बहुत महान्! आप दिन-रात भगवान की सेवा करते हैं। दुनिया के लोगों को उपदेश करते हैं, पर एक बार अपने मन से पूछ कर मुझे बताइये, क्या वह कह सकता है कि जो कुछ पूजा, अर्चना-उपदेश वह कर रहा है उससे देश का कुछ भला

हो रहा है या उसके जीवन का ध्येय केवल मन्दिर के धन और उसके नियमों की रक्षा करना भर है।"

"महाश्वेता ? थोड़ी सी अँग्रेजी पुस्तकें जो तूने पढ़ी हैं, उसी से तेरा दिमाग खराब हो गया है।"

"नहीं बाबा ? केवल जमाना बदल गया है। जब मन्दिरों में या समाज में यह नियम बनाये गये थे, तब हमारा यह देश सुख और शान्ति के हिंडोले में झूल रहा था, भूख-वस्त्र और ठिकाने के लिये उसे मारे-मारे नहीं फिरना पड़ता था। उन दिनों परिवार के पालन के बाद जो कुछ बचता था, भगवान के उद्देश से मन्दिरों में चढ़ा दिया जाता था। ये नियम शास्त्रों ने इसलिये बनाये थे कि आदमी स्वार्थी न हो जाये और···

महात्मा सोचने लगे, ये सब बातें महाश्वेता ने कहां से सीखीं। शायद प्रभात और मनहर से ही सब सुनी हैं। महाश्वेता कहती जा रही थी।

"और आज, जबकि हमारे भाई अन्न-वस्त्र विहीन भूखे-प्यासे और नंगे घूम रहे हैं, तब भगवान को कहां से चढ़ायें और क्या चढ़ायें ? लुटा दो बाबा ? मन्दिर का यह रत्नभण्डार, भगवान के यह जेवर-सिंहासन सब लुटा दो। भगवान के भूखे प्राणियों का पेट भरने दो। हमारे देवता इससे निहाल हो जायेंगे। हमारी यही पूजा सार्थक होगी बाबा ? विश्वास न हो तो एक बार करके देखो। तब वह मेरी सादी सफ़ेद पोशाक के नृत्य से भी आनन्द विभोर हो उठेंगे।"

"राधेश्याम रक्षा करो" कहते हुए महात्मा उस लड़की के आगे से जल्दी-जल्दी चले गये। महाश्वेता फूल तोड़ने लगी।

उस दिन से महात्मा बहुत सुस्त दिखाई पड़ते हैं। सुबह चार बजे जब वह पूजा पर बैठते, तो लगता देवी राधा हाथ उठाकर कह रही हैं—

"लुटा दो मेरा यह रत्नभण्डार महात्मा ? लुटा दो मेरे सब जेवर, यह सिंहासन, मेरे भूखे बच्चों का पेट भर दो। सब लुटा दो, इन्हीं सब का यह है, इन्हें ही दे दो। कहाँ है महाश्वेता ? उससे कहो, नाचे-गाये, सादे सफेद कपड़ों में, मैं उससे बहुत प्रसन्न हूँ, बहुत।"

महात्मा अचकचा कर कह उठते—"यह क्या ?"

तम्बूरे के तार कसता भिखारी कहता—"क्या हुआ बाबा ?" चारणी मां पूछ लेती—"क्या हुआ महात्मा ?"

वह कहते—"अभी तो कुछ नहीं हुआ ? पर शायद जल्द ही होने वाला है। राज-रानी राधा मां के रूप में परिणित होना चाहती हैं। विश्व माँ के रूप में।" वे दोनों कहते—

"आहा···राजरानी राधा का वही रूप तो असली रूप है बाबा ? विश्व मां—"

और चारणी गाने लगी—

जय अम्बे गौरी मैया,
जय मंगल मूर्ति मैया।

आज पूर्णमासी है। मन्दिर में उत्सव है, व्रती-प्यासी महाश्वेता ने कई घण्टे नृत्य किया है। थक कर वह चूर हो गई है। अपनी कोठरी में आकर उसने नृत्य की पोशाक और जेवर उतार कर सादी-सफेद साड़ी, सफेद जाकेट पहन ली। और थकी सी तख्त पर पड़ गई। इसी समय उसे मनहर का मधुर कण्ठ स्वर सुनाई पड़ा। वह गा रहा था।

जाकर कहीं खो जाऊँ मैं,
नींद आये और सो जाऊँ मैं।
दुनिया मुझे ढूँढ़े मगर मेरा,
निशां कोई न हो।

वह लेटी न रह सकी, तेज़ कदमों से बाहर की तरफ़ चल दी, चारणी मां ने टोका—"इस असमय में कहां जा रही हो बेटी ?"

"कहीं नहीं मां ? जरा घाटी के नीचे बाग़ में टहलूँगी। अभी आती हूँ।"

"अच्छा जा, पर लौटना जल्द।"

महाश्वेता बाग़ में कुछ देर खड़ी सोचती रही, फिर तीर की तरह तेज क़दमों से वह मनहर के पास जा पहुँची। वह बोला—"यह क्या महाश्वेता ?"

महाश्वेता हँसी। बोली-"बचपन की आदतें जाती नहीं भैया ? तुम्हारा कण्ठ स्वर मुझे यहां खींच लाया।"

"आओ अब लौट चलें, रात बहुत हो गई।"

"परन्तु मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ।"

"कहो !"

"मैं···मैं चाहती हूँ···मैं भी तुम्हारे साथ अपने देश की या भाई-बहिनों की कुछ सेवा करूँ।"

"इसके लिये तुम्हें रोक कौन सकता है बहिन !"

"मन्दिर के नियम-"

"मन्दिर के नियम—" कहते-कहते मनहर चुप हो गया, उसकी इच्छा नहीं हुई कि महात्मा के विरुद्ध कोई शब्द निकाले, क्योंकि वह महात्मा पर बहुत श्रद्धा करता था।

महाश्वेता ही बोली—"मेरे पास ज्यादा समय नहीं है। उस दिन तुमने जो बातें मुझे बताई थीं, उन पर मैं दिन-रात सोचती रही हूँ। मैंने निश्चय कर लिया है तुम्हारे इस पुण्य कार्य में मैं भी कुछ हाथ बटाऊँगी। इसी से मेरी पूजा सफल होगी, मेरा देवता पर उत्सर्ग होना सार्थक होगा, मुझे अपने इस यज्ञ में शामिल होने दो भैया ?"

"भावुकता में पड़कर अपने को व्यर्थ की विपत्ति में मत डालो बहिन ! तुम स्वाधीन नहीं हो। केवल मुझे आशीर्वाद देती रहो, ताकि मैं जो पैर आगे बढ़ा चुका हूँ। वह···"

महाश्वेता ने उसे रोकते हुए कहा—"कोरे आशीर्वाद से तो न तुम्हें ही कुछ सहायता मिलेगी न ग़रीबों का ही कुछ भला होगा! मैंने तो निश्चय कर लिया है।"

"क्या निश्चय कर लिया है महाश्वेता?"

"मैं अब तुम्हें जुआ नहीं खेलने दूँगी।"

"जुआ नहीं खेलूँगा—तो रुपया कैसे जमा करूँगा बहिन? होटल खरीदने के लिये कम से कम बाइस हजार की ज़रूरत है और अभी मेरे पास कुल चौदह हज़ार रुपया जमा हुआ है। बाकी आठ हज़ार रुपया कहाँ से लाऊँगा।"

"वह आठ हज़ार रुपया मैं तुम्हें दूँगी भैया?"

"तुम कहाँ से दोगी महाश्वेता?"

"मैं तुम्हें अपने हीरे का सेट दूँगी—जिसकी कीमत पन्द्रह हज़ार है। तुम उसे बन्धक रख कर आसानी से दस हज़ार रुपया पा जाओगे, इससे होटल जल्द खरीदा जा सकेगा। और वह नेक काम हम जल्दी शुरू कर सकेंगे।"

मनहर जैसे आसमान पर से गिर पड़ा हो। घबराकर बोला—"यह तुम क्या कह रही हो महाश्वेता?"

"समझी, तुम शायद इसलिये घबरा गये भैया कि यह जेवर तो मेरे नहीं हैं, मन्दिर के हैं। इसीलिये तो मैंने भी उन जेवरों को बेचने की बात मुँह से नहीं निकाली। होटल चल जायेगा, तो हम यह जेवर छुटाकर मन्दिर में वापिस रख देंगे।"

"परन्तु जेवरों के छुड़ाने के पहिले ही अगर बात खुल गई तो।"

"वह सब मैं देख लूँगी—तुम उसके लिये चिन्ता मत करो। अब मैं जाती हूँ। बसन्त पंचमी के उत्सव वाले दिन मैं यह हीरे का सेट पहिनूँगी भैया? आरती का नृत्य समाप्त करके, मैं रात को ठीक इसी समय यहां ही आकर तुम्हें वह जेवर दे जाऊँगी। तुम यहीं रहना।"

कहती हुई तीर की तरह वह वहां से गायब हो गई। मनहर ने आप ही आप कहा—"कौन कहता है हमारे भारत में पहिली सी लड़कियां नहीं हैं। मुरला, महाश्वेता, रेवा भारत की ही तो बेटियाँ हैं।"

मुरला अब अच्छी है। उसकी बच्ची घुटनों चलने लगी है। पति के प्रति मुरला पहिले से कहीं ज्यादा नम्र हो गई है। अब वह उसकी लापरवाही से नाराज़ तो बहुत होती है, पर अभिमान कर ख़ामोश नहीं होती, झगड़ा करती है।

बासीपुर से अब ये लोग सुचेतगढ़ आ गये हैं। काफ़ी बड़ा शहर है। जमींदार का यह बंगला भी राजमहल से कुछ कम ठाठदार नहीं है सामने बाग़ में आराम कुर्सी पर बैठे मुरला के पति अखबार पढ़ रहे हैं। बार-बार उनका ध्यान आते-जाते नौकरों की तरफ जाता है और एक पान अन्दर से ले आने के लिये वह सब से कह देते हैं।

आख़िर जब बच्चा सिंह उन्हें नाश्ते के लिये बुलाने आया तो वह बिगड़ उठे। बोले—क्यों रे बन्दर! एक पान के लिये आख़िर तुम सबसे मुझे कितनी बार कहना चाहिये।"

वह दबी ज़ुबान से बोला—"मालकिन पान-दान को हाथ तो लगाने ही नहीं देती मालिक? कहलाया है, पहिले नाश्ता करें आकर तब पान लगा देंगी।"

"तुम्हारी मालकिन का हुक्म तो एकदम नादिरशाही है। जा कह दे जाकर मुझे कुछ भी खाना-पीना नहीं है, पान भिजवाना है तो भिजवा दें नहीं तो जाने दें।"

बच्चा सिंह से यह सुनकर मुरला क्षण भर तक उसका मुँह ताकती रही, फिर बोली—"अच्छा जा! लगा ले जा पान और गौरी मां से कह दे जाकर, मेज पर से नाश्ता उठा लें।"

"परन्तु आप तो खाइये कुछ, रात भी कुछ नहीं खाया था।

मुरला मुस्कराई बोली—"खाना-पीना तो भाग्य से ही नसीब होता

है रे ! मेरे भाग्य में भी जब होता है मिल ही जाता है, जा तू पान लगा ले जा, नहीं तो बहुत बिगड़ जायेंगे।"

और वह अपने कमरे में जाकर पलंग पर पड़ गई। गौरी ने सुना, तो जमींदार साहब पर बहुत बिगड़ी। इसी समय धक्कमधक्का करते हुए ताराचन्द और बिज्जी मुरला के पास आ पहुँचे। बोले—"अरे जीजी ? इस असमय में पलंग पर क्यों ? अच्छी भली हो गई हो, फिर काहे को पलंग पर जब तब चढ़ जाती हो।"

मुरला हँस पड़ी, बोली—"दोनों इसी शहर में आ गये हो, पर मुझ से हफ़्ते में एक बार भी मिलते नहीं बनता। इसीलिये तुम दोनों से रूठी पड़ी हूँ, समझे।"

बिज्जी बोला—"मैं तो रेडियो स्टेशन की नौकरी करके पछता रहा हूँ जीजी ? कमबख्तों ने सारी जुम्मेवारी मेरे ऊपर ही छोड़ दी है। लानत है ऐसी जुम्मेवारी पर, पर यह तारी ? क्यों भई लम्बोदर त्रिपाठी! अमां तुम क्या करते रहते हो, कहो तो ?"

तारी बोला—"चुप बे पांच फुटे ! जीजी मैं अपना कसूर माने लेता हूँ। आगे से तुम्हें कोई शिकायत ऐसी नहीं मिलेगी।"

बिज्जी बोला—"अम्मां जलालत है, पेशावरी बच्चे ? कुछ अक्ल से बात करना सीखो ! अबे तबे क्या ? मुझे पांच फुटा कैसे कहते हो। क्या नाप कर देखा है ?

"अमां आँखें रखता हूँ, कुछ टमाटर नहीं, दूसरे पुलिस आफ़िसर हो गया हूँ। हर तरफ आँख न रखूँ, तो बादशाहत उलट जाये—है न जीजी ?"

मुरला फिर हँस पड़ी, तारी मुरला के पैरों को दबाता हुआ बोला—"बसन्तोत्सव वाले दिन हमारे साथ बृजपुर चलना होगा। हम दोनों यही कहने आये थे जीजी ? कार तुम्हारी होगी।"

"तो जीजी से ज्यादा उसकी कार की जरूरत है, क्यों तारी ? तब तुम दोनों कार ही ले जाना भैया, मुझे ढोकर क्या करोगे।"

ताराचन्द ने पैरों को जोर से दबाया, मुरला बोली–"अरे छोड़···बाबा ! छोड़ राजी हूँ मैं, मेरे पैर मत तोड़।"

बिज्जी बोला–"अमां लानत है सन्तरी बादशाह ! जीजी के पैर हाड़-मांस के बने हैं, तुम्हारी हाकी स्टिक नहीं है, छोड़ो इन्हें।"

तारी ने पैर छोड़ दिये। मुरला बोली—"अच्छा बताओ, तारी, बृजपुर से और कौन-कौन आया है तुम्हारे घर में।"

"मां तो हैं ही जीजी ? केशव दादा आये हैं, शीला जीजी, रेशी जीजी और मेजर साहब हैं, खूब रहेगी बस, चलो हो चलो, जीजा जी को भी ले चलेंगे।"

मुरला बोली—"जिद्द करने से चले तो चलेंगे, पर टिकेंगे नहीं वहाँ, दो घण्टे बाद भाग खड़े होंगे और पिट्टी को।"

"उसे तो ले ही चलेंगे, दो दिन पहिले चलना होगा। क्योंकि बिज्जी साहब को पारू के लिए वर घर खोजने भी जाना है।"

"यह क्या ? बिज्जी उसका वर घर खोज कर अपने पैर पर ही कुल्हाड़ी मारेगा क्या ?"

तारी हँसता हुआ बोला—"आजकल मजनू इसी फैशन के होते हैं। दुख तो इस बात का है तुम्हारी आँखों के सामने ऐसा हीरो है, तो भी तुम अपनी कविता में प्रेमी की हालत मजनू फ़रयाद से बत्तर दिखा देती हो जीजी ?

बिज्जी बोला—"अमाँ लानत है तारी ? किसी वक्त तो होश से बातें किया करो।"

इसी समय जमींदार साहब अन्दर आगये। तीनों उन्हें देख खड़े हो गये। वह बोले—"कमाल है मुरला ? एक पान के टुकड़े के लिये तुम्हारे नौकर मुझे कितना तरसाते हैं, सो कुछ जानती हो। अरी ओ मालती ?"

"आई मालिक!" कहती हुई वह लड़की मालिक के सामने आ खड़ी

हुई। वह बिगड़ कर बोले—"आई मालिक की बच्ची ! जल्दी पान ला, हरामखोर कहीं की।"

मालती बोलती बहुत थी। बोली—"मालकिन ने मना किया था, मैं तो लगा रही थी।"

मुरला बोली—"बच्चा सिंह पान ले तो गया था।"

"अरे···देखते हो तारी ? किस वक्त की यह बात है। जाने किस कमबख्त ने मुरला को सुझा दिया है कि तमाकू नुक़सान करता है, बस इसीलिये यह रोक-थाम है! और इसे देखो बिज्जी, इस मुन्नी मालती को, खाने-पीने की चीजों पर मुरला की आँख बचा ऐसा हाथ सफ़ा करती है कि बड़े-बड़े चोर इसका लोहा मानते हैं और वैसे पान लाने के लिये कहो तो कद्दू सा सिर हिला देगी, मालकिन सामने बैठी हैं, कैसे लाऊँ। दांत निकाल रही है, दूर हो सामने से।"

मालती पान की खाली तश्तरी लेकर एक ओर हो गई, थोड़ी देर बैठकर जब जमींदार भोजन करने के लिये जाने लगे। तो मालती ने स्लीपर आगे रखते हुए कहा—"मालिक, स्लीपर तो यहाँ ही छोड़े जा रहे हैं।"

"पागल ! हटा इन्हें ! तारी ! तुम्हें मालूम है कि नहीं, बड़े-बड़े डाक्टरों ने कहा है, नंगे पैर फिरने से आँखों की रोशनी बढ़ती है।"

तीनों भोजनालय में पहुँचे, तो मुरला ने चकित हो कर कहा—"अरे आप नंगे पाँव चले आ रहे हैं, स्लीपर कहाँ हैं।" जमींदार साहेब घबराकर बोले—"पूछो बिज्जी से, तुम्हारे कमरे में जब आया हूँ। तो पैर में स्लीपर थे। अब कुर्सी से उठता हूँ, तो तुम्हारी इस सेक्टरी ने कुर्सी के आगे से स्लीपर ही ग़ायब कर दिये हैं। चिल्ला रहा हूँ, पर कम्बख्त के कान पर जूं तक नहीं रेंगी, आखिर तुम्हीं कहो। अब इन स्लीपरों के लिये कब तक इन्सान एक जगह बँध कर बैठा रहे।"

मुरला ने आँखे तरेर कर मालती की तरफ़ देखा। वह बोली—"मैं-मैं···तो···"

जमींदार गरजकर बोले—"दूर हो इस कमरे से, मैं-मैं बकरी की तरह कर रही है।"

बिज्जी और तारी मुस्करा उठे, मालती भी हँसती हुई भाग गई। चारों भोजन करने बैठे।

इधर रामधन की बहू अंगोछे में आटा बाँधे रामा के आँगन में घुसा और बोली—"जीजी! खाना-पीना हो चुका, कर लूँ चौका-बासन?"

रेवा ने मुँह उठाकर कहा—"हाँ, कर ले, सब खा-पी चुके।"

रामधन की बहू बासन माँजने लगी, रेवा ने पुस्तक घुटनों पर रखते हुए कहा—"क्यों री रामधन की बहू! तूने मौसी से क्यों कह दिया कि घर में अनाज नहीं है।"

वह धीरे से बोली—"तो क्या करती जीजी? मालकिन पूछ रहीं थी। उनसे झूठ कैसे बोलती? फिर आज तुमने क्या खाया जीजी!"

"क्यों, चावल पड़े तो थे, कढ़ी चावल बनाये थे।"

"मैं—तो कल वह चावल देख गई थी, मुश्किल से ढाई तीन मुट्ठी होंगे। उससे क्या तीन जनों का पेट भरता।"

"तीन का नहीं, पर दो का तो भर ही गया री!"

"और तुमने शायद लन्धन किया?"

"लंघन क्यों करती रामधन की बहू, ढेरों सब्जी बो रखी है। काहे के लिये भला।"

मँजे हुए बरतन सामने की आलमारी में लगाती हुई वह बोली—"सब्जी से कहीं पेट भरता है जीजी?"

"भरता कैसे नहीं पगली? गान्धी महात्मा तो सब्जी ही खाया करते थे। इससे तो सेहत बनती है।"

"बहुत अच्छी सेहत बनती है। भरी जवानी में देह पर माँस का

कहीं नामोनिशान नहीं है। हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखाई पड़ रही हैं, तुम्हारी इन्हीं बातों से मेरा बड़ा जी जलता है। हार को तुम हार नहीं मानतीं।"

"पगली ! हारकर भी हार न मानना ही तो बहादुरी है।"

"तुम्हारी टेढ़ी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। पढ़ी गुणी तो हू नहीं, मैं सीधी बात जानती हूँ। भैया तो दूसरों का पेट भरने के लिये सैंकड़ों रुपया बांटते फिरते हैं, और वापिसी में मिलती है उन्हें बदनामी ? अपने घर की उन्हें परवाह नहीं। कहाँ किस चीज की जरूरत है, कभी पूछने की फुरसत ही नहीं पाते। ऐसे कैसे लच्छन हैं उनके।"

रेवा दाँतों से जीभ दबाती हुई बोली—"छी···छी, कैसे पागलपन की बातें करती है तू ? लोगों का पेट भरना तो हर एक से नहीं होता रामधन की बहू ? यह तो हजारों में से एक ही माई का लाल करने वाला निकलता है। तेरे भैया वहीं हजारों में से एक हैं। अपने घर की देखभाल तो सभी कर लेते हैं। यह तो कोई प्रशंसा की बात नहीं।"

"क्या मालूम जीजी ? लोग तो कहते फिरते हैं। जगह जमीन सब भैया चौपट कर देंगे। लोगों को खिला देंगे।"

क्षण भर तक रेवा उसका मुँह ताकती रही, फिर बोली—"छोड़ ऐसी बातें, बता पंचकौड़ी शाह से क्या कह आई तू ?"

बरतनों को रख वह चौका धोती हुई बोली—"अरे कहूँगी क्या जीजी ? मुँहझौंसे का अच्छी तरह मुँह झुलस आई थी। मुझसे धांधली करने लगा था। कहने लगा, तुम्हारी मालकिन ने इस महीने सूद के रुपये नहीं पहुँचाये, सूद ले आओ तो अनाज उठाने दूँगा।"

"तब।"

हाथ नचाकर वह बोली—"तब क्या ? मैंने उस नासपीटे से कहा—"शाह जी ! मैं मालकिन नहीं हूँ, जो तुम्हारी धौंस में आ जाऊँ, और इज्जत के डर से दब जाऊँ। किसी धोखे में मत रहना। अनाज तो मैं

सुबह ही उठा ले जाऊँगी। चीं चपड़ की तो जमींदार की कचहरी न जा खड़ी देखूं तो असल कहार की नहीं, किसी चमार की बेटी कह देना, इस गाँव में रहना मुश्किल कर दूँगी। तब बोला—अरे जा भाई जा, ले जा अनाज, मैंने मना कब किया।"

"शाबाश! तू बड़ी दबंग है, तो कल अनाज ले आवेगी न?"

"और नहीं तो क्या? फगुआ से कह आई हूँ, सुबह चार बजे गाड़ी लेकर जायगा वह, साथ में मैं रहूँगी।"

पोटली को छूती हुई रेवा बोली—"इसमें क्या है री?"

"थोड़ा अनाज है। आखिर रात को क्या बनाती तुम जीजी?"

"सो देखा जाता, तू काहे को ले आई भला।"

"तुम्हारी सेहत तो सब्जी खाने से दिन दूनी-रात चौगनी हो रही है, अब क्या मौसी और भैया की सेहत बनाने की भी सोच रखी है जीजी? रात चौके में जब भैया जीमने तुम्हारे सामने आ बैठते, तो क्या देतीं उन्हें तुम! कहो तो, सब्जी रखने के बाद, उनकी थाली में क्या सेंककर रखती?"

रेवा सोचने लगी, ठीक तो कहती है। मनहर को क्या देती वह?

काम समाप्त कर वह रेवा के पास आ बैठी। बोली—"जीजी! तुम्हें सब बहुत चाहने लगे हैं।"

"सब कौन।"

"यही, जैसे महाश्वेता जीजी, मुरला बिटिया, जमींदार साहेब के वहाँ वाली मालकिन, सब तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करते हैं। और मुरला जीजी तो जब वृजपुर आती हैं, तुम्हारी अनेक बातें मुझे बुलाकर पूछती रहती हैं।"

रेवा ने एक बार अपनी फटी सी उस मामूली साड़ी पर सरसरी निगाह डाली, फिर कहा।

"मुरला तो जब जब आती है। एक बार मौसी से मिलने जरूर

यहाँ आती है। मुझे तो उसे देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। सोलह साल की बच्ची, एक वर्ष की लड़की गोद में लिये फिरती है। पर तेरी महाश्वेता जीजी कभी इधर नहीं आई।"

"वह देवदासी जो है, गृहस्थों के घर आने जाने का उसका नियम नहीं है। महात्मा का कहना है देवदासी मनुष्य से बहुत ऊँची, भगवान की अपनी वस्तु है। उसका दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं।"

रेवा चकित होकर बोली—"आश्चर्य है, गवई-गाँव में आज भी सौ साल पुरानी बातें चली आ रही हैं। ऐसी सुन्दर, मासूम लड़की इसी उम्र में सन्यासिनी बना दी गई। महात्मा चाहते हैं, वह चूंकि देवदासी है, इसलिये इसी उम्र में साठ साल की बुढ़िया की तरह, दुनिया की तरफ से आँखें बन्द करके भगवान के चरणों में लीन हो जाय, क्या ऐसा होना सम्भव है?"

"सम्भव ही समझो जीजी! महाश्वेता जीजी सारा दिन अपने कमरे में बन्द रहकर धर्मग्रन्थ पढ़ती रहती हैं। सन्ध्या को जब मन्दिर के घण्टे सन्त लोग बजाते हैं, तब जीजी उठकर मुँह-हाथ धोती हैं। बनाव-शृंगार कर नृत्य की पोशाक पहनती हैं, फिर फूलों के हार लेकर भगवान के सामने जाती हैं। नृत्य करती हैं, आरती समाप्त होने पर बृजपुर के नर-नारियों को अपने हाथ से प्रसाद देती हैं। तुमने कभी उनका नृत्य देखा है जीजी?"

"नहीं कभी नहीं देखा, वसन्त पंचमी को मुरला के साथ जाकर देखूँगी। ऐसा कल मैंने तारो और बिज्जो को वचन दिया है।"

"जरूर जाना जीजी! नाचते-नाचते जीजी जैसे इस दुनिया से बाहर चली जाती है। लगता है मन्दिर में उनके लिए केवल भगवान और वह ही हैं। ऐसे एकटक ताकती हुई नृत्य करती हैं, तन्मय होकर, अपने को भुलाकर, कि सब धन्य-धन्य कह उठते हैं। और जीजी, ऐसी कड़ाके की सर्दी में भी पसीने से नहा उठती हैं। जब वह प्रसाद बाँटती हैं लोग

उनके चरणों पर हाथ रख धन्य होते हैं। वह "कल्याण हो ठाकुर" "कल्याण हो चौधरी", "कल्याण हो भैया" कहती हुई आगे बढ़ती जाती हैं। पर जीजी ! मैंने कई बार सुना है, मनहर भैया के चरण छूने पर वह यह बात नहीं कहतीं।"

"क्यों ? शायद वह उनके बालसखा हैं इसलिये ?

"कल्याण हो, नहीं कहती हैं। कहती हैं, यशस्वी हो भैया।"

रेवा मुस्कराईं, बोली—"उनको इसी आशीर्वाद की जरूरत है। रामधन की बहू, महाश्वेता सचमुच में बहुत समझदार लड़की है।"

रामा अपनी कोठरी से बाहर निकलकर एक मोढ़े पर बैठ गई और बोली—"क्या बातें हो रही हैं दोनों में ?"

रामधन की बहू बोली—"वह तो मन्दिर की बातें थीं मालकिन ? आज तुम्हारे लिये भी मेरे पास एक सन्देश है।"

"कह डाल वह भी।"

"सुरमा की मां कहती थी जीजी और कब तक मुझे लटका रखेंगे। मनहर को बी० ए० पास किए भी तीन वर्ष होने आये। सुरमा भी जवान हो गई, ब्याह हो जाता तो मैं निश्चिन्त हो जाती।"

रामा ठण्डी सांस लेती हुई बोली—"मेरे क्या बस में है मनहर, बहू ! तू तो सब जानती है, यह तो ब्याह की बात सुनता ही नहीं।"

"लड़की तो सारे गांव में एक ही है मालकिन ! मेरी मानो तो झटपट कर डालो।"

"कर डालूं, पर किससे ? वह तो कहता है अगर मेरी मर्जी के बिना ब्याह की बात चलाई तो घर छोड़कर भाग जाऊँगा। कहता है बी० ए० पास करने के बाद अब उस अनपढ़ गंवार लड़की को गले से बांध लूं और फिर सुरमा जैसी लड़की से ब्याह करना तो ऐसा ही है जैसे एक कठपुतली घर ले आना।"

"तब उन्हें क्या जवाब दूँ मालकिन ?"

"अरी बेटी ! सच्ची बात ही कहना। मनहर मानता नहीं, मालकिन क्या करें ? नहीं तो अब तक कब का ब्याह हो गया होता।"

थोड़ी देर बाद रामधन की बहू चली गई। रेवा अपने-आप ही कहने लगी—"जिसकी आँखों में मुरला का रूप रंग समाया हुआ है उसे और सब लड़कियां कठपुतली ही तो दिखाई पड़ेंगी। मौसी क्या जाने, उनकी आँखों में क्या बस चुका है। फिर मन को लगा भी तो उन्होंने अच्छी तरफ लिया है। करने दें अनाथों की सेवा, मौसी क्यों उनके पीछे पड़ी हैं।"

इसी समय मनहर ने आंगन में पैर रखा। रेवा ने झटपट सर पर आंचल ओढ़ लिया। मनहर रामा के पास खाट पर बैठता हुआ बोला—

"क्या पढ़ रही थीं रेवा ?"

"मैं तो......शरत् बाबू का श्रीकान्त पढ़ रही थी...।"

"बहुत अच्छा लिखते थे शरत् बाबू ?"

"मुझे तो विश्वास है शरत् जो लिख गये हैं, वैसा न पहिले किसी ने लिखा है, न अब आगे कोई लिख सकता है। उनकी कोई भी पुस्तक हाथ में लो, शुरू करते ही लगता है जैसे उन्हीं के पात्रों के साथ हम चल-फिर रहे हैं। जब तक कहानी खतम न करलो उनकी कोई चीज छोड़ने को मन नहीं करता। उनके लिखे एक-एक शब्द में मानो कुछ ऐसी नवीनता और "रस" भरा पड़ा है कि बार-बार पढ़ने से भी तृप्ति नहीं होती, बल्कि और प्यास बढ़ती है—इसी 'श्रीकान्त' को लीजिये। मैं कोई आठवीं दफा पढ़ रही हूँ। पर एक शब्द भी छोड़ने को मन नहीं करता। शरत् बाबू बस शरत् बाबू ही थे।"

"देखता हूँ, तुम शरत् बाबू की बहुत भक्त हो। कहती तो तुम बिलकुल ठीक हो रेवा ! शरत् की कोई भी पुस्तक लो, 'सविता', 'शुभदा' 'पथ के दावेदार' एक से एक बढ़कर हैं और मजा यह है—कि सब बिलकुल अलग अपने ढंग की हैं।"

"इनका लिखा 'विप्रदास' आपने पढ़ा है।"

"हाँ......बहुत सुन्दर पुस्तक है।"

रेवा उठती हुई बोली—"मौसी ! क्या-क्या बनाऊँ ?"

रामा बोली—"मनहर ! कह बेटा, क्या-क्या खायेगा ?"

"जो रेवा बना देगी, मैं खा लूँगा। इसके हाथ की बनाई सभी चीजें मुझे पसन्द हैं काकी।"

रामा हँसती हुई बोली—"इसका अर्थ है—रेवा मुझसे ज्यादा अच्छी रसोई बना लेती है, क्यों मनहर ?"

थोड़ा लज्जित होकर वह बोला—"ऐसा तो क्या होगा काकी ! पर बनाती तो अच्छी है रसोई।"

रेवा मुस्कराती हुई चौके में चली गई।

: ८ :

डाक्टर जान्सन ने प्रभात की पीठ पर शाबाशी देते हुए कहा—"गवर्नमेण्ट ने तुम्हें बम्बई के सरकारी हास्पिटल का इन्चार्ज बनाने के लिये कहा है। तुम कितने भाग्यवान हो मेरे प्रभात ! तुम पर एक मुझे ही नहीं सबको गर्व करना चाहिये। कमाल का दिमाग़ पाया है तुमने।"

प्रभात ने क्षण भर तक सोचा फिर बोला—"पर क्या मैं यहीं नहीं रह सकता डाक्टर ?"

डाक्टर जान्सन ने अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरा और कहा—"क्यों नहीं रह सकते, पर सोचो तो भारत में अच्छे-अच्छे डाक्टरों की कितनी कमी है। इसीलिए सदा यहां से अंगरेज डाक्टर भारत सरकार मंगाती है और तुम तो उसके अपने आदमी हो। तुम्हारा फर्ज है बेटा, जाकर अपने मुल्क में अपने भाई-बहिनों की सेवा करो और अपनी सरकार के इस हुक्म को सर आँखों पर उठाओ।"

"मुझे कब जाना होगा ?"

डाक्टर जान्सन ने शिवाला की तरफ देखा। फिर कहा—"यह तुम्हारी मर्जी पर है। आखिर तुम्हें मुरला से राय लेकर ही तो जाने का दिन निश्चित करना होगा ? तुम इन सरकारी कागजों पर हस्ताक्षर कर दो। फिर शिवाला से वह लिस्ट ले लो जिसमें जहाजों के जाने की तिथियाँ लिखी हुई हैं। मुरला......

प्रभात ने प्रसन्न होकर कहा—"तो मैं अभी जाता हूँ सर ! अभी उससे पूछ लेता हूँ।"

"पहिले इस पर दस्तख़त तो कर जाओ।"

प्रभात ने हस्ताक्षर कर दिये और अपने कमरे की तरफ चला गया। शिवाला ने रूमाल से मुँह पोंछते हुए कहा—"इतना काम तो आसानी से हो गया डाक्टर !"

"आगे भी सब ठीक हो जायेगा। तुमने इस बारे में बहुत पढ़ा है, होशियारी से प्रभात की देखभाल करती रहना। मुझे विश्वास है, वह एक दिन जरूर सम्भल जायेगा, और फिर कभी जरूरत हुई तो मुझे लिखना बेटी।"

शिवाला की आँखें डबडबा आयीं। बोली—"मुझे केवल आपका ही सहारा है डाक्टर ! भारत में मेरे अपना कहने को सिवा धन के और कोई नहीं है।"

डाक्टर जान्सन ने उसको हृदय से लगा लिया। फिर कहा—"तुम्हें अब किसी की जरूरत भी नहीं है बेटी ! तुम सयानी हो, मानी हुई डाक्टर हो, और फिर कभी ऐसा हो भी तो यह बूढ़ा तो है ही। जाओ ...जाकर देखो, वह मूर्ति मिस्टर स्मिथ ने तैयार की या अभी नहीं।"

"कल बारह बजे तक वह मूर्ति बिल्कुल तैयार हो जायेगी डाक्टर ! बिल्कुल "मैडम टू शो" के बुतों जैसा स्मिथ ने मुरला का बुत बनाया है। वैसे ही रोयें, रंग, बाल, आँखें, होंठ प्रभात देखकर···कहीं···

"नहीं···नहीं ऐसा कुछ नहीं होगा, मैंने खूब सोच-समझ कर ही यह कदम उठाया है, तुम कोई चिन्ता मत करो। मैंने जिस तरह तुम्हें बताया है। बस उसीतरह करती जाओ।"

शिवाला चली गई—जाने की सब तैयारी हो गई, तारीख़ और दिन भी निश्चित हो गया, डाक्टर जान्सन का मन उदास रहने लगा।

वह सचमुच शिवाला और प्रभात को अपने बच्चों की तरह चाहने लगे थे।

विक्टोरिया जहाज ने सन्ध्या के चार बजे स्टार्ट होना था। प्रभात और शिवाला का तमाम सामान, दीनू सी पोर्ट···पर पहुँचा चुका था। प्रभात डाक्टर जान्सन से विदा ले चुका था, बूढ़ा डाक्टर फूट-फूट कर रोने लगा था। शिवाला प्रभात तो फिर बच्चे थे, शिवाला पहिले ही जा चुकी थी। प्रभात अपने कमरे में मुरला को लेने आया, देखा दरवाजा अन्दर से बन्द है। घबरा कर बोला—"दरवाजा खोलो ? मुरला, नहीं···कौन है अन्दर ?"

शिवाला ने आकर दरवाजा खोल दिया, प्रभात ने सन्देह की दृष्टि से उसकी तरफ़ देखा। देखते हुए कहा—"तुम···तुम शिवाला ? यहाँ क्या कर रही थी। मुरला कहाँ है ?"

शिवाला ने रास्ता रोकते हुए कहा—"क्षण भर ठहरो ?"

प्रभात नाराज होकर बोला—"यह तुम्हारी ज्यादती है। तुम जानती हो, मुरला किसी का आना-जाना पसन्द नहीं करती, तुम उस के सोने के कमरे में क्यों गई ?"

शिवाला उसी तरह दोनों हाँथों से दरवाजा रोके हुए बोली—"आज हम लोग भारत वापिस जा रहे हैं कुँवर ? तुमने इस लड़की को एकदम पिंजरे में बन्द कर रखा है। यह तुम्हारी सरासर ज्यादती है। बिना उसे तैयार किये, उसी हालत में बाहर निकालना देखने वालों को कैसा लगता ! सोचो तो—मैं उसे तैयार कर रही हूँ। क्षण भर खड़े रहो, तुम्हें अभी अन्दर बुलाती हूँ।"

और वह दरवाजा भेड़ती हुई अन्दर चली गई, प्रभात ड्राइन्गरुम में टहलता रहा—पाच मिनिट बाद शिवाला ने आकर कहा—"आओ, मुरला बुला रही है, पर कुँवर···अच्छा जाओ ?"

कहते हुए वह दरवाजे से हट गई। प्रभात अन्दर चला गया। आश्चर्य

से स्तब्ध हो उसने देखा—मुरला सामने खड़ी मुस्करा रही है, उसके लम्बे बाल पीठ के पीछे लहरा रहे हैं। पागल होकर प्रभात उसके हाथों को चूमने लगा।

शिवाला बोली—"देखते हो कुँवर! यह वही अँगूठी है जो तुमसे मुरला ने नाव की दौड़ में जीती थी।"

"तुमसे किसने कहा शिवाला?"

"क्यों, अभी तो मुरला ने बताया। खैर, अब चलना चाहिये। जाने का समय हो गया?"

प्रभात ने मुरला की ठोड़ी पर हाथ लगाते हुए कहा—"लो अब चलो। रास्ते में तुम्हें ठीक करूँगा। शिवाला से तुमने क्यों इतनी बातें की।"

"तुम्हें क्या इसमें ईर्ष्या हुई है प्रभात?"

"हाँ शिवाला! सचमुच मुझ से यह सहन नहीं।"

शिवाला के मुँह का रंग उड़ गया। अपने मन की व्यथा को दबाकर वह हँस दी। फिर मुरला के बुत को वह कमर से पकड़कर दरवाजे तक चलाकर ले गई, नीचे पहिये लगे थे—प्रभात एकटक उसकी तरफ़ देख रहा था।

शिवाला और प्रभात ठीक बारह दिन बाद बम्बई पहुँच गये। प्रभात सरकारी बंगले में जाकर ठहरा, शिवाला बोली—"तो मैं जरा मुरला के रहने के लिये कमरा ठीक कर लूँ। तो फिर अपनी कोठी पर चली जाऊँगी। आओ तो दीनू काका मेरे साथ।"

कहते हुए शिवाला एक सुन्दर से बैडरूम में घुसी, सब चीजों को उसने अपने हाथ से सजाया। फिर मुरला के बुत को लाकर उसने उस सुन्दर पलंग पर लिटा कर और एक रेशमी नीली चादर से उसे ढक दिया। उसके लम्बे काले बाल तकिये पर फैला दिये, क्षण भर तक खड़ी वह उस चाँद से सुन्दर मुँह की तरफ ताकती रही, फिर एक ठण्डी साँस

लेकर वह बाहर प्रभात के पास चली गई। दीनू ने कहा—"जाना मत बिटिया! चाय बना कर ला रहा हूँ।"

प्रभात ने कुछ कहा नहीं, शिवाला थकी-सी एक कुर्सी पर बैठती हुई बोली—"मुरला शायद बहुत थक गई है। सो गई है, मैं घर जाती हूँ। तुम उसे जगाना मत प्रभात।"

"नहीं जगाऊँगा। पर तुम यहाँ ही क्यों नहीं रहतीं शिवाला? इतना बड़ा बंगला है। मेरे लिये तो एक ही कमरा काफ़ी है। फिर मुरला की देख भाल कौन करेगा। यही बाल बनाने, कपड़े बदलने सब कौन करेगा शिवाला। तुम यहाँ ही रहो। मैं···"

शिवाला का हृदय मारे खुशी के धड़कने लगा। बोली—"पर कुँवर! तुम्हारे माता-पिता को मेरे यहां रहने से एतराज हो सकता है।"

"क्यों···यह घर तो उनका अपना नहीं है। सरकारी बंगला है, तुम भी तो यहाँ की डाक्टर हो, रहो शिवाला, तुम यहाँ ही रहो।"

दीनू ने आकर कहा—"मेरी बिटिया जा कहाँ रही है छोटे मालिक! जो आप इतनी चिरौरी कर रहे हैं। जाकर देखें तो, इनके रहने का कमरा मैं कैसा झकाझक कर आया हूँ। कपड़े तक सन्दूक से निकाल कर आलमारियों में रख आया हूँ। और खाली सन्दूक स्टोर में बन्द कर आया हूँ। लो बिटिया? यह आलमारी की चाबी?"

शिवाला चकित-सी उस बूढ़े दीनू की तरफ़ ताकती रह गई। प्रभात थका सा कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—"तुम भी मुझे योंही डराती रहती हो शिवाला? लो बनाओ चाय।"

शिवाला चाय बनाने लगी। दीनू चुपचाप वहाँ से खिसक गया।

रात को भोजन के बाद प्रभात बोला—एक बार मुरला के कमरे में हो आऊँ, शायद जाग रही हो।"

शिवाला बोली—"नहीं वह सो रही है। तुम जा सकते हो, पर

बहुत आहिस्ता, जानते तो हो, असमय में जाग उठने से उसका सिर दुखने लगेगा।"

"अच्छा, तब तुम भी साथ चलो।"

"चलो।"

दोनों धीरे-धीरे सुरला के कमरे में गये। प्रभात ने चकित होकर देखा, छत का पंखा चल रहा है। हवासे सुरला के बाल उड़ रहें हैं, और वह बिस्तर पर पड़ी है। क्षण भर तक वह देखता ही रहा गया। फिर इशारे से शिवाला ने उसे बाहर चलने को कहा। दोनों चुपचाप बाहर चले गये।

शिवाला बोली—"गुडनाईट कुँवर! अब तुम भी सोने जाओ, सुबह आठ बजे तुम्हें हास्पिटल जाकर चार्ज लेना है।"

"हां···शिवाला! अच्छा, गुडनाईट।"

दोनों अपने-अपने कमरे की तरफ़ चले गये।

: ६ :

आज ! बसन्त पंचमी है। बृजपुर में आनन्द की लहर दौड़ रही है, जमींदार की हवेली पर और मन्दिर में शहनाइयाँ बज रही हैं।

मन्दिर की सजावट देखने योग्य है। चाँदी के सिंहासन पर मोतियों के झालर वाले छत्र के नीचे वह सुन्दर जोड़ी सुनहरे जेवरों और जर्क-वर्क कपड़ों से सजी आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी।

आरती का समय हो गया। महात्मा ने घण्टे पर चोट करने का इशारा किया। साज वालों ने साज सम्भाले। पीले फूलों के बड़े-बड़े दो गजरे हाथ में लिये, अन्दर के द्वार से महाश्वेता ने मन्दिर में प्रवेश किया, ग्रामवासी जय-जयकार उठे—"देवी महाश्वेता की जय"

सामने जाली के पर्दे के अन्दर जमींदार गृहिणी के साथ मुरला और रेवा बैठी थीं, रेवा के रोंगटे खड़े हो गये।

उसने देखा, साक्षात् देवबाला-सी महाश्वेता सचमुच अपने को भुलाकर नृत्य करती है। उसकी दोनों आँखें बस राधेश्याम की मूर्ति पर स्थिर हैं। शहर की लड़की रेवा ने इससे पहिले ऐसा कभी नहीं देखा था। हीरे के जेवरों से सजी महाश्वेता राजरानी-सी दीख रही थी।

नृत्य समाप्त हुआ। महाश्वेता ने पहिले भगवान, फिर महात्मा के चरण छुए और प्रसाद बाँटने के लिये उठ खड़ी हुई। रेवा ने देखा, सब बड़ी श्रद्धा से उसके चरणों पर हाथ रख देते हैं। और वह 'कल्याण हो' कहती हुई आगे बढ़ जाती है। सहसा उसने देखा, मनहर ने भी

प्रसाद लेकर उसके चरणों पर हाथ रखा। वह बोली—'यशस्वी, हो भैया?' इसके बाद धीरे से बोली—

"वह बात भूले तो नहीं, वहीं मेरा इन्तजार करना।"

मनहर ने सिर हिलाया। वह आगे बढ़ गई। रेवा ने इसे भी देखा। इसी समय बिज्जी और तारी कूदते हुए वहाँ पहुँचे, उनके हाथ में कुछ अखबार थे। उन्होंने झुककर मनहर से कुछ कहा—फिर जैसे मन्दिर में शोर-सा मच गया—कुँवर प्रभात बम्बई में पहुँच गये हैं। और वहाँ के सरकारी हस्पताल के बड़े डाक्टर नियुक्त किये गये हैं—सबकी प्रसन्नता दुगनी हो गई। महाश्वेता ने भी सुना, वह क्षण भर के लिये सुन्न-सी खड़ी रह गई, महात्मा ने चकित होकर उसकी तरफ़ देखा। वह सहम कर आगे बढ़ गई। मुरला जमींदार गृहिणी के साथ उठकर घर चली आई। रेवा ने देखा, मुरला का मुँह बिल्कुल सफ़ेद पड़ गया था।

ठीक समय परमहाश्वेता को आते देख मनहर बोला—"तुम आ गईं बहिन!"

महाश्वेता ने आँचल से पोटली निकालकर उसके हाथ में रख दी। मनहर का शरीर सिहर उठा, बोला—"तुम धन्य हो महाश्वेता? फिर भी, अब भी समय है; सोच लो, कहीं तुम इससे किसी मुसीबत में तो न फँस जाओगी।"

"बहुत दिन तक सोचती रही हूँ भैया! अब और सोचने की जरूरत नहीं है। तुम इन्हें ले जाओ।"

"तुमने सुना, कुंवर बम्बई में आ गये हैं।"

"हाँ सुना है न आज? पर यह कैसी बात, जमींदार साहेब को पता नहीं—लगता है बेटे ने पिता का बिल्कुल त्याग कर दिया है।"

"तुम कुंवर से मिलोगे भैया?"

"किस मुँह से मिलूँगा बहिन? अच्छा अब जाता हूँ।"

'हाँ जाओ।"

दोनों तेजी से दो रास्तों पर चले गये।

आगंन में पैर रखते ही मनहर ने देखा, रेवा रसोई की चौखट पर बैठी उसकी राह देख रही है। अचकचा कर बोला—"तुम, तुम क्यों बैठी हो रेवा ? सो जाओ···मुझे अब कुछ नहीं चाहिये।"

उसका स्वर इतना अस्वाभाविक था। सुनकर रेवा चौंक पड़ी, मनहर ने सोचा—शायद यह ठीक नहीं हुआ। बोला—"मेरे सिर में दर्द हो रहा है रेवा ? कुछ खाने को मन नहीं है।"

और वह अपनी कोठरी में चला गया। रेवा दरवाजे पर जाकर बोली—"थोड़ी चाय बना लाऊँ।"

इस बार मनहर ने इन्कार नहीं किया, बोला—"चाय, हां सो तो अगर बना सको रेवा ?"

रेवा चाय बनाने चली गई, मनहर ने जेवरों की पोटली अपना सन्दूक खोल कपड़ों के नीचे दबा दी, और फिर कपड़े उतार अपने बिस्तर पर पड़ गया।"

रेवा चाय बनाकर लाई तो उसने दरवाजे पर से पूछा—"आपने कपड़े बदल लिये ? मैं चाय लाई हूँ।"

"ले आवो रेवा ! मैं कपड़े बदल चुका हूँ।"

रेवा ने अन्दर आकर उसकी तिपाई पर चाय रख दी, वह बोला—"बड़ी अच्छी हो तुम, जाओ अब सो रहो। काकी सो गई क्या ?"

"हाँ" कहती हुई रेवा कोठरी से बाहर निकल गई।

दोपहर को भोजन खत्म कर मनहर जब उठने लगा तो रेवा बोली—"महाश्वेता के जेवर आपको कैसे मिले ?"

क्षण भर के लिये मनहर को जैसे काठ मार गया हो, उसका सांस तक रुक गया। बोला—"वह जेवर महाश्वेता के ही हैं। यह तुमने कैसे कह दिया रेवा ?"

रेवा स्थिर कण्ठ से बोली—"रात को ही तो उसे पहिने हुए थे यह !

सब जेवर देख चुकी हूँ। आपको शायद मालूम नहीं, नृत्य कला से ज्यादा स्त्रियों का ध्यान महाश्वेता के कपड़े-गहनों की तरफ था। मैं भी तो लड़की ही हूँ।"

"यह जेवर उसी के हैं?

"इसके बाद—"

"इसके बाद···मैं इसे चुरा कर नहीं लाया हूँ। उसने अपनी खुशी से इन्हें मुझे दिया है।"

"परन्तु महाश्वेता को मन्दिर की कोई वस्तु किसी को देने का अधिकार नहीं है, उसे क्या आप नहीं जानते?"

"जानता हूँ, पर मानता नहीं। मन्दिर की हर चीज अगर भगवान की है, तो उस पर सबसे ज्यादा अधिकार ग़रीबों का है। यह जेवर उन्हीं ग़रीब आदमियों की तकलीफ़ें मिटाने के काम आवेंगे।"

"और अगर इससे उस लड़की पर कोई आफ़त आ गई तो—"

"यह बात मैंने उससे बार-बार कही थी रेवा? उसने यही कहा—वह मैं देख लूँगी तुम जाओ भैया।"

रेवा ने तवा उतार दिया और कहा—"वह अभी अनसमझ है, फिर घबराई हुई है। उसके बताये रास्ते पर पैर मत रखिये? नहीं तो बाद में पछताना पड़ेगा। यह रास्ता बहुत भयानक है, बहुत गन्दा—अभी समय है, लौटा आइये, मैं आपसे निवेदन कर रही हूँ। मेरे अनुरोध की रक्षा कीजिए, मौसी के लिये···।

रेवा के सुन्दर सांवले मुखड़े पर नेत्र जमाते हुए मनहर ने मिन्नत करते हुए कहा—"केवल एक बार मुझे इस राह पर जाने दो रेवा? अगर कुछ न कर सका तो विश्वास करो, मैं लौटकर तुम्हारे ही पास आऊँगा। और तब तुम्हीं से आकर अपनी असली मन्जिल की राह पूछूँगा, फिर आँख मूंदकर जीवन भर तुम्हारे बताये रास्ते पर चलता रहूँगा, अभी मुझे जाने दो रेवा?

यह कहता हुआ वह आसन पर से उठ खड़ा हुआ, फिर बोला—"अनाज वगैरह तो आ गया, तुम्हें किसी और चीज की जरूरत तो नहीं रेवा ?

"नहीं!"

"रुपये मेरे सन्दूक में काफ़ी हैं, जरूरत पड़ने पर निकाल लेना यह लो चाबी—"

और उसने चाबी रेवा के हाथ पर रख दी, जाते-जाते उसने कहा—"पंचकौड़ी शाह के सब रुपये उतार दिये हैं मैंने। इसबार शहर में मुझे कुछ दिन ज्यादा लगेंगे रेवा, जरूरत पड़ने पर पत्र डाल देना।"

मनहर काकी के चरण छूने के बाद आँगन से बाहर हो गया। रेवा आप ही आप कह उठी—"तुम, तुम क्या हो ? तुम्हारा यह व्यथित स्वर मेरे हृदय में उतर जाता है, दुनिया भर के लिये तुम चिन्ता करते हो। अपने को मुसीबतों में डालते हो और जो तुम्हारा ही है, केवल दिन रात तुम्हारी चिन्ता में पड़ा रहता है। उसकी तरफ़ तुम एक बार देखते तक नहीं ! काश, तुम सचमुच लौटकर आओ और मुझसे अपनी मंज़िल की राह पूछो आकर, मैं तुम्हें राह बताऊँगी।"

कई दिन बीत गये—मुरला ने जमींदार गृहिणी के कमरे में आकर कहा—"तो मैं कल जाऊँ मौसी ?"

उन्होंने हाथ बढ़ाकर लड़की को अपनी गोद में खींच लिया। मुँह से कहा कुछ नहीं, चुपचाप उसके सिर पर हाथ फेरती रहीं। मुरला के माथे पर आंसू की एक बड़ी-सी बूंद टपक पड़ी। वह चौंककर मौसी का मुँह ताकने लगी–दोनों के मन में एक ही बात थी–प्रभात ऐसा क्यों हो गया···क्या सचमुच वह अब कभी हम लोगों से कोई सम्पर्क नहीं रखेगा। पर बात होंठों पर नहीं आती थी। मौसी ही बोली—

"थोड़े दिन और रह बेटी ? उसने तो हमें छोड़ दिया। तू तो मेरी बनी रह।"

मुरला बोली—"रात मौसा बम्बई से लौट आये हैं। मौसा ? पर मुझे बताया नहीं उन्होंने ! कुंवर ने क्या उत्तर दिया ?

मौसी ने आंचल से अपनी आँखें पोंछ डालीं और कहा—"प्रभात ने पिता के पैर छुए—खूब आवभगत की, जब इन्होंने पूछा—घर कब आओगे प्रभात, तो बोला—मेरा कोई घर नहीं है बापू, आप मिल ही गये हैं—मां से कहना मुझे आकर मिल जाये। बृजपुर में मेरा कौन है वहाँ मैं क्या आऊँगा—इतने कहने के बाद वह हास्पिटल चला गया। उस दिन उसने कोई भारी ओपरेशन करना था।"

कहते-कहते जमींदार गृहिणी आंचल को आँखों से लगा फफक-फफक कर रोने लगी। मुरला उनके गले से चिपटकर बोली—"रोओ मत मौसी ? मैं—मैं तुम्हारे प्रभात को यहां ला दूंगी।"

जमींदार गृहिणी ने आंचल हटाकर उसकी तरफ देखा, और कहा—मुरला, मेरी बच्ची ! तू ऐसा कर सकेगी क्या ? सुना वह इतना बड़ा डाक्टर हो गया है तो क्या ? पर होश-हवास में ठीक से नहीं है।"

मुरला ने आँखें झुकाकर कहा—"सो सब जानती हूँ मौसी ? मैं··· मैं···यहां से घर जाकर बेबी को वहीं छोड़, बम्बई जाऊँगी, तुम रोओ मत।"

जमींदार गृहिणी कुछ सहमी-सी बोली—"उसने अपने कलेजे पर पिस्तौल चला ली थी। कहीं गुस्से में तुझे मार देना चाहे तो।"

"तो···मुझे वह मार नहीं सकेंगे मौसी ? तो मैं कल जाऊँ।"

"अच्छा जा बेटी ? बिज्जी और तारी तेरे साथ जायेंगे न ?"

"हाँ मौसी ?"

दूसरे दिन मुरला सुचेतगढ़ वापस चली गई।

रास्ते में तय हुआ कि पहिले बिज्जी जाकर प्रभात को मिले और जो बृजपुर के जमींदार का बम्बई में बंगला है, उसे मुरला के रहने के लिये साफ़ कर आये, तब आकर मुरला को ले जाये।

सुचेतगढ़ पहुँचकर, बिज्जी ने रेडियोस्टेशन से छुट्टी ली और रात को गाड़ी से बम्बई रवाना हो गया। जाते हुए कह गया—ओ सन्तरी बादशाह, तार दूँ, तो गाड़ी लेकर स्टेशन पर आ जाना।

ताराचन्द बोला—"जरूर आजाऊँगा ओये···असल पेशावरी बच्चा हूँ, तू जरा होश में रहना। कहीं प्रभात दादा सारा गुस्सा पांच फुटे पर ही न निकाल दें।"

"अमां लानत है तारी ? तुम्हारी इस मनहूसियत पर ! कभी अच्छा शब्द बोलना भी सीखोगे ? और देखना जरा बृजपुर जाओ, तो पारू से कहना—जल्द ही तुम्हारी पुस्तकें पहुँच जावेंगी।"

"अमां—क्या कहने ? यह लैला के कासिद हमको कबसे समझ बैठे, लानत है ! मैं गवर्नमेण्ट का इन्सपेक्टर हूँ न कि मजनूं का क़ासिद। खैर महाबदौलत बृजपुर गये, तो इतनी-सी बात पारु से फरमा देंगे और देखो...।"

पर गाड़ी की रफ्तार तेज हो गई थी।

मुरला अपनी लड़की से खेल रही थी, इसी समय तारी ने आकर कहा—"बिज्जी का तार आया है जीजी, वह पहुँच रहा है आज।"

"अच्छा किस समय—"

"यही जो रात को आठ बजे गाड़ी आती है।"

घड़ी की तरफ़ देखती हुई मुरला ने कहा—"तब तो जाओ भैया ! पौने आठ तो हो गये ? मोटर निकलवा लो।"

तारी चला गया और ठीक वक्त पर स्टेशन पहुँच गया। उसके पहुँचते ही गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ लगी, सरसरी निगाह से वह एक बार सारे डिब्बे देख गया, पर पांच फुट का वह हलका-फुलका सांवला-सा बिज्जी उसे कहीं दिखाई नहीं दिया। बड़बड़ाता हुआ वह आगे बढ़ा ही था कि पीछे से आवाज आई।

"अमां लानत है तुम पर तारी ? ऊँट की तरह आगे ही बढ़े जा

रहे हो। इधर-उधर देखना तो चाहिये स्टेशन पर! आदमी को किस तरह देखना चाहिये, सो भी तुम्हें नहीं मालूम सन्तरी बादशाह!"

ताराचन्द ने मुड़कर उससे हाथ मिलाते हुए कहा—"अमां कमाल है, सारी गाड़ी का एकाएक डिब्बा छान मारा। हज़रत कहीं दिखाई तो पड़े नहीं, किसी सीट वीट के नीचे थे क्या? पास में टिकट तो है न?"

बिज्जी बिगड़कर बोला—"अमां जलालत है तुम्हारे ऐसे बेतुके मज़ाक पर, चलो पहिले स्टेशन से बाहर तो निकलो, मेरा जी तो धड़क रहा है, देखो तो हाथ रख कर ..."

ताराचन्द ने उसके दिल पर हाथ रखा और कहा—"अमां तुम्हारे दिल ने तो चौताले की ताल को भी मात कर रखा है, आखिर बात क्या है? कोई ख़ून-वून करके तो नहीं भागे हो?"

बिज्जी आँखें तरेरकर बोला—"अमां लानत है सन्तरी बादशाह! ख़ून करके मैं तुम्हारे ही पास आता। ऐसा बेवकूफ हूँ क्या? कायस्थ बच्चा हूँ, अभी भी पेशावरी बच्चे को अक्ल सिखा सकता हूँ।"

कहते हुए कुली को साथ साथ आने का इशारा करते हुए वह दोनों स्टेशन से बाहर निकले। सामान रखवा दोनों मोटर में बैठे। ड्राइवर ने मोटर स्टार्ट कर दी। तारी बोला—"अमां बिज्जी? यह तुम्हारी आँख में क्या हुआ साहबजादे?"

"अमां यार! इसकी कहानी बड़ी दर्दनाक है, बस यह समझो कि आँख फूटने से बच गई।"

"आखिर बात क्या थी, क्या भीड़ बहुत थी? तुम रिज़र्व कराके नहीं चले थे क्या?

माथे पर हाथ मारता बिज्जी बोला—"अह है तारी? तुम तो भाई एकदम अनजान बन जाते हो। रिज़र्व कराने के ज़माने ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ चले गये। यह तो मानना होगा, उस गवर्नमेण्ट को और चाहे हमारा कुछ ख्याल न था, पर हम नींद भर सोते रहें, इसका

ख्याल वह खूब रखती थी। अब तो भैया? जिस डिब्बे में भीड़ आ घुसे, बस सारी रिजर्वेशन खत्म हो जाती है। और बड़े से बड़े लाट साहब को भी बिस्तर समेटकर उन लोगों को जगह देनी पड़ती है। फिर मेरे जैसे हलके-फुलके आदमियों को तो ये लोग चुटकियों में उठा कर खिड़की से बाहर कर देते हैं। इन लोगों के साथ सफर करना, यम-राज के घर से लौट आने के बराबर है।"

"तो यह आँख की चोट का कारण भी क्या यही लोग हैं।

"अमां लानत है तारी! यही लोग नहीं हैं तो फिर और कौन है। इन्सानियत तो इनके पास से जैसे निकली ही नहीं, मुझे बीच सीट के डण्डे पर बैठा कर दो औरतें मेरी सीट पर लम्बी हो गईं। कमबख्तों ने रिजर्वेशन का तो ख्याल नहीं किया तो न सही, पर मुझे मेरा बिस्तर तक उठाने नहीं दिया, फिर जब तब मेरी ओर टांगें फैला देतीं जिससे मैं गिरते-गिरते बचता। एक बार मेरी मिची आँखों का नाजायज फायदा उठा, एक बुढ़िया उठकर बैठ गई और अपना कद्दू सा सिर मेरी आँख पर दे मारा। नतीजा तुम्हारे सामने है।"

कहते हुए उसने अपनी लाल और सूजी हुई आँख पर हाथ रखा, तारी जोर से हँस पड़ा। बिज्जी बोला—जब मैंने कहा—"अरे रे··· भाई जी! तुमने तो मेरी आँख फोड़ डाली। जरा होश से बैठो न।"

तो चुड़ैल गर्म होकर बोली—"तुम्हारे को उदर जाके बैठो, ऐथे औरतों द बिच बैठते तुम्हारे को शर्म नहीं आती। हम तो मुसीबत पिटते फिरते हैं, तेरे जैसे मुसटण्डों ने और तंग कर रखा है। हम तुम्हारी आँख क्या भन्नांगे, परमात्मा भन्नेगा।"

यह है उनकी शराफत, एक तो मेरी सीट ली, बिस्तर लिया, तिस पर आँख परमात्मा भन्नेगा।

तारी बोला—"क्या कहने, उसकी तेजी के।"

"अमां लानत है! यहां तो तबियत कोफ्त हो गई, तुम्हें शायरी

सूझी है। मैं तो फिर रात भर खिड़की पर खड़ा उस खर्राट की ओर ताकता रहा, गनीमत यह हुई जाते-जाते मेरा बिस्तर दे गई। बड़े तपाक से बोली—"ओ मुण्डे, चुक ले अपना बिस्तरा, हमारे को ऐथे ही उतरना है।"

ताराचन्द को हँसते देख वह फिर बोला—"अमाँ, हँसते क्या हो पेशावरी बच्चे ? तुम्हें तो रोना चाहिये रोना ? हर वक्त गाते रहते हो–असल पेसावरी आं ओऐ–यह है तुम्हारी शराफ़त की झांकी ! हम तो आँख ही लुड़ा बैठे और तुम पंजाबियों में चाहे जो हो। पर बात करने का ढंग यह लोग कभी नहीं सीख सकते।"

"अमाँ क्यों कोस रहे हो पाँच फुटे ! यह तो कहो प्रभात दादा से मिले थे ?

"खूब मिला था। बल्कि वहाँ ही ठहरा था, प्रभात दादा बड़े खुश होकर मिले, सबके हाल-चाल पूछे, अनेक बातें कीं, उसी वक्त ऑपरेशन करके आये थे। परन्तु जब उन्होंने कहा······"

कहते-कहते बिज्जी चुप हो गया। ताराचन्द ने नाराज होकर कहा—"अरे बोलो, आगे बोलती क्यों बन्द हो गई। क्या कहा ऐसा प्रभात दादा ने ?"

"कहा···जा रहे हो बिज्जी ! मुरला से नहीं मिलोगे—तब तो मैं जैसे असमान पर से गिर पड़ा होऊँ, ताकता का ताकता रह गया।"

"उसके बाद—"

"उसके बाद उनकी सहपाठिनी लेडी डाक्टर शिवाला ने कहा—बिज्जी बाबू, मुरला से मिल चुके हैं कुंवर, इस वक्त तो अब वह सो रही है। प्रभात दादा ने उदास होकर कहा—आज-कल उसकी तबियत ठीक नहीं है बिज्जी, बांसुरी और वायलिन भी वह पलंग पर पड़े-पड़े सुनती है।"

"फिर !"

"फिर वह जब आराम करने चले गये तो डाक्टर शिवाला ने कहा बिज्जी बाबू ! तुम मुरला को मेरा यह पत्र देकर कहना, कुछ दिन के लिये बम्बई आ जाये, उसके आने से शायद कुँवर के दिमाग़ को यह कसर मैं दूर कर सकूँ।"

तारी ने फिर कुछ नहीं कहा। दोनों उतरकर मुरला से मिलने अन्दर बंगले में गये। मुरला ने खोद-खोद कर प्रभात के बारे में पूछा। बिज्जी ने सब समाचार देने के बाद शिवाला का पत्र उसके हाथ पर रख दिया। मुरला ने पढ़ा। लिखा था—

मुरला बहिन

आप जल्द से जल्द बम्बई आने की कोशिश करें। कुँवर के लिये मैं बड़ी चिन्तित हो उठी हूँ। यहाँ आकर, उनकी यह बीमारी कुछ बढ़ती-सी नजर आ रही है। और सब समाचार आपको दीनू काका हमेशा लिखता ही रहा है।

आपकी

शिवाला

मुरला क्षण भर तक उस पत्र को ताकती रही फिर चुपचाप अपने कमरे की तरफ़ चली गई।

तारी अपने घर चला गया। बिज्जी भी अपने घर जाता हुआ बोला—"अमाँ सुनो तारी ? आज शाम को मैं बृजपुर जाऊँगा।"

"क्यों ऐसा क्या काम आ पड़ा है। रेडियो स्टेशन वाले किसकी जान को रोएँगे।"

"अमाँ लानत है। अभी भी तीन दिन की छुट्टियाँ बाकी हैं। होली वाले दिन क्या-क्या काम करने हैं, इसकी सलाह करनी है पारु से।"

"आहा क्या कहने ? कन्हैया जी के ठाठ तो देखो।"

ड्राइवर ने मोटर स्टार्ट कर दी।

उसी दिन रात को बिज्जी घर पहुँचा। उसकी बहिन शकुन,

कौशिल्या और दुर्गा ने उसे घेर लिया। पूछा—"विजयलक्ष्मी पण्डित से मिला था?"

क्योंकि बिज्जी साहेब घर यही कह गये थे कि मुझे विजयलक्ष्मी पंडित ने बम्बई आने के लिये लिखा है, इसीलिये जा रहा हूँ।

बिज्जी ने गप्पें मारनी शुरू कीं, बोला—"क्या पूछती हो जीजी, श्रीमती ने मुझे अपने सजे हुए ड्राइंगरूम में बैठाया और—कहा "तुम अमरीका चलो मेरे साथ, मैं तुम्हें बहुत पसन्द करती हूँ। तुम्हारे चाचा ने मुझसे तुम्हारी बहुत प्रशंसा की थी। तुम एक बार चलकर तो देखो बिज्जो! जी न लगे तो लौट आना। मैं नहीं रोकूँगी।"

वह सब बोलीं—"फिर?"

"अमां फिर क्या? मुझे तुम सब की मोहब्बत और अम्मा का हुक्म याद आ गया। इन्कार करके चला आया। वह बोलीं—अच्छा एक बार बृजपुर तुम्हारी अम्माजी को आकर मैं समझाऊँगी।

"हैं" कहते हुए तीनों ने एक बार सरसरी निगाह अपने कमरे पर डाली कि अगर श्री विजयलक्ष्मी पण्डित आ ही गईं, तो उन्हें किस जगह बैठाने से ठीक रहेगा।

बिज्जी ने उसके बाद अपनी सूजी आंख का किस्सा बयान करना शुरू किया।

: १० :

एक दिन दो पहर को महाश्वेता अपनी कोठरी में बैठी गीता पढ़ रही थी। महात्मा ने आकर पुकारा—"महाश्वेता !"

"आज्ञा बाबा !" कहती हुई वह द्वार पर आ गई। महात्मा अन्दर आकर बोले—

"बेटी ! बसन्त पञ्चमी वाले दिन जो तुमने हीरे का सेट पहिना था, वह क्या अभी तक तुमने भण्डारी जी से तिजोरी में नहीं रखवाया ?"

महाश्वेता का कलेजा धक्क से हो गया। उसके मुँह से केवल एक छोटी-सी 'नहीं' निकली। वह बोले—

"ऐसी जोखम की चीज इस तरह मन्दिर में नहीं रखनी चाहिये बेटी ? सन्ध्या को भण्डारी जी आएँगे, जेवर उन्हें सम्भलवा देना।"

महाश्वेता ने सिर हिला दिया। महात्मा चले गये। महाश्वेता कटे वृक्ष की तरह धम्म से अपने तख्त पर जा पड़ी। उस दिन सन्ध्या तक वह चुपचाप इसी तरह गुम सुम तख्त पर पड़ी रही।

सन्ध्या को चारणी ने आकर कहा—"भण्डारी जी जेवर लेने आये हैं बेटी ?"

महाश्वेता ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसी तरह औंधे मुँह पड़ी रही। चारणी बोली—"तेरी तबियत शायद ठीक नहीं आज—ला चाबी मुझे दे। मैं उन्हें जेवर संभलवाए देती हूँ।"

महाश्वेता ने कमर से चाबी का गुच्छा निकालकर चारणी के हाथ पर रख दिया। उसने सन्दूक खोला और सब मखमली डिब्बे उठाकर बाहर चली गई।

परन्तु जब जेवर भण्डारी जी सम्भालने लगे तो देखा डिब्बे सब खाली हैं। चारिणी मां बोली—"शायद आलस्य के मारे बेटी ने जेवर यों ही बाहर पटक दिये हैं। मैं अभी लाती हूँ।"

और वह महाश्वेता की कोठरी में जाकर सन्दूक का एक-एक कपड़ा उलटने लगी। महाश्वेता बोली—

"जेवर उसमें नहीं है माँ ?"

"तब और कहाँ हैं ?"

"यहाँ कहीं नहीं है, मैंने उन्हें भगवान के अर्पण कर दिया है। भंडारी जी से कह दो जाकर।"

चारणी घबराकर बोली—"यह क्या कह रही है तू ? जेवर तूने किसे दे दिये बेटी ?"

"कहा न ? ईश्वर-अर्पण कर दिये हैं।"

"आखिर किसी के हाथ पर रख कर ही तो ईश्वर अर्पण किये होंगे बेटी ?"

"हाँ ! पर उसका नाम मैं कभी न बताऊँगी। उन जेवरों को मैंने अच्छे काम में लगाया है। गरीब, दुखी, भूखे भाइयों का पेट भरने के लिये दे दिये हैं।"

"यह तूने क्या गजब कर दिया बेटी ? अब क्या होगा, कह तो ?

"जो होगा, देखा जायगा मां ! अब तुम जाकर भण्डारी जी को तो बिदा कर आओ।

चारणी माँ कोठरी से बाहर हो गई।

सारे गांव में यह बात बिजली की तरह फैल गई। देवी महाश्वेता ने अपने जेवर पता नहीं किसे दे डाले हैं।"

जमींदार सुरेन्द्र सिंह को पता लगा—बहुत बिगड़े। फौरन मन्दिर में जाकर जांच-पड़ताल शुरू कर दी। महाश्वेता से उन्होंने पूछा—"यह सब जेवर किसको दे दिये बेटी ?"

"मैं उसका नाम नहीं बताऊँगी जमींदार काका ? पर मुझ पर विश्वास करें, वह जेवर मैंने भले काम के लिये ही दिये हैं।"

"सो शायद ऐसा ही हो—पर बेटी ! मन्दिर के नियमों का पालन करना तुम्हारा पहिला कर्त्तव्य है, क्या तुम नहीं जानतीं ? इस मन्दिर की किसी वस्तु को तुम या मैं, यहां तक कि महात्मा भी किसी को दे देने का अधिकार नहीं रखते।"

"परन्तु यह जेवर तो मन्दिर के पिछले उत्सव में मुझे मन्दिर की ओर से भेंट किये गये थे काका ?"

"सो तो ठीक है बेटी ? एक वह जेवर ही क्या, मन्दिर की तमाम मलकियत की महात्मा के बाद, तुम्हीं तो अधिकारिणी हो, परन्तु मन्दिर के नियम यही हैं। यहां की कोई वस्तु तुम किसी को दे नहीं सकतीं।"

"मैं इस नियम को नहीं मानती काका ?"

जमींदार का मुँह गुस्से से लाल हो गया। महात्मा बोले—"यह क्या महाश्वेता ? यह जेवर मन्दिर में वापिस आने ही चाहियें।"

महाश्वेता ने गर्व के साथ माथा ऊँचा करते हुए कहा—"अगर ऐसा है, तो वह जेवर मैं वापिस कर दूँगी।"

"सो कैसे महाश्वेता ? तुम मन्दिर से बाहर आ-जा नहीं सकतीं।"

"तब फिर मैं उन्हें वापिस कैसे लाऊँगी।"

"जिसको दिये हैं, उसका नाम बता दो—मैं खुद जाकर उससे ले आऊँगा।"

"यह मैं नहीं कर सकूंगी काका ?"

"तब तुम्हें प्रायश्चित करना होगा, एक लम्बी अवधि तक।"

"मैं हरगिज़ प्रायश्चित नहीं करूँगी। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है, जिससे मुझे प्रायश्चित करने की ज़रूरत हो।"

"प्रायश्चित तुम्हें करना ही होगा महाश्वेता ! नहीं तो फिर तुम मन्दिर में नहीं रह सकोगी।"

महाश्वेता ने अपनी व्याकुल दृष्टि अपने बाबा के मुँह पर डाली। वह बोले—"यह···यह···ऐसा ही नियम है बेटी ?"

जमींदार चले गये। महाश्वेता बोली—"मैं मन्दिर छोड़ दूँगी बाबा?"

महात्मा की आँखें भर आईं। बोले—"मुझ बूढ़े से तुझे ज़रा भी मोह नहीं बेटी ?"

महाश्वेता ने उनके चौड़े वक्षस्थल पर अपना सिर रख दिया और कहा—"अच्छा बाबा ? मुझे समय दो, मैं सब समझने का प्रयत्न करूँगी।"

"सो दिया बेटी ? एक महीने तक अब तुझ से कोई कुछ न पूछ सकेगा।"

महाश्वेता धीरे-धीरे अपनी कोठरी की तरफ़ चली गई—महात्मा ने राधेश्याम कहने के बाद उस बड़े ग्रन्थ में उलझ जाने का प्रयत्न किया।

रेवा ने भी सब सुना—महाश्वेता को प्रायश्चित करना होगा, पर उसने प्रायश्चित करने से इन्कार कर दिया है।

सुनकर रेवा मन ही मन हँसी—बोली—ये चारों अपनी ज़िद्द के पक्के हैं। इन्हें झुकाना नानी जी का खेल नहीं है। बृजपुर में कितने ही परिवार हैं, कितने ही लड़के-लड़कियां हैं, पर इन चारों-सा कोई नहीं। भगवान ने चारों को जैसे एक ही मिट्टी से गढ़कर बनाया है।"

एक महीना पूरा हो गया। जमींदार ने महात्मा से आकर कहा—"महाश्वेता तो अपनी जगह से तिलमात्र भी नहीं हटती महात्मा ?"

वह बोले—"इस बालिका का यह अपराध क्या तुम क्षमा नहीं कर सकते सुरेन्द्र ?"

"नहीं···अपराध को बढ़ावा देना अन्याय है महात्मा ? यह मुझ से नहीं होगा ?"

महात्मा चुप हो गये। जमींदार बोले—"पर इस युवती कन्या को अपने से दूर भी कैसे किया जा सकता है···मैं···मैं सोचता हूँ, देवदासी का ब्याह कर दिया जाये।"

महात्मा क्षण भर तक स्तब्ध बैठे रहे। फिर बोले—"मुझे भी कुछ दिन का समय दो सुरेन्द्र।

"जैसी आज्ञा।" कहते हुए जमींदार वहां से चले गये।

सुबह बहुत अन्धेरे गांव में शोर मचा—"देवी महाश्वेता मन्दिर में नहीं है।"

एक ग्वाले ने कहा—"मैंने अभी-अभी उन्हें नदी की तरफ आते देखा था। वह अकेली ही जल्दी-जल्दी एक तरह भागती हुई नदी की तरफ जा रही थीं।"

महात्मा और चारणी मां ने अपना सिर पीट लिया। सबको विश्वास हो गया। लड़की ने घबराकर आत्महत्या कर ली है। सारा गांव महाश्वेता के लिये दुःखी हुआ।

मन्दिर के तोता-मैना चिल्ला रहे थे—"ओ महाश्वेता......सुरसा ......मनहर......प्रभात आये हैं उठो।"

तोते के इस कहने पर मैना बोली—"वे चारों कहाँ हैं मिट्ठू...... वे चारों कहाँ हैं ?"

महात्मा ने अंगोछे से आँसें पोंछते हुए कहा—"चारणी ! इन पक्षियों को उड़ा दो बेटी।"

वह व्याकुल होकर बोली—"नहीं बाबा ? अगर किसी दिन महाश्वेता ने आकर पूछ लिया, मेरे पक्षी कहाँ हैं तो ? वह जरूर आयेगी एक दिन बाबा !"

महात्मा चुपचाप वहाँ से चले गये। उनका मन पूछ रहा था—

"क्या वह जिद्दी लड़की आयेगी फिर ? क्या वह जीवित है ?"

रेवा ने सब सुना। दुःखी होकर आप ही आप बोली—"कौन जाने तुम इस समय कहाँ हो, और क्या कर रहे हो ? तुम्हें अपनी बाल सखी के इस तरह गायब हो जाने की खबर मिली भी है या नहीं। सुनकर तुम्हें पश्चात्ताप तो होगा। तब सोचोगे—रेवा ठीक कहती थी। यह रास्ता ग़लत है। इससे कभी असली मंजिल पर नहीं पहुँचा जा सकता।

उधर मनहर होटल खरीद चुका था। जरूरत के मुताबिक सब फर्नीचर भी लगा दिया गया था। उद्घाटन का दिन रखा गया था—सोमवार।

हर अखबारों में मनहर के होटल की प्रशंसा छप रही थी—लिखा होता था—"महादेवी होटल का उद्घाटन सोमवार वाले दिन सन्ध्या के चार बजे होगा। आठ बजे नाहरपुर की मशहूर नर्तकी मिस रोज़ी नृत्य करेंगी।"

लोग बड़ी उत्सुकता से इस दिन का इन्तजार कर रहे थे। अचानक शनिवार वाले दिन माँ की बीमारी का तार पाकर मिस रोज़ी कलकत्ता रवाना हो गई।

मनहर सोचने लगा—"अब होटल खुलने के पहिले ही दिन साबित हो जायेगा—मैंने जनता को धोखा दिया है। कौन मानेगा कि रोज़ी अचानक चली गई है।"

दोस्तों ने समझाया—"अमां रोते क्यों हो, चलो खोजते हैं, शायद कोई लड़की उस दिन के लिये नाचने को तैयार हो जाये।"

पर बहुत खोजने पर भी उन सबको ऐसी कोई लड़की नहीं मिली। सबकी दौड़-धूप बेकार हो गई। अपनी मोटर साइकिल को एक मित्र के हवाले कर मनहर पैदल ही मनमारे होटल की तरफ लौट रहा था। अचानक एक ताँगे से टकराता-टकराता बच गया। ताँगे वाला पेशावरी

था। बोला—बचणा बाबू जी बचणा ! जरा सम्भल के बादशाहो ! असी तां अग्गे ई कर्मां दे मारे हैं।"

मनहर लज्जित होकर बोला—"अरे भैया ! तुम लोग भी तो जरा देख-सुनकर चला करो। एकदम ऊपर ही कैसे चढ़ाए ला रहे हो।"

"ओ किथे बादशाहो ! किथे ! तुस्सी पटड़ी ते हो जाओ न ! पैदल वालियां दा रास्ता तां ओ हो ई ऐ—ऐ तां आखो—मेरी घोड़ी असल पिशौरी ऐ—जे तुस्सी बच गये। नई तां दूसरा जानवर होंदा ते तुहान हेठ सुट लैंदा। मेरे उत्ते औखे न पओ बादशाहो ! हाला वी पटड़ी ते हो जाओ।"

"ले बाबा" कहता हुआ मनहर पटरी पर हो गया। ताँगे वाला घोड़ी पर हल्का-सा चाबुक लगता बोला—चल जीवन जोगिये ? जरा बाबू लोगों ने वेख के, होश नाल टुरया कर, यह पिशौर नइयों—जित्थे सीना तान के टुरदी सैं।"

ताँगा बढ़ गया। मनहर होटल में जाकर अपने कमरे में, बिस्तर पर जाकर लेट गया। उसका नौकर दयाराम आकर बोला—"कोई एक बहुत देर से आपका इन्तजार कर रही हैं मालिक ?"

"कौन है ?"

"सो तो पूछने पर भी नहीं बताया।"

"कहाँ हैं।"

"नीचे बैठक में बैठी हैं।"

खीझता हुआ-सा मनहर उठा, और खट-खट सीढ़ियाँ उतर कर ड्राइंगरूम में पहुँचा, देखा खिड़की के पास एक लड़की खड़ी है। एक पतली चादर उसने साड़ी पर ओढ़ रखी है। मनहर दरवाजे पर ही खड़ा हो गया, उसकी आहट पा, उस लड़की ने बिना उसकी तरफ़ घूमे ही कहा—

"तुम्हारा यह होटेल तो बहुत सुन्दर जगह पर बना है भैया ? बहुत ज्यादा भीड़ भाड़ नहीं है।"

मनहर चकित-सा उसकी तरफ़ लपक कर बोला—"यह क्या—तुम महाश्वेता ?"

और उसने अपने दोनों हाथ उसके पैरों से लगा कर माथे से लगाये। महाश्वेता ने उसकी तरफ़ घूम कर कहा—

"यशस्वी हो, तुम्हें आशीर्वाद देने आई हूँ। बहुत थकी हूँ, मुझे कोई एक कोठरी पहिले रहने के लिये बता दो।"

मनहर के चेहरे का रंग उड़ गया, बोला—"कहीं मेरे पागलपन से तुम्हें मन्दिर से चले तो नहीं आना पड़ा महाश्वेता ?"

"वही तो···और मैं सोचती हूँ। यह बहुत अच्छा हुआ है भैया ?"

मनहर उसे ऊपर अपने कमरे में ले गया। बोला—"तुम यहां आराम से रहोगी महाश्वेता ? बड़ी सी छत है, कमरा सिर्फ़ यही है। साथ में स्नानागार है, तुम्हें नीचे जाने की जरूरत नहीं है, न कोई और ऊपर ही यहाँ आ सकता है।"

वह प्रसन्न होकर बोली—"मुझे बहुत पसन्द है, इस छोटी-सी साथ वाली कोठरी को मैं अपना पूजा घर बना लूँगी।"

"परन्तु अकेली कैसे रहोगी। मैं···मैं···ठीक है रसोइये की लकड़ी बंशी को तुम्हारे पास भेजे देता हूँ।"

फिर जाता जाता बोला—"इस वक्त खाओगी क्या महाश्वेता ? होटल की तो कोई चीज तुम छुओगी।"

"नहीं भैया ? सो मुझ से नहीं होगा तुम चिन्ता मत करो···मैं इस वक्त कुछ न खाऊँगी, सुबह देखी जायेगी।"

"उपवास करने की तुम्हारी पुरानी आदत है महाश्वेता ? थकी हो तो क्या ? दूध फल खाने में बहुत जोर नहीं लगेगा। बंशी के हाथ भेज रहा हूँ, खा लेना, नहीं तो मुझे दुख होगा।"

कहता हुआ वह नीचे उतर गया।

सोमवार आ गया। सन्ध्या के चार बजे होटल का फाटक मनहर ने अपने हाथ से खोलकर फूलों की जो डोरी बँधी थी कैंची से काट दी। लोगों ने तालियाँ पीटीं, और सब आकर इधर-उधर कुर्सियों पर बैठ गये। बैण्ड बजाने लगा, रोशनी के प्रबन्ध की सब बातें पूछकर, मनहर चुप-चाप अपने कमरे में आ लेटा, बार-बार मन ही मन कह उठता था—

मिसरोजी के नृत्य की लालसा लिये हुए, यह लोग आये हैं। आठ बजे क्या होगा? शायद तमाम फ़रनीचर तोड़-फोड़ कर यह चूर कर देंगे।

उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया। मुँह पर हवाईयाँ उड़ने लगीं, शरीर पसीने से तर हो गया। घड़ी पर आँखें लगाये मनहर अपनी चारपाई पर पड़ा था, धीरे-धीरे सुई साढ़े सात पर आ गई, मनहर ने उठकर अपने कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। और आप ही आप कहा—"अब चाहे जो हो।"

लोगों ने शोर मचाना शुरू किया। मिस रोजी कब आवेंगी। कहाँ हैं वह—"बेरा लोग कहते, बस अभी आई हैं सर।"

महाश्वेता ने पूछा—"यह शोर कैसा है बंशी ?"

बंशी ने जो सुना था, वह महाश्वेता को बता दिया। वह कई क्षण तक खड़ी सोचती रही। फिर बोली—"नाचने की पोशाक है यहाँ?"

वह उत्साहित होकर बोली—"कितनी ही बनवाई हैं मालिक ने जीजी ? ऐसी-ऐसी कि देख कर मैं तो बेसुध होने लगती हूँ।"

उसके गालों पर हलका चपत लगाते हुए महाश्वेता बोली—"जा एक ठो पोशाक और पैर के घुँघरू झटपट ले आ।"

बंशी सब कुछ ले आई, मनहर दम साध कर पब्लिक की मारपीट का इन्तज़ार कर रहा था। अचानक उसे लगा शोर एक दम बन्द हो गया है। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सोचने लगा—चलो ख़ैर हुई, सब चले गये लगते हैं।

सहसा उसे साजों और घुन्घुरुओं की आवाज़ आई, वह तीर की तरह बिस्तर छोड़कर उठ खड़ा हुआ। और दरवाजा खोलता हुआ हाल की तरफ़ दौड़ा।

दरवाज़े पर ही ठिठक गया वह। देखा, काले महीन रेशमी सितारों से लक़दक़ पोशाक पहिने कोई नाच रही है स्टेज पर, मुँह पर जाली पड़ी हुई है। गोरे-गोरे हाथ-पैर बिजली की तरह इधर-उधर थिरक रहे हैं।

समझ गया, यह महाश्वेता है। छी···छी भगवान् कृष्ण के सामने नृत्य करने वाली हमारी पूज्य देवी, आज मेरे कारण इन शराबियों के सामने नाचने पर मजबूर हुई। भगवान् मेरे इस पाप को किस तरह क्षमा करेंगे।

वह वहां खड़ा नहीं रह सका, उलटे पैरों वापिस लौट गया। स्नान, पूजा, पाठ से निबटकर महाश्वेता छत पर एक ओर चटाई बिछा कर बैठ गई, मनहर धीरे-धीरे आकर उसके पीछे खड़ा हो गया। कुछ देर वह उसके बोलने का इन्तज़ार करती रही। फिर बोली—"इधर मेरे सामने आकर बैठो न भैया?"

मनहर उसके सामने बैठ गया। महाश्वेता को उसका उतरा सूखा मुँह देखकर दुख हुआ। बोली—"कल होटल का उद्‌घाटन तो ठीक रहा न भैया?"

"हाँ! पर तुम्हें जो उन शराबियों के सामने नाचना पड़ा, इसका मुझे बड़ा दुख, क्षोभ और ग्लानि है महाश्वेता? मैं···"

वह मीठे स्वर से बोली—"मैं बचपन से ही नृत्य करती आई हूँ भैया? सदा देवता के सामने नाची हूँ। कल भी यही लगा कि केवल उन्हीं के लिये नाच रही हूँ। चाहे वह देखें न देखें, उनकी मर्ज़ी—पर मेरी यह नृत्य-कला···सब उन्हीं के लिये है। सदैव उनकी आँखों में आखें डाल कर देखती रही हूँ। वह मुस्करा रहे हैं या नहीं, परन्तु कल उन

शराबियों के सामने नृत्य कर के, मैंने तुम्हारी मेज़ कुर्सी टूटने से बचा ली, इससे मुझे तो खुशी हुई है, पर देखा—मेरे देवता भी कुछ कम प्रसन्न नहीं हुए हैं। भैया! कल मूर्ति सामने न होने पर भी मेरे राधेश्याम मेरी आँखों के सामने थे, और मुस्करा रहे थे—तुम व्यर्थ में इतना दुख मना रहे हो।"

मनहर कुछ नहीं बोला।

वह बोली—"भूल जाओ, मैं देवदासी हूँ। बस इतना याद रखो, हमारे जीवन का उद्देश है अपने को मिटाकर दूसरे को बनाना। मैं सदा तुम्हारे साथ-साथ चलूँगी।"

"पर बहिन! यह राह स्त्रियों के लिये ठीक नहीं, मेरा तो सब कुछ भगवान् ने पहिले खुद ही मिटा दिया था। पर तुम क्यों इस तरह मिटोगी। तुम लड़की हो। क्या तुम्हारे मन में एक छोटे से घर, पति और बच्चों की कल्पना नहीं होती महाश्वेता?"

मनहर ने देखा। जाने किस दर्द से उसके मुँह का रंग स्याह पड़ गया। क्षण भर तक वह उत्तर न दे सकी, फिर मुस्कराती हुई बोली—"तुम शायद भूल गये भैया? मेरे पति कन्हैया हैं। साक्षात् विष्णु—मैं उनकी पत्नी हूँ। तुम सब से ऊँची, बहुत ऊँची एवं महान्, मैं क्यों भला मनुष्य को पति रूप में पाना चाहूँगी। सारा विश्व जब मेरा अपना घर है। तो एक छोटे से घर की कल्पना करके मैं अपने को हीन क्यों बनाऊँगी। विश्व के प्राणी मेरी, अपनी सन्तान हैं मैं···दो-चार बच्चों की आकांक्षा किसलिये करूँगी भैया? मैं बहुत खुश हूँ, बहुत।"

मनहर स्तब्ध उसके उज्ज्वल पवित्र मुखमण्डल की तरफ़ ताकता रह गया। फिर बोला—"पर मैंने देवदासी पर अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। सब में यही लिखा है कि किसी भी लड़की को देवदासी बना देना उस पर जुल्म करना है।"

"होगा···किसी एक देवदासी की दुख-गाथा लेकर, तुम-से किसी

भावुक ने ऐसा लिख दिया होगा। और फिर तुम जैसों ने उसे पढ़ कर ऐसा सोच भी लिया, देवदासी बना देना वाकई लड़की पर अन्याय करना है। मैं मानती हूँ, इस में भी कहीं-कहीं कुछ ज्यादती भी किसी पर की गई है। पर भैया! भूल तो सभी से होती है, बड़े-बड़े महात्मा भी ग़लतियाँ करते हैं। उसीतरह किसी देवदासी को जबरदस्ती भगवान के रंग में रंगने से, रंग बड़ा बदरंगा हो जाता है। पर यह चलन क्यों हुआ था, उस पर गौर करने की जरूरत है। यह चलन हुआ था, उस निरुपाय नारी के लिये जिसके भगवान् के सिवा और कोई संसार में नहीं रहता था, तब वह भगवान् के चरणों का आश्रय लेकर दुनिया के पापों से बच जाती थी और यह देवदासी की प्रथा को महात्माओं ने उसी निरुपाय नारी के लिये जन्म दिया था।"

मनहर की आँखें खुल गईं। सोचने लगा—महाश्वेता में ज्ञान की कमी नहीं है। बोला—"तुम धन्य हो महाश्वेता! जब तक हमारे भारत में तुम-सी पवित्र एवं विदुषी कुमारियाँ हैं। भारत का सिर सदैव ऊँचा रहेगा।"

इसी समय रामधन नौकर ऊपर आया। और कुछ रुपया तथा नोट मनहर के आगे रखता बोला—"स्टेज पर झाड़ू देते मिले हैं। कल रात लोगों ने जीजी···पर फेंके थे।"

मनहर ने उन रुपयों को माथे से लगाते हुए कहा—"जनता ने बहिन के चरणों पर अपनी यह श्रद्धाञ्जली भेंट की है, गिनो तो कितने हैं।"

रामधन ने गिनकर कहा—"एक सौ तिरासी हैं मालिक? इनका क्या करना होगा?"

मनहर बोला—"गेहूँ मँगाकर गरीबों में बाँट दो रामधन!"

फिर खड़े होकर बोला—"तो जाता हूँ बहिन? रामधन को बाजार भेजना होगा। होटेल का सौदा मंगाना है, एक बात कर सकोगी बहिन?"

"क्या भैया?"

"होटल का सब हिसाब-किताब तुम रखो, तो मैं दूसरे काम देख सकता हूँ।"

"राजी हूँ।" कहती हुई वह हँस दी, मनहर नीचे चला गया।

आज होली है, ताराचन्द और बिज्जी छुट्टी में बृजपुर आये हुए हैं। तारी हर घर में बिज्जी को खोजता फिर रहा है, पर उसका कहीं पता नहीं लग रहा है। वह मुड़कर गाँव की चौपाल की तरफ चला ही था कि उसने देखा—छिपता हुआ बिज्जी एक ओर को जा रहा है। वह चिल्लाया—"बिज्जी, ओ बिज्जी।"

बिज्जी खड़ा हो गया। तारी पास पहुँचा, बिज्जी बोला—"अमां लानत है तुम्हारी अक्ल पर सन्तरी बादशाह! आखिर आफ़त क्या थी, क्यों चिल्ला रहे थे? हजार बार कहा, यार तारी···मुझे हल्ला-गुल्ला बिल्कुल पसन्द नहीं। देखो दिल पर हाथ रख कर, कमबख्त धड़कन कितनी तेज हो गई है। अगर मेरा घबराहट के मारे कभी हार्ट फल हो गया तो कौन जुम्मेवार होगा, कहो तो।"

"अमाँ तुम भी नाहक मर्द बन कर पैदा हुए, लड़की बन कर जन्म लेते, तो मुझ-से कुआंरे का घर तो बसता।"

"अमाँ जलालत है तुम्हारा घर बसाने वाले पर, चलो छोड़ो रास्ता, मुझे पारु के घर जाना है।"

"ओहो, क्या कहने? यार लोग होली खेलने के इन्तजार में चौपाल पर इकट्ठे हैं। यह पारु से रोमान्स फरमाने जा रहे हैं। सीधे से चले चलो, नहीं तो उठाकर ले चलूँगा। कहे रखता हूँ।"

"अमाँ···जलालत है तारी? कुछ तो ख़याल करो, मैं हर साल पहिला रंग सदा उसी से डलवाया करता हूँ। अभी आया जाता हूँ, तुम लोग शुरू तो करो जाकर।"

तारी गालियाँ देता हुआ बोला—"जाओ, पर याद रखना, पाँच

मिनिट बाद उधर हाज़िर न हुए, तो लड़कों से डोली डन्डा करवाकर ले चलूँगा। बन्दे का गुस्सा जानते ही हो।"

तारी चला गया। बिज्जी पारु के घर जाकर होली खेलने लगा। एक बज गया, तब तारी बोला—"दोस्तो! उस पाँच फुटे बिज्जी के पाँच मिनिट अभी तक खत्म नहीं हुए। तुम लोग यहाँ ही रहो, मैं उसे पकड़े लाता हूँ।"

तारी जब पारू के घर पहुँचा तो देखा, बिज्जी तरह-तरह के रंगों से सुसज्जित मुँह लिये तख़्त पर घुटनों पर मुँह रखे बैठा है। दोनों बाहों में घुटने लपेटे है। सामने पारु अपनी दोनों बहिनों के साथ हारमोनियम पर गा रही है—

होली आई रे कान्हा बृज के बसैया।

तारी यह सब देखकर जल-भुन कर कबाब हो गया। उसके साथ तख़्तपोश पर बैठता हुआ बोला—"अबे ओ कलयुगी कन्हैया? यह बताओ अब यहाँ से उठोगे भी या अगली होली तक यहाँ ही जमे रहोगे। या फिर घर वाले तुम्हें उठाकर बाहर फेंकेगे, तब दफ़ा होगे।"

"अमां जल्दी क्या है तारी? चलते हैं, यह चीज़ तो ख़त्म होने दो।"

"क्या कहने! अभी फरमाते हैं जल्दी क्या है। बच्चा हमारा क्या! कयामत तक यहाँ ही डटे रहो, पर उधर यार लोग तुम्हारी जान को रो रहे हैं।"

"अमां लानत भेजो कमबख्तों पर ज़रा चैन से नहीं बैठने देते।"

"ओहो क्या कहने? साहेब जादे यार लोगों पर लानत भेजते हैं, सीधे उठो, नहीं तो एक हाकी ऐसी धरूँगा, सारा रोमान्स ढेर हो जायेगा।"

पछताता-सा बिज्जी उठ खड़ा हुआ। बोला—"अच्छा पारु अब चलता हूँ।"

वह बोली—"रात का खाना यहीं खाना आकर, भूलना मत ?"

"अच्छा" कहता हुआ वह बाहर निकल आया। रास्ते में तारी बोला—"हो किस्मत के धनी, चाहे छैः महीने में जाओ इस घर, चाहे रोज, पर कदर तुम्हारी खूब होती है। हमसे तो कोई मुँहजली बात तक नहीं करती।"

"सन्तरी बादशाह ! तुम्हें अपने लम्बे तगड़े शरीर पर मान है। पर जनाब ? प्रेम यह सब नहीं देखता, इस रोमान्स की धाक अमरीका तक है। पर लानत है बृजपुर निवासियों पर, कमबख्त हमेशा मेरा मजाक ही उड़ाते रहते हैं।"

तारी हँसने लगा।

: ११ :

मुरला का पत्र पढ़कर शिवाला जमींदार साहेब के बम्बई वाले बंगले पर गई। मुरला ने उसे बड़े आदर से अपने साथ सोफ़े पर बैठाया। शिवाला बोली—"आपने बहुत अच्छा किया जो आगईं। कुँवर की तबियत आज कुछ खराब है, हास्पिटिल भी नहीं गये।"

मुरला ने व्याकुल होकर पूछा—"मुझे, क्या करना होगा शिवाला जीजी? उनके लिये मैं खुशी-खुशी अपने प्राण दे सकती हूँ।"

शिवाला ने स्नेह पूर्वक उसके हाथ को दबाते हुए कहा—"सो मैं जानती हूँ मुरला! कुँवर की हालत क्या है। वह आप दीनू काका के पत्रों में पढ़ती ही रही हैं। कल से उनके दिमाग़ में बैठ गया है, तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है। बस यही कह रहे हैं, मुरला की नब्ज़ बहुत कमज़ोर है। इसकी तबियत बहुत ख़राब हो गई लगती है। नहीं, मैं खाना नहीं खाऊँगा, जब तक मुरला बिलकुल ठीक नहीं हो जाती।"

मुरला की आँखें डबडबा आईं, बोली—"अब क्या करेंगी आप?"

"मैं···अब यह करूँगी कि आपके बुत को हटाकर, वहाँ आपको लिटा दूँगी। और जंचा दूँगी, आप अब बिल्कुल ठीक हैं। इसलिये उन्हें

खाना भी खा लेना चाहिये और हास्पिटल का काम भी करते रहना चाहिये।"

"मुझे वहाँ ही रहना होगा–"

"हाँ···मैं सोचती हूँ, इसमें आपको कोई ऐतराज़ तो नहीं होगा।"

"हरगिज नहीं, पर अपने पति से इजाजत लेनी होगी। आपको जल्दी तो नहीं है, इस वक्त वह बाहर गये हुए हैं।"

"मैं चलती हूँ बहिन! उनके आने पर आप बँगले पर आ जाना।"

"चाय तो पीनी होगी—"

गौरी माँ ने झटपट चाय बनवा दी, शिवाला चाय पीकर चली गई—

सन्ध्या को मुरला ने अपने पति से सब बातें समझा कर कहीं। वह हँसकर बोले—"पगली! घबराती क्यों है, वह ठीक हो जायेंगे। जाओ मुरला, शिवाला जिस तरह कहे, उसी तरह करना। ऐसा न हो कुँवर तुम्हें कहीं गोली मार दें। गुसैल तबियत है, क्या भरोसा ऐसे आदमी का।"

"आप चिन्ता न करें।"

कहती हुई मुरला मोटर में जा बैठी—रात को खाने से पहिले शिवाला जल्दी-जल्दी प्रभात के कमरे में आकर बोली—

"कुँवर! इस वक्त मुरला की तबियत कैसी है?"

प्रभात ने फीके स्वर से कहा—"मुझे तो कुछ फर्क नहीं लगता शिवाला! उसी तरह गुम-सुम पड़ी है। बुलाता हूँ, तो जवाब ही नहीं देती। कैसे समझूँ कि तबियत कैसी है।"

"आओ, चलकर देखें—दीनू काका तो मुझसे कह रहा था। बिटिया आज कुछ अच्छी है, पानी माँगा था।"

प्रभात उछलकर बोला—"क्या सच शिवाला?"

"अब चलिये न, ख़ुद ही चल कर देखते हैं।"

शिवाला प्रभात को लेकर मुरला के कमरे में गई और दोनों झुक कर मुरला की तरफ़ देखने लगे। शिवाला ने उसके माथे पर हाथ फेरा, मुरला ने आँखें खोल दीं। शिवाला बोली—

"कैसी हो बहिन ?"

मुरला ने धीमे स्वर से कहा—"अच्छी हूँ।"

फिर प्रभात की ओर देखा, रोकने पर भी उसकी आँखों से आँसुओं की दो धारायें बहकर, उसके तकिये को भिगोने लगीं। शिवाला चुपचाप कमरे से बाहर हो गई, प्रभात ने उसके दोनों हाथों को उठाकर कलेजे पर दबा लिया और कहा—

"क्यों रोती हो मुरला ? मुझे बताओ! तुम्हें कहाँ तकलीफ हो रही है।"

मुरला ने सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं कुँवर ? अब मैं ठीक हूँ, इस कमरे में मेरा जी घबरा रहा है, मुझे बाहर बाग में तुम नहीं ले चल सकते क्या ?"

प्रभात ने खुश होकर कहा—"क्यों नहीं ले चल सकता ? तुम्हारे लिये तो थोड़ा टहलना बड़ा जरूरी है मुरला! तुम तो खुद ही हर वक्त आँखें बन्द करके पलंग पर पड़ी रहती हो, लो उठो, मैं तुम्हें ले चलता हूँ।"

कहते हुए उसने सहारा देकर मुरला को उठा दिया। मुरला उसके कन्धे पर सिर रखे-रखे बाहर आई। बड़े प्यार से प्रभात ने उसे एक आराम कुर्सी पर लिटा दिया।

प्रभात ने शिवाला को पुकारा। शिवाला हाथ में तकिये और चादर लिये हुए आई। फिर तकिये मुरला के सिर के नीचे रख उसने चादर उसके पैरों पर ढक दी और कहा—

"कुँवर! एक बढ़िया पार्टी दो—तुम्हारी मुरला आज बिलकुल अच्छी हो गई है।"

प्रभात ने मीठे स्वर में कहा—"शिवाला ! यह सब तुम्हारी सेवा और मेहनत का फल है, नहीं तो मुरला के जीने की अब आशा ही कहाँ रही थी। मेरी मुरला ! सचमुच अच्छी हो गई।"

कहते हुए उसने मुरला के हाथ को अपनी मुट्ठी में दबा लिया। और उसके पास वाली कुर्सी पर बैठ गया। शिवाला बोली—"आप दोनों बैठो। मैं देखती हूँ, इस वक्त मुरला को खाने के लिये क्या देना चाहिए?"

प्रभात बोला—"अगर खाली दूध दो तो कैसा रहे?"

मुरला ने मुस्कराते हुए कहा—"नहीं शिवाला जीजी? मैं आप दोनों के साथ बैठकर खाऊँगी। दूध-दूध नहीं पीऊँगी।"

शिवाला ने प्रभात के मुँह की तरफ़ देखा। वह बोला—"हर्ज क्या है, साथ बैठने दो। आज तुम्हारा मरीज़ मुझे बहुत ठीक मालूम पड़ता है।"

"अच्छा तो मैं अभी आती हूँ।"

प्रभात बोला—"मुरला? तुम्हें कमजोरी तो नहीं लग रही न?"

"नहीं···पर कुँवर ! मुझे ऐसा हो क्या गया था?"

"अरे कुछ न पूछो, मेरा ही जी जानता है। जिस तरह ये दिन बीते हैं हमारे। तुम कई वर्ष से खामोश थीं, बस—आँखें बन्द किये चुपचाप पलंग पर पड़ी रहती थीं। कितना ही बुलाता था, पर जवाब नहीं देती थीं। अब तो मैं बहुत निराश हो चुका था। कल से तो ऐसा ख्याल करने लगा था कि अब तुम बचोगी ही नहीं। इस शिवाला ने बड़ी मेहनत की, बड़ी भली लड़की है—सच पूछो तो इसकी हिम्मत से ही तुम आज मुझे फिर मिल गईं।"

मुरला सिहर उठी, बोली—"मुझे कुछ याद नहीं पड़ता।"

ऐसी ही यह एक बीमारी होती है मुरला? सालों मनुष्य आँखें बन्द किये पड़ा रहता है। न चलता है, न फिरता है, न खाता है, न पीता है।"

"तब जीता कैसे है कुँवर?"

"ऐन्जक्शनों और दवाइयों के जोर से। जैसे तुम्हें मैंने जिलाये रखा।"

शिवाला ने आकर कहा—"आइये···भोजन कीजिये ?"

दोनों उसके साथ गये, मुरला को खाते-पीते बोलते-चालते देख कुँवर के मुँह पर जो प्रसन्नता के भाव आते थे, शिवाला उन्हें देख चकित हो रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे प्रभात को दुनिया की बादशाहत मिल गई है। एक हफ्ते के बाद मुरला बोली—"जीजी ! इन्हें बृजपुर चलने के लिये कहूँ ?"

शिवाला को लगा—जैसे प्रभात को मुरला उससे छीन कर ले जाना चाहती हो। उसका मुँह विवर्ण हो गया, आँखें झुका कर बोली—"तुम जो कहोगी, वही तो होगा मुरला ! कुँवर तो तेरे अन्धभक्त हैं बहिन।"

मुरला ने उसके पलंग पर साथ लेटते हुए कहा—"कैसे मानूँ यह बात जीजी ? अगर वह मेरी शिवाला जीजी से ब्याह कर लें मेरे कहने से तब तो मान सकती हूँ इस बात को।"

शिवाला ने उसे हृदय से लगाते हुए कहा—"भूलकर भी ऐसी बात जबान पर न लाना मुरला ?"

"तुम मुझे डराती हो जीजी ? अब कहीं कुछ न होगा—"

"अच्छा बता—कब जाना चाहती है तू उन्हें लेकर।"

"जब तुम आज्ञा दो।"

"आज पूछकर देखना —"

रात के आठ बजे, बाग में प्रभात बांसुरी बजा रहा था। मुरला और शिवाला उसके पास बैठी थीं। बांसुरी खत्म होने पर मुरला बोली—"नदी तट पर ठीक उसी जगह बैठकर तुम्हारी बाँसुरी सुनने को जी चाहता है कुँवर ? जहाँ हम लोगों का पूरा बचपन एक साथ बीता है। महाश्वेता मनहर की तुम्हें याद नहीं आती क्या ?"

"क्यों नहीं आती मुरला ? पर पहिले तुम्हारी बीमारी में मुझे कहीं आना-जाना नहीं सूझता था। बापू मुझसे मिलने आये थे, पर मैं उनके साथ माँ तक को मिलने नहीं गया।"

"मौसी जाने कितनी व्याकुल हैं तुम्हारे लिये, चलो कल चलते हैं। शिवाला जीजी भी चलेंगी हमारे साथ–"

शिवाला ने मुस्कराते हुए कहा—"मेरे बिना मुरला का काम नहीं चलता, देखते हो कुँवर।"

"तुमने उसकी जान जो बचाई है शिवाला, अच्छा तो कल हम तीनों चलेंगे।"

जमींदार गृहिणी ने प्रभात और मुरला को एक साथ अपने हृदय से लगा लिया। जमींदार साहब भी अन्दर आये, दोनों के सिर पर हाथ फेर जल्दी से बाहर चले गये। मन पूछ रहा था—

क्यों कैसा लगता है, जब अपने ऊपर बीत रही है। अपने लड़के का भी तुमने तब ख़्याल न किया था, बेचारी मुरला कैसी प्यारी लड़की है। राम राम···तब जाने मेरी मति को क्या हो गया था। परन्तु अब क्या फायदा, अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

पन्द्रह दिन की छुट्टियाँ पलक मारते बीत गईं, प्रभात और मुरला ने फिर नावों की दौड़ की–शिवाला ने देखा प्रभात को जैसे धीरे-धीरे कोई बात याद आ रही है। वह सुस्त होता जा रहा है, बांसुरी की स्वर लहरी फिर वियोग की तरंगें ले रही है। वायलिन का स्वर फिर व्यथित हो उठा है। नाव पर जब तीनों बैठे होते तो हँसते-हँसते प्रभात एकदम चुप हो जाता। मुरला मन ही मन भयभीत हो उठती, शिवाला सोच में पड़ जाती।

"शिवाला सोच रही थी, कल हम दोनों को बम्बई लौटना ही चाहिये, पर प्रभात चलेंगे तो सवाल उठेगा—मुरला? अगर कहा गया, मुरला तुम्हारी नहीं है, उसे अपने घर जाना होगा, तो फिर से वही दशा हो सकती है प्रभात की।"

ठीक इसी समय प्रभात ने दरवाजे पर आकर पूछा–"मैं अन्दर आ सकता हूँ शिवाला?"

"आओ कुँवर—"

प्रभात आकर चुपचाप उसके सामने बैठ गया, फिर बोला—"हमारी छुट्टियाँ खत्म हो गईं शिवाला ? हमें सुबह यहाँ से चल पड़ना चाहिये। पैकिंग कर लो।"

"सो कर लूंगी, तुमने मुरला से कह दिया कुँवर ?"

प्रभात के होंठों पर एक व्यथा भरी मुस्कान फूट पड़ी। बोला—"हाँ कह दिया। वह सुख-स्वप्न टूट गया शिवाला ! आज सोचता हूँ काश ! मेरा वह पागलपन कभी न जाता। विश्वास करके मानो—मैं उसमें बहुत सुखी था। आज फिर जैसे टूट-फूट कर सब बिखर गया हो···मुझ में तो अब न बटोरने की शक्ति रही शिवाला, न इन टुकड़ों को छोड़कर इधर-उधर हटने की।"

कहते-कहते प्रभात ने एक ठण्डी सांस ली। शिवाला बोली—"मुरला कहाँ है ?"

"मेरे कमरे में मेरी पैकिंग कर रही है। इस लड़की पर बापू ने इतना जुल्म नहीं किया शिवाला ! जितना कि मुझ पर-पर ! म···अच्छा जाता हूँ।"

वह चला गया, शिवाला ने भगवान् को उद्देश्य करके माथा नवाते हुए कहा—"धन्य हो भगवान् ! तुमने आखिर इनके होश-हवास लौटा दिये, और फिर···कोई गड़बड़ भी नहीं हुई। मुरला के प्रेम में बड़ी शक्ति है। सच कहता था दीनू काका।

रात को प्रभात अपने कमरे में वायलिन पर गा रहा था।

हम आस लगाये बैठे हैं,
तुम वायदा करके भूल गये।
या सूरत आके दिखा जावो
या कह दो हमको याद न कर !

मुरला दरवाजे पर खड़ी थी। उसका कलेजा फटने लगा। आज

उसी के कारण ऐसे स्वरूपवान युवक का जीवन इस क़दर नीरस और लँगड़ा हो गया। क्या यह उम्र इस तरह एकान्त में बैठकर रोने की है! हाय यह कैसी विवशता है। जिसके पैर में काटा चुभने पर मुझे लगता है कि मैंने उस जगह अपना कलेजा क्यों नहीं बिछा दिया था। सोते जागते का जो स्वप्न है मेरा, उसके लिये मैं कुछ नहीं कर सकती।

वह आगे बढ़ी, पैर की पायजेब की झंकार की आवाज़ से प्रभात ने आँखे उठाकर देखा, फिर कहा—"आओ मुरला, बैठो।"

वह उसके पास बैठ गई। प्रभात ने वायलिन मेज़ पर रख दी। मुरला बोली—"मुझे पत्र तो लिखा करोगे न?"

"बस यही एक चीज़ तो जीवन का सहारा रहेगी मुरला? लिखूँगा कैसे नहीं। दीनू पत्र ले कर आया करेगा, ताकि तुम फौरन उत्तर दो।"

दोनों के मुँह से एक साथ लम्बी सांस निकली। दोनों ने दोनों की तरफ़ देखा। प्रभात ने उसके हाथ को मुट्ठी में दबाते हुए कहा—"तुम···तुम वहाँ सुखी तो हो न···आज···गौरी माँ···कह रही थीं···तुम्हारे पति तुम्हें बहुत प्यार करते हैं, पर घुमक्कड़ तबियत के हैं। गाना सुनने के शौकीन हैं। तुम उन्हें गाकर क्यों नहीं सुनातीं मुरला? नृत्य भी तुम से अच्छा कोई क्या कर सकेगी।"

मुरला अपने प्रिय की यह सहानुभूति से भरी बातें सुन रुँआसी हो उठी, बोली—"उन्हें मिस बिब्बो, पन्ना वगैरह के गाने पसन्द हैं। कान पर हाथ रखकर जो गाती हैं, मुँह फैला फैलाकर—

मुझे मसीह के एहसान से बचा लेना।
तुम्हीं ने दर्द दिया है तुम्हीं दवा देना।

कहते-कहते मुरला प्रभात के घुटनों पर औन्धी हो गई और फफक-फफक कर रोने लगी। अपने इस दर्द को वह आज तक मन ही मन पीती रही है। कहती भी किससे, उसका था कौन, न माँ न बाप···न बहिन—एक कुँवर ही था, जिसे वह अपने हृदय की सारी बातें कह दिया करती

थी। सो वह दूर कर दिया गया था उससे फिर आज तक 'उसे कहाँ दर्द है' यह किसी ने पूछा भी तो नहीं था। प्रभात को यह पूछने में खुद कितनी चोट लगी होगी। इसे वह क्या समझ नहीं सकती, फिर भी उसने पूछा। क्यों? इसलिये कि वह जान लेना चाहता है, उसकी प्रियतमा सुखी तो है न?

मुरला के माथे पर वह चुपचाप हाथ फेरता रहा। मुरला रोती रही। सान्त्वना का एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकला। पर मुरला को उसकी इस खामोशी से जो सान्त्वना मिल रही थी, वह वही समझ सकता है, जिस पर ऐसा कुछ बीता हो। दूसरे दिन सुबह प्रभात और शिवाला बम्बई रवाना हो गये। मुरला सुचेतगढ़ लौट गई।

उससे ताराचन्द, बिज्जी मिलने गये। तारी बोला—"कमाल है जीजी? तुम तो जैसे जाकर, वहाँ जम ही गई थीं। रोज राह देखते थे हम लोग, रेवा जीजी से मिली थीं।"

"हाँ मिली थी, सब ठीक है। तुम्हारी पारु से भी मिली थी बिज्जी?"

बिज्जी हँसपड़ा, बोला–"मेरी कैसे जीजी। वह तो तुम्हारी सखी है।"

मुरला बोली—"क्यों रे तारी? मनहर के उस नाहरपूर वाले मुकदमे का क्या हुआ?"

"सो तो सब ठीक हो गया जीजी? पर रुपया काफ़ी खर्च हो गया। मनहर दादा ने भी छः सात रिश्वत खोरों को धूल चटा दी। होटेल की आमदनी से पच्चीस लड़कों की पढ़ाई का खर्च मनहर दादा देते हैं। और कई परिवारों को रुपया देते हैं। इस मुकदमें बाजी में कइयों से दुश्मनी हुई। मनहर दादा दबने वाले थे नहीं, किसी की परवाह नहीं की उन्होंने। इससे होटल की आमदनी में भी काफ़ी फर्क पड़ गया। दुश्मनों ने गवर्नमेण्ट के कान भरे। कहा, यह लड़का पक्का कम्यूनिस्ट है, अपने खर्चे से कई लड़कों को कम्यूनिस्ट बना रहा है। बस फिर क्या था?

पुलिस होटल में जब तब चक्कर लगाने लगी। इससे भी लोगों ने आना-जाना कम कर दिया।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? इस बार मनहर दादा ने देखा, जिन लोगों को वह सदैव रुपया देकर सहायता करते रहे हैं। वही कमबख्त कचहरी में आकर उनके खिलाफ गवाही दे गये हैं। उसका दिल टूट गया इससे, और अब वह अंधाधुन्ध शराब पीते हैं। जुआ खेलते हैं, राह चलती लड़कियों को छेड़ते हैं। चुटकले कसते हैं, गीत गाते हैं।"

मुरला ने तारी की तरफ़ देखते हुए कहा—"पुरुष सदैव चिढ़कर ऐसे छोटे काम क्यों करने लगता है तारी ? यह तो बदला लेना नहीं है, ढोंग भर है, इससे दूसरे का क्या नुकसान हो सकता है। अपनी ही आत्मा को गिराकर क्यों सोचते हैं लोग—मैं दूसरे से बदला ले रहा हूँ। तो मनहर फिर जुआ खेलने लगे।"

"मजबूरी से जीजी ? न जुआ खेलते तो उन लड़कों का खर्च कहाँ से देते ?"

बिज्जी बोला—"प्रभात दादा ठीक हो गये जीजी ?"

"हाँ भैया ! ठीक ही है।"

"शिवाला जीजी भी आई थीं।"

"हाँ।"

थोड़ी देर बाद दोनों उठ कर चले गये।

एकदिन मनहर थका-सा अपने कमरे में, एक आराम कुर्सी पर पड़ा गा रहा था—

दिल तुझे दिया था रखने को
तूने दिल को जला के रख दिया।
किस्मत ने देकर प्यार मुझे,
मेरा दिल, तड़पा के रख दिया।

चपरासी ने डाक लाकर सामने मेज़ पर रख दी। मनहर बोला—"ऐ···देखो वह, हमारी बहिन की नौकर है न वंशी···उसे उसे बुलाओ।"

चपरासी चला गया, मनहर डाक पढ़ता रहा। अचानक उसे मुरला का पत्र मिला, लिखा था।

मनहर !

बहुत दिन से तुम्हें नहीं देखा है। लिखो तुम मुझ से मिलने कब आ सकते हो ?

तुम्हारी !
मुरला !

उस पत्र को चूमकर उसने माथे से लगाया। फिर अपने कुर्ते की जेब में रख लिया और आप ही आप बोला—"तू बुलाये और मैं सोचूँ कब आ सकता हूँ ! मुरला ! यही तुमने मुझे समझा है। अच्छा ! हमें कोई भी न समझे···परन्तु···

वंशी सामने आई। वह सीधी बैठती बोली—"बहिन कैसी हैं।"

"अच्छी हैं मालिक।"

उसने अपना गिलास ख़त्म कर के रुमाल से मुँह पोंछा और कहा—"वह···मेरे बारे में क्या कहती हैं वंशी ?"

"कुछ···तो···नहीं मालिक।"

"तू···तू झूट बोलती है। मैं···मैं तुझे थप्पड़ मार दूँगा।"

वह सहम कर बोली—"वह···एक दिन···कह रही थीं—भैया बहुत पीने लगे हैं। और तभी जुआ भी खेलते हैं। उन्हें जुआ नहीं खेलना चाहिये वंशी ?"

"हूँ···तो ऐसा कहती थीं···जमादार कहता है। तू और बहिन दोनों सन्ध्या को रोज़ बाहर जाती हो। सच सच बता, कहां जाती हैं वह ?"

"काली माँ के मन्दिर, वहां जीजी पुजारी बाबा से ग्रन्थ भी पढ़ती हैं मालिक ! कथा, वार्ता सुनती हैं।"

"अच्छा···यह तो बड़ी अच्छी बात है। मेरी बहिन को खुश रखा—कर वंशी ? तेरे ब्याह में मैं अच्छी-अच्छी पोशाकें दूँगा।"

वंशी बहुत प्रसन्न हुई। मनहर बोला—"अब जा।"

वंशी ऊपर गई तो महाश्वेता बोली—"कहाँ चली गई थी रे ?"

वह बोली—"अरे जीजी ? काली माँ सहायक हुई, नहीं तो मालिक आज पीटने को तैयार हो गये थे।"

"क्यों।"

"उसी मुँह झौंसे दाढ़ी वाले जमादार ने शिकायत की है उनसे, सो पूछ रहे थे—"कहाँ जाती है बहिन !"

"तूने क्या कह दिया री।"

"जो अपने सिखा रखा था वही।"

"खूब ! चल अब झटपट चलें, आज देर हो गई।"

दोनों नीचे उतर कर पीछे के दरवाजे से होटल के बाहर हो गईं।"

उस दिन बादल घिरे हुए थे। महाश्वेता ने सुबह ही सुबह मनहर को बुला भेजा, आज बहुत दिन बाद दोनों में देखा-देखी हुई। मनहर ने झुक कर उसके पैरों पर हाथ रख माथे से लगाये। वह बोली—"यशस्वी हो भैया, बैठो यहां।"

मनहर चटाई पर बैठ गया और पूछा—"यह क्या बना रही हो महाश्वेता ?"

"तुम्हारे लिये सेवंई बना रही हूँ। तुम्हें बहुत भाती हैं न। तुम्हारा रसोइया रोज कहला देता है जीजी से कहो झटपट, सेवंई बना दें, मालिक दोनों टाईम पूछ लेते हैं।"

मनहर हंसने लगा, महाश्वेता सेवंई बँटते हुए शान्त स्वर से बोली—"वह मन्दिर के जेवर मुझे ला देने होंगे भैया ?"

मनहर चौंक उठा, उसका मुँह फक हो गया। बोला—"प्रयत्न करने में मैंने कोई कसर नहीं रखी, पर इस मुकदमें ने मेरी सारी मेहनतों पर पानी फेर दिया बहिन ! करूँ तो क्या करूँ ?"

"सो क्या मैं जानती नहीं हूँ भैया ! इसीलिये तुमने फिर जुआ खेलना शुरू किया है।"

मनहर ने गहरी सांस लेते हुए कहा—"मेरे भाग में ही जुआरी होना लिखा है महाश्वेता।"

"मैं तो इस बात को नहीं मानूँगी भैया ? तुम एक काम और भी तो कर सकते हो।"

"क्या काम ?"

"तुम्हारा गला कितना सधा हुआ और मीठा है। तुम फ़िल्मों में प्लेबैंक दे सकते हो। और लाखों रुपये कमा सकते हो इससे।"

"परन्तु मैं तो जानता नहीं किसी को, बिना जान-पहचान भी कभी किसी को कोई, कामयाबी आज कल के जमाने में मिली है बहिन।"

"तुम मेरे साथ चलना भैया ? मैं तुम्हें नाहरपुर स्टूडियो में ले चलूँगी।"

"तुम महाश्वेता।"

महाश्वेता ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। सेवंई धूप में फैलाने के बाद वह हाथ धोकर अपने कमरे में गई। फिर बारह हजार के नोट लाकर उसने मनहर के पैरों पर रख दिये। और कहा—"तुम्हारी आज्ञा के बिना ही मैंने ऐसा काम किया है भैया ? पर क्यों ? केवल तुम्हारा उतरा मुँह देखकर, मुझे इस बार क्षमा कर देना। फिर कभी तुम्हारी आज्ञा के बिना मैं कोई कदम नहीं उठाऊँगी।"

"यह···यह रुपया तुम्हें कहाँ से मिला बहिन ?"

"चित्रलोक वालों ने एक गुरु दक्षिणा पिक्चर बनाई है भैया ! उसी में देवदासी का रोल मैंने किया है। पिक्चर पूरी होने के बाद

तीस हजार वह लोग मुझे देंगे। कल मैं बारह हजार जेवरों को छुड़ान के लिये मैनेजर से माँग लाई थी।"

मनहर अवाक् महाश्वेता का मुँह ताकता रह गया। महाश्वेता उसके पास बैठती बोली—"बुरा मत मानो भैया! इससे मेरा बिगड़ क्या गया, कुल दो घण्टों के लिये जाती थी। खन्ना साहेब बिल्कुल देवता आदमी हैं। मुझे अपनी लड़की की तरह समझ कर स्नेह करते हैं। मैं क्या करती भैया? मेरी आत्मा ने यह किसी तरह स्वीकार नहीं किया कि तुम लोगों का पेट भरने के लिये जुआ खेलो, और मैं आराम से पलंग पर पड़ी-पड़ी रोटियाँ तोड़ूं। आखिर क्यों? मैं तुम्हारा हाथ बँटाना चाहती हूँ। तुम्हारी राह पर चलना चाहती हूँ, तब फिर इस तरह बैठे रहने से क्या होगा भैया? अच्छा अब उठो। नहा-धो लो फिर भोजन से निपटकर वह जेवर ले आओ।"

"जेवर मन्दिर में क्या मुझे ही पहुँचाने होंगे?"

"शायद यह ठीक न हो—तुम रेवा जीजी को दे देना, वह खुद सब प्रबन्ध कर लेंगी—"

"अच्छा" कहता हुआ मनहर रुपया लेकर नीचे उतर गया—

रात के वक्त मोटर साइकिल की आवाज से रेवा समझ गई कि मनहर आया है। चौके में बैठी वह सब्जी छौंक रही थी।

इसी समय काकी कहते हुए मनहर ने घर के आँगन में पैर रखा। रेवा बाहर निकलकर बोली—

"आइये! मौसी कथा सुनने गई थीं, अब आती ही होंगी।"

मनहर मोढ़े पर बैठता हुआ बोला—"तुम···तुम तुम क्या कर रही थीं रेवा?"

"सब्जी बना रही थी, चाय बना लाऊँ?"

मुस्कराकर वह बोला नेकी और पूछ पूछ—"कभी चाय से मैंने इन्कार किया हो, ऐसा तुम्हें याद पड़ता है क्या?"

रेवा भी हँस दी और चाय बनाने चली गई–रामा आई तो लड़के को आँगन में बैठा देख प्रसन्न हो उठी। मनहर ने उठकर पैर छुए। वह बोली—"लाख वर्ष तक जीओ बेटा ? कैसा निर्मोही हो गया रे ! महीनों हमारी सुध नहीं लेता ?"

मनहर ने उसे पकड़कर मोढ़े पर बैठा दिया—फिर उसके सामने बैठता बोला—"जानती तो हो काकी ? तुम्हारा बेटा अवारा है, किसी मतलब का नहीं है।"

"किसी मतलब का नहीं है यह मेरे दिल से पूछ बेटा ? या फिर उन लोगों से पूछ जिनके लिये तू इस तरह अपने को मिटाये दे रहा है।"

"उन्हीं के दिल की बात तो कह रहा है था काकी ? ऐसा होता तो वह लोग क्या मेरे ही खिलाफ़ गवाही देने कचहरी आते, तुम माँ हो। तुम्हारे दिल की बात ही निराली है।"

रेवा ने चाय और तले हुए पापड़ उसके आगे रख दिये, मनहर हँसकर बोला–"खैर यह तो मानना होगा काकी ? बेटा तुम्हारा चाहे जितना नालायक हो, पर बेटी सचमुच बड़ी सुघड़ है—

रामा दुखी होकर बोली–"पर भाग्य तो खोटा ही है इसका। अठारह वर्ष की होने आई, पर ब्याह का कहीं डौल नहीं लगता। इतनी जगह दौड़ धूप कराई, कमबख्त मुँह ही बहुत फैलाते हैं—करूँ क्या ?"

मनहर चुपचाप कुछ सोचता रहा, फिर बोला–"कितना रुपया मांगते हैं काकी ?"

"अरे मनहर ! इसका तो कोई हद हिसाब नहीं। चाहे जिस कीमत का वर खरीद लो, पर दो हजार से कम की तो कोई बात ही नहीं करता।"

रेवा उसका प्याला खत्म देख उसमें केतली से चाय भरती हुई बोली–"आप पहिले चाय पियें—"

फिर मौसी की तरफ़ घूमकर बोली—"तुम इतनी समझदार हो

मौसी ? तुम्हें कोई कैसे समझाये, इतने दिन बाद घर आये हैं, वह कैसे थे—क्या करते हैं, यह सो कुछ पूछा नहीं तुमने और व्याह का रोना लेकर बैठ गईं।"

रामा की आँखें भर आईं, बोली—"मेरे और कौन बैठा रेवा ? हँसूँ या रोऊँ, इसी के सामने तो।"

"काकी ठीक कहती हैं रेवा ? बुरा हूँ या भला, उनका ही तो बेटा हूँ। तुम तो अभिमानवश मुझसे कुछ कहती नहीं, और कहो भी क्या ? मैं किसी योग्य हूँ भी तो नहीं। यहां रहूँ, तब न तुम अपनी तकलीफ़ें मुझे जानने दो ! पर काकी—उन्हें तो मेरी सूरत देखते ही सब गुस्सा भूल जाता है। और तुम्हें शायद चढ़ आता है, क्यों रेवा ?"

रेवा मुस्कराती हुई रसोई घर में चली गई। मनहर बोला—"तुम बात पक्की कर लो काकी ? मैं रुपया दूँगा।" आराम की सांस लेती हुई रामा बोली—"अच्छा बेटा ? मैं कल ही शामपुर आदमी भेजूँगी। यह बोझ मेरे सिर से उतर जाये, तो समझो गंगा नहाऊँ।"

मनहर उससे लिपटता हुआ बोला—"हज़ार नालायक हूँ काकी ? पर तुम्हारी ज़रूरतें पूरी करने का दम रखता हूँ, इसका मुझे गर्व है—"

उसका मुँह चूमकर रामा ने उसे कलेजे से लगा लिया।

रात को जब मनहर चौके में बैठा भोजन कर रहा था, तो रेवा बोली—"मौसी के कहने में आकर कहीं सचमुच ही मेरा व्याह पक्का मत करवा दीजियेगा, मैं व्याह नहीं करूँगी।"

वह उसके सांवले मुख पर आँखें जमाता हुआ आश्चर्य से बोला—"व्याह नहीं करोगी—यह कैसी बात रेवा ! ऐसा भी कभी हो सकता ?"

शायद नहीं हो सकता, और इसीलिये मुझे भी व्याह करना हो तो मैं भी व्याह कर लूँगी, पर उससे जो व्याह में कौड़ी न ले।"

"ऐसा देवता हम कहाँ पायेंगे रेवा ?"

रेवा क्षण भर तक मौन बैठी रोटी बेलती रही, फिर उसे उठा तवे

पर डालती हुई बोली—"देवता को खोजने नहीं जाना पड़ता, मन में सच्ची निष्ठा होने से वह खुद ही प्रगट होते हैं।"

मनहर ने दुबारा उसके मुख पर दृष्टि घुमाई, फिर चुपचाप भोजन करने लगा।

फिर बोला—"मुरला प्रभात को लेकर बृजपुर आई थी?"

"हाँ···पन्द्रह-बीस दिन रहे वह लोग! कुँवर तो यहाँ मौसी से कई बार मिलने आये थे। मुझसे भी बहुत स्नेह करते थे। बड़े अच्छे हैं। अब उनके होश बिल्कुल ठीक हैं।"

"ईश्वर का शुक्र है। मैं अभी तक उनसे नहीं मिला।"

"आप निर्मोही हैं, आपके दिल में किसी के लिये दया नहीं है। पर वह तो जब तक यहाँ बैठते थे, आपकी ही बातें करते रहते थे।"

मनहर ने हाथ धो लिये। फिर कहा—

"रेवा? तुम्हें मेरा एक काम करना होगा?

"कहिये।"

"महाश्वेता के वह जेवर महात्मा को लौटा आने होंगे।"

रेवा प्रसन्नता से नाच उठी, बोली—"आप ले आये उन्हें! आह···मेरे दिल से बहुत बड़ा बोझ उतर गया। काश, आज महाश्वेता होती···मैं-मैं वह जेवर कल ही बाबा को पहुँचा दूँगी।"

"पर बाबा को यह मालूम न हो कि ये जेवर मैंने तुम्हें दिये हैं।"

"नहीं···यह मैं कुछ न मालूम होने दूँगी—"

मनहर चौके से बाहर निकल गया। फिर अपने पलंग पर लेटते हुए बोला— ···कल···कल मैं तुम्हें बहुत दिन बाद देखूँगा मुरला? मुरला··· मुरला···मेरी अपनी मुरला···और वह जैसे आसमान के सितारों के झुण्ड में उसका मुँह खोजने लगा।

मुरला अपने बाग़ में टहल रही थी, जब मनहर मोटरसाइकिल पर वहाँ पहुँचा। दोनों मुस्कराते हुए एक-दूसरे की तरफ़ बढ़े।

वह बोली—"आओ, मेरा पत्र न मिलता, तो तुम कभी आते क्या ?"

मनहर ने लज्जित होकर कहा—"रोज सोचता था चलकर मुरला को देखूँ, पर काम···फिर मुकदमा लगा रहा। जान मुसीबतों में थी मुरला। नहीं तो अब तक अनेक चक्कर लगाता।"

"तुम्हारी उन्हीं मुसीबतों की बात सुन सुनकर मैं घबरा रही थी मनहर ?"

उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ फेरते हुए वह बोला—"सब ठीक हो गया मुरला ? अब कोई चिन्ता मत करो।"

"अच्छा बताओ—रेवा और काकी तो मजे में हैं न ?"

"खूब ! तुम अपनी कहो, अब कैसी हो। दोनों बच्चे तो अच्छे हैं, जमींदार साहब कहाँ है ?

"आजकल तो यहाँ ही हैं—कहीं बाहर किसी से मिलने गये हैं। बिट्टी और नरसिंह भी उन्हीं के साथ गये हुए हैं, आओ अन्दर चलो।"

दोनों अन्दर गये, गौरी भी आकर मिली, फिर चाय मंगवाने के लिये चली गई। दोनों आमने-सामने कुर्सियों पर बैठ गये। मनहर बोला—"तुम बहुत बुझी-सी हो मुरला ? अब तो तबियत ठीक रहती है, फिर ऐसी क्यों हो ?

मुरला ने चन्द बातें कहीं। मनहर बोला—"इस थियटर वाली में उन्होंने अगर दो-तीन लाख बिगाड़ दिये हैं मुरला ? तो कोई बात नहीं। आगे से फिर उन्हें ऐसा मत करने देना। परन्तु सोच-सोचकर अपनी सेहत क्यों बिगाड़ रही हो।"

"वह मेरी सुनते नहीं मनहर, कभी नहीं सुनते। सदैव उल्टे-उल्टे बिजनेस करते हैं और पैसा बिगाड़ते जाते हैं। रुपये की मैं परवाह नहीं करती, पर गुस्सा मुझे जरूर आता है। और इसी से मैं तुम्हें ऐसी लग रही हूँ—चाहे कोई कितना समझाये, पर वह कभी किसी की नेक राय नहीं सुनेंगे। बस ! इसी से मुझे हर वक्त गुस्सा चढ़ता रहता है।"

"तुम्हें समझाना नहीं आता होगा मुरला ?"

"तुम समझाकर देख लो ।"

"मेरा तो उनसे परिचय ही नहीं है ।"

"परिचय मैं करा दूँगी । तुम्हें तो ऐतराज़ नहीं है ।"

"इसका मतलब ? लगता है इससे पहिले किसी को परिचय करने से इन्कार हो चुका है ।"

"हाँ···कुँवर को···वह कहते हैं, मुझे ईश्वर ने ही बहुत तोड़ा है मुरला ? अब तुम और तोड़ने की कोशिश मत करो । मैंने और सब-कुछ सहन कर लिया है, पर जिसके कारण इस अभागे की दुनिया बरबाद हो रही है, उन्हीं की ड्योढ़ी पर मैं सिजदा करने जाऊँ, यह मुझसे नहीं होगा ।"

मनहर चुपचाप सुनता रहा–मालती चाय ले आई । मनहर बोला–"बच्चे अभी नहीं आये मालती ?"

"आ गये हैं ।"

"और तुम्हारे मालिक ?"

"वह अभी नहीं लौटे साहब ! ड्राइवर दुबारा उनके पास मोटर ले गया है ।"

मुरला ने चाय का प्याला बनाकर उसके सामने रखा, और टोस्ट पर मक्खन लगाने लगी । मनहर बोला–"जाओ मालती ? दोनों बच्चों को बुला लाओ, कहो तुम्हारे चाचा आये हैं ।"

थोड़ी देर में नरसिंह और बिट्टी दौड़े आय । मनहर ने अपने दोनों तरफ़ उन्हें बैठा लिया और कहा–"यह दोनों तो बहुत बड़े हो गये मुरला ?"

वह टोस्ट की प्लेट उसके सामने रखती बोली—"बिट्टी छः वर्ष की हो गई मनहर ? और यह बदमाश सत्ताइस अगस्त को तीन वर्ष का हो जायेगा ।"

मनहर बोला—"अच्छा मैं तुम दोनों को क्या ला दूँ, बोलो ।"

बिट्टी बोली—"चाचा ! मेरी वर्ष गांठ तो सोलह जनवरी को होती है । तब आप मुझे एक कलम ला देना ?"

नरसिंह जल्दी से बोला—"वौशे में भी लिखता हूँ चाचा ? औशा कलम मुझे भी ला देना ।"

बिट्टी खिलखिला कर हँस पड़ी, बोली—"और चाचा ! इसे पान्द भी चाहिए ।"

नरसिंह उसे मारने के लिये दौड़ा—दोनों कमरे से चले गये । मुरला बोली—"कमबख्त लड़की क्या है, एक आफ़त है—नरसिंह अपनी उम्र के ख़्याल से अच्छा ख़ासा साफ़ बोलता है मनहर ? केवल ऐसा वैसा को औशा वैसा कहता है । और पान को पान्द कहता है—बस इन्हीं तीन शब्दों के लिये यह चुड़ैल उसे दिन भर रुलाती है—"

मनहर हँसने लगा—फिर बोला—"प्रभात कैसे थे । क्या-क्या तुम्हें करना पड़ा । वह सब तो मुझे बताओ मुरला ?"

मुरला ने सारी बातें उससे कहीं । मनहर बोला—"मेरी ज़रा सी बात से प्रभात की सारी जिन्दगी मिट्टी हो गई । ओह...ईर्ष्यावश जो पाप मुझसे यह हो गया है मुरला ! उसके लिए मैं अपने को कभी क्षमा नहीं कर सकूँगा—कभी नहीं ।"

"उन बातों को तुम भूल क्यों नहीं जाते मनहर !"

"कैसे भूल सकता हूँ मुरला ! अपने ही प्यारे मित्र के साथ ऐसा भारी विश्वासघात करके बैठा हूँ । मैं जानता हूँ तुम दोनों ने इस अभागे को क्षमा कर दिया है । पर इससे मेरा पाप तो कम नहीं हो सकता मुरला ।"

मुरला ने मीठे स्वर से कहा—"बचपन में हम लोग कितना ही लड़ते-भिड़ते थे । पर दूसरे ही दिन एक-दूसरे को क्षमा कर देते थे । प्रभात तुम से बिल्कुल नाराज नहीं है मनहर ! तुम उनसे जरूर मिलना ।

उन्हें बहुत खुशी होगी मनहर ! मेरे लिये इन्कार मत करना।"

"अच्छा मिलूँगा मुरला !"

और वह जाने के लिये उठ खड़ा हुआ। वह साथ उठती बोली—"भोजन तक तो ठहरते।"

"नहीं मुरला ! नाहरपुर काम है, फिर आऊँगा।"

मुरला ने हाथ जोड़ दिये। मनहर मोटर साइकिल पर बैठकर नाहरपुर की तरफ उड़ चला। रास्ते में सोच रहा था—"कैसी मीठी और प्यारी है मुरला...इसकी बातें कितनी मीठी हैं। इच्छा होती है सुनते रहो-सुनते रहो। काश ! ऐसा हो सकता !"

आरती खतम हो गई। दर्शनार्थ आये हुए लोग एक-एक करके मन्दिर से बाहर हो गये। अकेले महात्मा उस चाँदी की चौकी पर बैठे एक भजन गुनगुना रहे थे।

ऐसे वक्त धीमे कदमों से रेवा ने मन्दिर में प्रवेश किया। पहिले उसने देवता के चरणों पर अपना माथा रखा। फिर महात्मा के चरणों पर माथा रखती बोली—"मैं रेवा हूँ बाबा !"

प्रसन्न होकर उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"सो मैं जानता हूँ बेटी ! इस आसन पर बैठो।"

वह बैठ गई। वह बोले—"आज एकाएक भगवान पर तुम्हारी कृपा कैसे हो गई बेटी ! तुम तो सुना है, इन्हें मानती नहीं हो।"

"बाबा, मैं इन्हें नहीं मानती। यह सच है, पर इसी से क्या मुझे आप जैसे महात्मा के दर्शन करने की भी जरूरत नहीं है।"

"यह कैसी बात रेवा ! भगवान से ज्यादा भक्त को मान दे रही हो।"

"यह तो भगवान को भी करता रहना पड़ा है बाबा ! मैं इन्हें इसीलिए नहीं मानती कि इनका कभी कुछ...मैंने अपनी आँखों से नहीं देखा। जो देखती हूँ वह तो कुछ भी सन्तोषजनक नहीं है। इससे मन

में और भी शंका हो जाती है। सोचती हूँ, अगर हैं यह, तो फिर यह कैसे हो गया और क्यों? तब फिर इन्हें मानने को जी नहीं करता। और आपकी तो हर बात प्रत्यक्ष है बाबा! पूजा, निष्ठा, ज्ञान, सब कुछ। जो सामने देख सकती हूँ, उसी को सत्य मानती हूँ। जो सामने नहीं है उसे मैं सत्य नहीं मान सकती।"

महात्मा बोले—"बेटी! तुमने हिन्दू के घर जन्म लिया है। तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।"

रेवा बोली—"क्षमा करें बाबा! इस वक्त मैं आपकी एक चीज़ लौटाने आई हूँ।"

"वह क्या बेटी?"

"रेवा ने जेवरों की पोटली उनके पैरों के पास रख दी और कहा—"यह वही जेवर हैं जिन्हें लौटा देने का वह जमींदार को वचन दे गई थीं।"

महात्मा अवाक् बैठे रहे। फिर बोले—"महाश्वेता कहाँ है रेवा!"

रेवा चौंक कर बोली—"वह,...वह क्या अब तक जीवित होगी। अगर ऐसा होता तो क्या जमींदार उसे खोजने में इस तरह नाकामयाब रहते! यह जेवर तो वह आदमी दे गया है जिसे एक दिन महाश्वेता ने इन्हें दे दिया था और जिसका नाम न बताने के कारण उन्हें मन्दिर छोड़ना पड़ा था।"

"रेवा! क्या तुम्हें निश्चय है, महाश्वेता अब इस संसार में नहीं है।"

"ऐसा ही तो है बाबा! आपको क्या इसमें कुछ सन्देह होता है?"

"हाँ बेटी!"

"सो कैसे बाबा?"

"इसे तुझे कैसे बताऊँ बेटी! अभी तुमने कहा—जो सामने देखती हूँ, उसी को सत्य मानती हूँ। जो सामने नहीं है उसे मानने को मेरा जी

नहीं चाहता। पर मैंने तो होश सम्भालने के बाद से इन्हीं के चरणों के पास बैठकर अपना यह लम्बा जीवन बिताया है बेटी। पूजा-पाठ, व्रत-नियम में बंधे रहकर मैं इन्हें एकदम निकट देखता रहा हूँ। यह नहीं हैं, इसे मानने को मेरा मन कैसे तैयार हो सकता है। यह है तो जरूर...पर इनकी दया पर मुझे शंका होने लगी है। मैं विचलित हो उठा हूँ। इनसे पूछता हूँ किस अपराध पर उस पवित्र बालिका को अपना एक मात्र आश्रय यह मन्दिर छोड़कर इस तरह चले जाना पड़ा। उसका अपराध यही था कि इनके अगाध धन में से उसने थोड़ा-सा उठाकर इन्हीं के भूखे प्राणियों के आगे फेंक दिया था और उसने एक दिन मुझ से कहा था...बाबा! राजरानी राधा कहती हैं—लुटा दो मेरा धन, भण्डार, छत्र, सिंहासन सब लुटा दो। मेरी भूखी संतान का पेट भरो। अगर यह सच था रेवा! तो क्यों नहीं देवी राधा ने उस दिन महाश्वेता की रक्षा की।"

रेवा मुस्कराई, बोली—"आप त्यागी और महाज्ञानी हैं बाबा! आपके इस प्रश्न का उत्तर...मेरे लिये महा कठिन है। मैं तो आपसे इतना ही निवेदन कर सकती हूँ...आपके मन में उठी यह शंका...केवल मोह-वश है। तभी तो आज भी आपके हृदय में भगवान के प्रति वही श्रद्धा और भक्ति है और सदा रहेगी। महाश्वेता के प्रति आपके हृदय में ममत्व है, वही आज आपके हृदय को डांवाडोल किये है। आप देवता से पूछते हैं मेरी इतनी पूजा भक्ति के बाद भी आप मेरी पालिता पुत्री की रक्षा नहीं कर सके। क्यों! पर सोचिये तो बाबा! महाश्वेता क्या केवल आपकी ही थी, उनकी कोई नहीं क्या?"

महात्मा चौंककर बोले—"तुम सच कहती हो बेटी! महाश्वेता तो मुझसे अधिक उन्हीं की थी।"

"तब फिर क्यों सोचते हैं आप कि उसका अवलम्ब एक मात्र यही मन्दिर था। कब, कहाँ, किसलिए, कौन-सा ठौर-ठिकाना यह

दयामय बना देंगे, इसे पहले से क्या कभी कोई जान सका है बाबा ! कौन जाने, अगर महाश्वेता इस समय तक जीवित हैं, तो इस जगह से ज्यादा अच्छी एवं सुरक्षित जगह पर नहीं होंगी।"

महात्मा के हृदय के बन्द पट—जैसे किसी ने खटाक से धक्का मार कर खोल दिये हों। उन्होंने चौंक कर उस दुबली-पतली लम्बी सी सांवली लड़की के चेहरे की तरफ देखा—साक्षात् महामाया की मूर्ति-सी चमक उसके मुँह पर खेल रही थी, रेवा मुस्करा रही थी। महात्मा को रोमांच हो आया। उन्होंने चौंक कर देवी राधा की तरफ देखा। लगा—उनका मुँह भी बिल्कुल रेवा जैसा लग रहा है। वह भी उसी तरह मुस्करा रही हैं। बोले—"तुम धन्य हो बेटी ! कौन कहता है तुम नास्तिक हो, तुम साक्षात् महामाया हो। तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। मेरी आँखों पर मोह का पर्दा पड़ गया था। तुम्हारे सिवा किसमें शक्ति थी देवी ! जो इसे मेरी आँखों से दूर कर सकता।"

रेवा हँसी, बोली—"महामाया बनाकर आप मुझे प्रसाद से वंचित नहीं कर पायेंगे बाबा ? मैं जानती हूँ, प्रसाद में आप सब को बढ़िया कलाकन्द खिलाते हैं।"

महात्मा ने हँसते हुए एक केले के पत्ते, पर उसे बहुत-सी कलाकन्द दी। फिर कहा—"यह जेवर पहिले जमींदार के पास ले जाने होंगे रेवा ? बाद में मन्दिर के भण्डार में जमा होंगे।"

"यह क्या मुझे, करना होगा बाबा ?

"नहीं···मैं खुद लेकर जाऊँगा। देखना···इन्हें पाकर भी जमींदार उतना ही तूफान वर्षा मचाएँगे, जितना खोने पर मचाया था।"

"अब जाऊँ बाबा ?"

"हाँ, जाओ बेटी ?"

रेवा प्रणाम करके चली। महात्मा बोले—"हर नारी के रूप में तुम आ-आ कर, मुझे जब तब प्रेरणा करती हो देवी ? फिर भी रेवा

कहती है, तुम सत्य नहीं हो। कितनी भोली बच्ची है।"

जेवर! देखकर जमींदार बोले—"इसका मतलब है। महाश्वेता जीवित है, नहीं तो आजकल के जमाने में दस हजार की भारी रक़म के यह जेवर कौन लौटा सकता था देव।"

"परन्तु लाने वाले ने यही कहा—"महाश्वेता अब जीवित नहीं है।"

"वह झूठ बोलता है बाबा ? हमें महाश्वेता का पता लगाना चाहिये।"

"किसलिए सुरेन्द्र ?"

"यह आपको तभी मालूम होगा बाबा! अभी से जानकर क्या करेंगे ? उसके अपराध को प्रश्रय देना क्या ठीक है ?"

"उसने जब जेवर लौटा दिये हैं तब उसका अपराध ही क्या रह जाता है सुरेन्द्र! फिर उसने गरीबों के लिये यह जेवर दिये थे। इसलिये उसका यह अपराध क्षम्य है।"

"आपके पास इसका क्या सबूत है महात्मा कि महाश्वेता ने यह जेवर सचमुच गरीबों के लिये ही दिये थे।

"सबूत...हां, सबूत तो कुछ नहीं है, पर वह क्या कभी झूट बोल सकती है सुरेन्द्र ?

"उसकी जैसी उम्र है, अभी से उस पर विश्वास कर लेना ठीक नहीं है बाबा! बच्चा ही तो थी। आप ही सोचिये! अगर उसे गरीबों को अन्न बाँटना था तो आप से कहती, मुझ से कहती। हम एक सदावर्त उसे खुलवा देते। हम से कुछ न कहकर, चुपके से उस आदमी को यह जेवर दे दिये, जिसका फिर नाम तक बताना न चाहा। महात्मा! आप त्यागी हैं, स्त्री के चरित्र को क्या जानें ?"

महात्मा व्याकुल-से चौकी पर से उठ खड़े हुए और कल्याण हो बच्चा, कहते हुए झटपट जमींदार के कमरे से बाहर हो गये।

इधर नाहरपुर के स्टूडियो में प्रोड्यूसर सरलचन्द्र की डगमग फिल्म की शूटिंग चल रही है। इसमें मनहर ने अपने गाने दिये हैं। उसके गानों की अभी से बड़ी चर्चा हो गई है। घर-घर में उसके गाये रिकार्ड बजते रहते हैं। उसके पास ढेरों रुपया हो गया है। अब उसे जुआ खेलने की जरूरत नहीं है। रेवा के पास भी वह सात हजार रुपया रख आया है, ताकि उसे कभी किसी तकलीफ में न पड़ना पड़े।

अभी-अभी उसका एक गाना साउण्ड किया गया है। अपने स्टडियो के कमरे में बैठा वह अपनी थकावट मिटा रहा है। और व्हिस्की की चुस्कियां ले रहा है। सरलचन्द्र आकर बोले—"अरे वाह मनहर! तुम यहाँ आ बैठे हो, और मैं तुम्हें सब जगह खोजता फिरा।

मनहर ने उठकर उनके आगे एक कुर्सी सरकाई और उनके बैठ जाने के बाद स्वयं अपनी कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—"आइये, बैठिये! कहिए मेरे लिये क्या हुक्म है?"

"खास कुछ नहीं, सोचा तुम भला डगमग की शूटिंग क्यों नहीं देख रहे हो।"

"मुझे शूटिंग देखने में बड़ी घबराहट होती है। जरा से अभिनय के लिए आर्टिस्ट को कितनी मेहनत करनी पड़ती है। मेरा तो जी ऊबने लगता है। सोचता हूँ, मैं शायद ऐसा काम कभी नहीं कर सकता।"

"खूब कर सकते हो मनहर! तुम्हें तो जैसे भगवान ने हीरो बनाकर ही पैदा किया है। तुम्हारा लम्बा कद,...सुन्दर नाक नक्शा ...सब कुछ जैसे भगवान ने खुद अपने हाथ से गढ़ कर रखा है। फिर ऊपर से जो गले में मिठास और दर्द भरा है, हय...हय बस कमाल है।"

मनहर हँस पड़ा। बोला—"दर्द तो दुनिया भरती है साहेब! भगवान नहीं भरते।

कुछ सोचकर सरलचन्द बोले—"तुम्हारी बहिन मिस रोहिणी भी

कमाल की लड़की है। हमारी गुरुदक्षिणा में उनका देवदासी का रोल ऐक्सीलेण्ट रहा। तुमने तो उन्हें काम करने से ही मना कर दिया।"

"उसने मुझ से छिपकर आपकी पिक्चर में काम किया था खन्ना साहेब! उसे बचपन से ही इस बात का बड़ा शौक था, सो उसने पूरा कर ही लिया। अब और किसलिये? मैं तो इसे बिल्कुल पसन्द नहीं करता खन्ना साहेब! कि हमारी लड़कियां इस तरह स्टडियो में काम करती फिरें।"

"खैर, जब तुम्हें पसन्द ही नहीं, तब तो मजबूरी है। यह कहो तुम्हें डगमग की स्टोरी कैसी लगी?"

"गुस्ताखी मुआफ हो स्टोरी कैसी लगी यह सोच कर तो प्रोड्यू-सर लोग किसी स्टोरी को लेते नहीं। उनका मतलब तो सिर्फ़ इतना होता है, यह स्टोरी चवन्नी वालों को कैसी लगेगी, वह किस बात से प्रसन्न हो सकते हैं। इसी ख्याल से आप लोग अवाही-तवाही पिक्चरें बना कर पर्दे पर दिखा देते हैं। आम तौर पर ग़रीबों को खुश करने के लिये आप लोगों की फ़िल्मों में होता। एक अमीर ग़रीबों पर ज़ुल्म कर रहा है, आखिर एक ग़रीब नेता उसके तख्ते को उलट कर सब ठीक ठाक कर देता है। इस से भला क्या फायदा? अब तो न राजा रहे, न रईस, न ग़रीबों पर अब कोई ज़ुल्म ही कर सकता है। तब यह सब क्यों—अंग्रेज़ों की तरह नई-नई बातें दिखाइये, जिससे देश को कुछ फ़ायदा हो।"

सरलचन्द्र ने अपने सिर से पेशावरी तुर्रेदार पगड़ी उतार कर मेज पर रख दी। फिर अपने सफेद सिल्क के सूट पर एक सरसरी निगाह डालते हुए बोले—"कहते तो ठीक हो मनहर? पर भाई! पैसा तो यही पिक्चरें लाती हैं।"

मनहर बोला—ऐसा पैसा किस काम का जो ग़लत तरीक़े से लिया जाये। विदेश की पिक्चरों में यही सब होता है। वह क्यों पैसा देती हैं

आज भी देखिये अंग्रेजी फिल्म जब लगती है, तो कौन-सी निकली ऐसी जिसने पैसा न दिया हो। यह आपका ख्याल ही ख्याल है, सच पूछिये, तो इन छोटे बच्चों का भविष्य बनाने की जिम्मेदारी प्रोडयूसरों पर ही है। बच्चे मां-बाप और मास्टर की बात पर इतना ध्यान नहीं देते जितना पिक्चर की बातें देखकर वैसा ही करने को उत्सुक हो उठते हैं।"

"कहते तो ठीक हो। चलो जरा उधर चल कर सबके बीच में बैठो, क्या हर वक्त अकेले बैठे व्हिस्की चढ़ाते रहते हो, याद रखना मर जाओगे भैया, ऐसी ज्यादती शरीर ज्यादा दिन तक नहीं सह सकता।"

"इतना खुशनसीब नहीं हूँ खन्नासाहेब ? बेफिक्र रहिये।"

दोनों उठ खड़े हुए। जब मनहर होटेल में लौट रहा था। तब काफी अन्धेरा हो चुका था, रास्ते में वह एक मोड़ पर बिज्जी से टकरा गया, बिज्जी धक्का खाकर गिरते-गिरते बचा। बोला—"अमाँ लानत है, यह तो तुम हो मनहर दादा ? ऐसी भी क्या आँखें बन्द करके चलते हो ? जो अच्छा खासा मुझ जैसा इतना बड़ा आदमी नहीं सूझा तुम्हें ? अमाँ होश में नहीं हो क्या ?"

मनहर खीझकर बोला—"अमाँ होश तो है, पर तुम-सा चार फुटा आदमी क्या इस अन्धेरे में किसी को सूझ सकता है। कहाँ जा रहे हो यह मोहर्रमी सूरत लिये।"

"अमाँ जलालत है, क्या तारीफ़ की है तुमने मेरी ? अगर तुमने गाने में नाम पाया है तो यहाँ बिज्जी माथुर भी रेडियो स्टेशनों की जान है। कभी पाच मिनेट देर से पहुँचो तो अमरीका तक की तारें हिल उठती हैं, समझे, एक तहलका-सा मच जाता है। कभी विजय लक्ष्मी पण्डित के जाना पड़ता है, कभी पण्डित नेहरू के। फुरसत तो मुझे मरने की भी नहीं मिलती—आज तो छुट्टी लेकर निकला हूँ।"

"क्यों।"

"अरे इस अखबार को नहीं पढ़ा, जमींदार वृजपुर न जोजी

महाश्वेता का पता बताने वाले को पाँच हज़ार इनाम देने की बात लिखी है।"

मनहर का मुख विवर्ण हो गया, बोला—"तो तुम महाश्वेता को खोजने निकले हो।"

"हां···मुझे तो खुशी हुई है सिर्फ़ यह जानकर कि वह जीवित है।"

"तो उसे पकड़ना नहीं चाहते ?"

"अमां लानत है ऐसा ख्याल करने वाले पर ? मुझे कमीना समझा है क्या ?"

"आओ किसी रेस्त्रां में तुम्हें चाय पिला दूं।"

"क्यों तुम्हारे तो होटल चलते हैं ?"

"ठहरे वहीं हो क्या ?"

"तुमने कभी कहा ही नहीं मनहर दादा ? ऐसे कैसे चला जाता, मैं तो अपनी मौसी के ही ठहरा हुआ हूँ।"

"वहीं ठीक हो, रेस्त्रां में इसलिये ले चल रहा हूँ बिज्जी ! कि मुझे अभी लौट कर स्टूडियो जाना है। आज रात को मैं शायद होटल न जा सकूं भैया ?"

"अच्छा···तब तो ठीक है, आओ, मोतीमहल चलते हैं।"

"चलो।"

दोनों उस रेस्त्रा में जाकर चाय पीने लगे। मनहर बोला—"रेवा से सुना, तुम विजयलक्ष्मी पण्डित के निमन्त्रण को नामन्ज़ूर कर आये।"

"अमाँ जलालत है मुझ पर, योंही अपना भविष्य बिगाड़ लिया इस पारु के लिये। कैसे-कैसे मौके खो दिये। पारु के पिता-भाई भी मेरी इस धाक को मानते हैं। कई बार कह चुके हैं, श्रीमती पण्डित की बात न मान कर तुमने अच्छा नहीं किया, यह कोई मामूली बात नहीं थी।"

"पर सुना ! व ह लोग कहते हैं, हम अपने पारु का ब्याह किसी आफ़िसर से करेंगे।"

"अमाँ लानत है उस आफ़िसर पर। पहिली दोनों लड़कियाँ जैसे लाट साहेब से ही ब्याही हैं, जो यह आफ़िसर के जायेगी, बातें सुना करो दादा ?"

"पर भैया ? तुम क्या बिना मतलब उनकी ड्योढ़ी पर जूतियां चटकाते रहते हो। क्या कोई और तुम्हें लड़की नहीं मिलती।"

"कैसे नहीं मिलती, शकुन जीजी की ननद ही है एक तो।"

"शकुन जीजी, कौशिल्या दुर्गा जीजी, इन तीनों की तीन ननदें तो होंगी ही, किसी एक से कर डालो, छुट्टी हो।"

"क्या बौडम हो दादा? यह तीनों तो एक ही घर के तीन भाइयों को ब्याही हैं, और इनके एक ही ननद है।"

"तब उसी से कर डालो।"

"पर···पारु कहती है कि मैं।"

"खाक कहती है पारु ? तुम्हें खाली बनाती है, सब तुम पर हँसते हैं। हर काम तुमसे उनका सारा परिवार लेता है। भला तुम-सा मूर्ख चपड़ासी उन्हें मिलेगा कहां ?"

"अमाँ लानत है इस चपड़ास गिरी पर। कल ही अम्मा से जाकर कहता हूँ, मेरा ब्याह करवें।"

"शाबाश ! यह की है तुमने माथुरों जैसी बात। अच्छा यह तो बताओ तुम्हारे दिली दोस्त असल पेशावरी कहां हैं। वह सन्तरी बादशाह किधर है ?"

"पट्ठा इन्सपेक्टर हो गया है अब तो, मजे करता है, हाकी टीम में है। कभी मदरास, कभी बम्बई, कभी शिमले, कभी कहीं। मुझे पहिले पता होता तो मैं भी हाकीप्लेयर ही बनता।"

मनहर हँसकर बोला—"तब तो तुम्हें हाकी स्टिकों के बीच खड़े

देख, यह शनाख्त करना मुश्किल हो जाता, कि तुम हाकी न होकर बिज्जी माथुर हो।"

बिज्जी उठता हुआ बोला—"तुम तो मेरा मजाक उड़ाते हो दादा ? अच्छा चलो मौसी राह देखती होगी।"

दोनों अलग-अलग चले गये। घर जाकर मनहर उस अखबार को पढ़ने लगा। लिखा था—

"वृजपुर के मन्दिर की मुख्य देवदासी महाश्वेता कई वर्षों से लापता है। जो आदमी उनका पता-ठिकाना बतायेगा, उसे वृजपुर जमींदार पांच हजार रुपया इनाम देगें। देवदासी की उम्र अठारह वर्ष है, सुन्दर मुख, दुबला-पतला शरीर है, कद न बहुत लम्बा है, न छोटा।"

—सुरेन्द्र सिंह

मनहर अचेत-सा बैठा उन अक्षरों की तरफ़ ताकता रहा। सुबह वह ऊपर महाश्वेता के पास पहुँचा। उसके हाथ में अखबार देख महाश्वेता बोली—आखिर तुम्हारी नजरों से यह विज्ञापन चूक नहीं सका।"

"तो तुम इसे देख चुकी हो महाश्वेता ?"

"हाँ ! यह तो आज आठ दिन से बराबर निकल रहा है।"

"अब क्या करना होगा महाश्वेता ?"

"सोचती हूँ मुझे चुपचाप उनके पास चले जाना चाहिये ?"

"तुम बड़ी भोली हो बहिन ? जमींदार साहेब की यह चाल है। वह चाहते हैं, उस आदमी का पता लगाना जिसने उन्हें अब जवर लौटाये हैं। तुम्हारे जाते ही वह असल चोर को भाँप जायेंगे। शराबी, जुआरी, अवारा वह मशहूर ही है, तिस पर पुलिस इस मुकदमे में मुझ से पहिले ही जली पड़ी है। सो, आई, डी. में रिपोर्ट करते ही उन्हें पता लग जायेगा कि तुम अब तक कहां थीं और किसके पास थीं, फिर मेरे लिये पाँच वर्ष की पक्की जेल समझो बहिन ?"

"जल"

"हाँ जेल ! जाने में मुझे वैसे कोई इतराज भी नहीं है। पर इससे मेरी स्टूडियो की कमाई सदा के लिये बन्द हो जायेगी, और जो लड़के···परिवार उस कमाई से अपना काम चला रहे हैं, बेमौत मर जायेंगे।"

महाश्वेता का मुँह स्याह पड़ गया। सहमकर बोली—"तब···तो मैंने तुम्हें एक आफ़त में डाल दिया भैया ?"

"परन्तु इसका उपाय तो है बहिन।"

"क्या ?"

"कुछ दिन के लिये हम दोनों यहाँ से हट जाते हैं।"

"पर कहाँ।"

"गोवा···वहाँ जमींदार की पहुँच नहीं हो सकती, मामला दबने पर लौट आवेंगे।"

"यहाँ जब पूछेंगे सब, कहाँ जाते हो तो क्या कहोगे ?"

"कहूँगा—अपनी बहिन को माँ के पास बम्बई छोड़ने जा रहा हूँ। और कुछ दिन वहां रहकर लौटूँगा।"

"यहाँ का काम कौन देखेगा ?"

"चाँदपाल देख लेगा, वह समझदार लड़का है।"

"मैं राजी हूँ—कब चलना होगा भैया ?"

"परसों सुबह की गाड़ी से हम दोनों रवाना हो जायेंगे।"

"स्टूडियो वाले छुट्टी दे देंगे।"

"जरूर दे देंगे, खन्ना साहब हैं अच्छे आदमी ? तो अब चलता हूँ बहिन ! अभी बहुत काम करने हैं।

कहता हुआ वह नीचे उतर गया। महाश्वेता गुमसुम उसी तरह बैठी रही। बन्सी ने आकर कहा—"अरे जीजी ? स्नान नहीं करोगी क्या ?"

वह बोली—"बन्सी ! इधर तो आ।"

बन्सी उसके साथ-साथ अन्दर गई। आलमारी में सजे हुए कपड़ों पर उंगली रखते हुए महाश्वेता बोली—"बता तो, तुझे नाचने वाली कौन-कौन सी पोशाकें ज्यादा पसन्द हैं।" बन्सी ने तीन पोशाकों पर हाथ रखा। महाश्वेता ने तीनों निकाल कर उसे देते हुए कहा—

"जा ले जा, अपने ब्याह के बाद पहिना करना।"

"तुम क्या कहीं जा रही हो जीजी ?

"हाँ बन्सी ! मैं अपने भैया के साथ बम्बई अपनी मां के पास जा रही हूँ परसों।"

बन्सी उदास हो गई। महाश्वेता नहाने चली गई।

मनहर मुरला से मिलने चल दिया। घर में घुसते ही बोला—

"मुरला—"

चौंककर वह बोली—"अरे आओ, मनहर ! बैठो, इस कुर्सी पर बैठो।"

सामने बैठता वह बोला—"ओस पड़ने लगी है। और तुम अभी तक बाग में ही बैठी हो। जमींदार साहब कहां हैं।"

"बम्बई गये हैं, चाय पिओगे ।।'

"नहीं मुरला ! मुझसे तुम बैठी बातें करती रहो—" मैं कुछ दिनों के लिये बहुत दूर जा रहा हूँ। जाने फिर कब तुम्हारी मीठी बातें सुनने का सौभाग्य पाऊं।"

"कहाँ जा रहे हो ?"

"सो अभी नहीं जानता ! वहां जाकर लिखूंगा।"

चौंककर वह बोली—"नहीं जानते ? इस तरह भाग क्यों रहे हो। कब तक लौटोगे ?"

"सो भी अभी नहीं कह सकता मुरला।"

"काकी और रेवा को कौन देखेगा ?"

रेवा के होते काकी को कोई तकलीफ नहीं हो सकती मुरला ?

और रेवा को तो किसी की जरूरत है ही नहीं, फिर तुम खोज-खबर लेती रहना। कुँवर से बम्बई में मिलूँगा, उनसे भी कह जाऊँगा। दोनों का ध्यान रखेंगे।"

"मुझसे भी नहीं कहोगे मनहर ? कहां जा रहे हो ? और क्यों ?

"पत्र में सब लिखूँगा।"

"सो लिखना–पर रेवा के लिये तो कुछ करके जाते मनहर ! काकी कह रही थी, दो वर्ष इसका ब्याह और न हुआ तो गाँव वाले जाति से बाहर कर देंगे।"

"इसके लिये अब मैं क्या कर सकता हूँ मुरला ?"

"तब फिर और कौन करेगा मनहर ?"

"अरे पागल लड़की ? उसकी मौसी है काकी, वही जब उसे नहीं समझा पाई, तो मैं गैर···"

"जानते क्यों नहीं मनहर ? कभी-कभी कोई गैर ही अपनों से ज्यादा हो जाता है।"

मनहर उसका मुँह देखता रहा। वह बोली–"मेरा मुँह क्या देखते हो ? रेवा के ब्याह न करने का अर्थ तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आता ?

"इसमें समझना ही क्या है मुरला ? वह कहती है जो पैसा नहीं लेगा, उसी से मैं ब्याह करूँगी। भला मैं ऐसा वर कहाँ से लाऊँ।"

मुरला हँस पड़ी। मनहर सब कुछ भूल कर उस हँसी में खो-सा गया। वह बोली—"तै हो एक बार इसे भी आजमा कर देखते जाओ, मनहर ! इस बार बृजपुर जाकर कहना मिल गया है बिना पैसे के ब्याह करने वाला। सब असलियत तुम पर आप ही खुल जायेगी।"

"और अगर वह राजी हो गई तो।"

"ऐसी कच्ची गोलियां नहीं खेलती है वह, मैं रेवा को पहचानती हूँ मनहर–"

"पर फर्ज करो वह राजी हो गई तो क्या करोगी ?"

"वैसा वर खोज दूँगी उसे ।"

"वर तो कहां से खोज दोगी । यह कहो चुपचाप अपने पास से वर को रुपया दे दोगी । खैर तुम···जाने दो इस बात को, यह बताओ रेवा के मन की बात तुम कैसे समझ गईं ।"

"खुशामद करो, तो बताऊँ ।"

"चलो की खुशामद, अब बताओ ।"

"वह तुम्हें प्यार करती है । सिवा तुम्हारे और कभी किसी से ब्याह करने को वह राजी नहीं हो सकती ।"

अचकचाकर वह बोला—"कहती क्या हो । ऐसा कुछ होता तो क्या मुझसे छिपा रहता मुरला ।"

क्षुब्ध होकर मुरला बोली—"पुरुष इस मामले में बड़े मूर्ख होते हैं । किसी ठीक बात का अनुमान लगाना भी उनको नहीं आता । अगर ऐसा होता तो प्रभात समझ लेते, महाश्वेता उन्हें प्यार करती है ।"

मनहर चौंक कर बोला—"आश्चर्य है, नई-नई बातें कह रही हो । भांग-वांग तो नहीं खाई ।"

"नहीं ! थोड़े ही प्रयत्न से तुम दोनों के मन की बात जान सकते हो ।"

"तो अब चला मुरला ! बहुत दूर जाना है ।"

"भोजन करके जाओ न ?"

"देर बहुत हो जायेगी, बच्चे तो सो गये होंगे ?

"हां ! दोनों तुम्हारे दिये कलमों को लेकर कागज रंगते रहते हैं ।"

दोनों उठ खड़े हुए । मनहर बोला—"अच्छा ···खूब ठीक रहना, जीवित रहा तो फिर मिलूँगा ।"

मनहर की इस बात से मुरला के आँसुओं का बांध टूट गया । वह सिसककर रोने लगी । अपने रुमाल से उसका मुँह पोंछ कर उसने उसके दोनों हाथ अपनी मुट्ठी में दबाते हुए कहा—"छिः, रोओ मत मुरला ?

तुम्हें हँसती हुई देखकर जाना चाहता हूँ। तुम बड़ी समझदार हो, तुमने रेवा और महाश्वेता के हृदय की बात तो पढ़ ली। पर एक और किसी अभागे की बात शायद तुम नहीं जानतीं।"

"बहुत वर्षों से जानती हूँ उस बात को मनहर! तुम्हारे इस दुःख से मैं बड़ी दुखी हूँ। मेरे कारण तुम दोनों मित्रों का जीवन अपंग हो गया। काश मैं मर जाती, तभी अच्छा था।"

"नहीं, ऐसा नहीं" कहते हुए मनहर ने उसके हाथों को कस लिया, फिर 'अच्छा' कहने के बाद चला गया। मुरला का आंसुओं से तर मुखमण्डल उसके नेत्रों में घूमने लगा। बेसुध-सा वह बृजपुर की तरफ़ उड़ा जा रहा था। जब वह घर पहुँचा, तो रात के ग्यारह बज चुके थे। रेवा ने दरवाजा खोला और पूछा—"कुशल तो है, इस असमय में कैसे?"

और वह दरवाजे के पास से हट गई, मनहर ने अन्दर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया, और बोला—"तुम्हारे लिये खुशखबरी लाया हूँ रेवा! इसीलिये समय-असमय का ख्याल किये बिना भागा चला आ रहा हूँ। मेरा एक धनी मित्र बिना पैसा लिये तुमसे ब्याह करने को राजी हो गया है।"

मनहर ने देखा, रेवा का सांवला सुन्दर मुँह श्रीहीन हो गया है। रेवा झटपट आगे चल दी, मनहर साथ जाता बोला—"काकी तो सो गई होंगी, उन्हें भी तो खुशखबरी सुनानी होगी।"

रेवा घूम पड़ी उसकी तरफ़, और कड़े स्वर में बोली—"नहीं! उनसे इस सम्बन्ध की कोई बात आप नहीं करने पायेंगे?"

"सो क्यों रेवा?"

रेवा ने उसके कमरे का दरवाजा खोलते हुए कहा—"आपको उन्हें दुःखी कर के मिलेगा क्या। कहिये तो!"

मनहर अन्दर जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। रेवा ने तमाम खिड़-

कियां खोल दीं। फिर उसका पलंग ठीक से बिछा दिया, और पूछा—"भोजन बनाऊँ ?"

"नहीं इस वक्त कुछ नहीं खाऊँगा, बहुत देर हो गई है।"

"तो चाय बनाये लाती हूँ।"

मनहर ने हाथ की घड़ी की तरफ़ देखते हुए कहा—"साढ़े ग्यारह बज गये हैं रेवा ? इच्छा नहीं होती, अब तुम्हें चूल्हा फूंकने के लिये कहूँ, सो चाय से भी छुट्टी दिये देता हूँ।"

रेवा बुझे स्वर से बोली—"मुझे छुट्टी देना तो आपके वश की बात नहीं है। इसलिये आप इस चिन्ता को छोड़ ही दीजिये, आपकी बातों से लगता है, आपने भोजन भी अभी तक नहीं किया है। मैं चाय बनाने जाती हूँ, आप कपड़े बदलिये।"

रेवा चली गई, मनहर कपड़े बदल कर पलंग पर पड़ गया, उसकी आँखों में मुरला की आँसू भरी आँखें खुपी जा रही थीं। वह व्याकुल-सा करवटें बदल रहा था। रेवा चाय लेकर आ गई। मनहर उठ कर चाय पीने लगा, साथ में रेवा बेसन की बर्फ़ी के टुकड़े लाई थी, वह चुपचाप खाने लगा। वह बोली—"कौन है आपका वह मित्र जो इतना मूर्ख है। मुझे तो लगता है, आपने उसे लम्बी रक़म देने का वायदा किया है, पैसे की आपको अब क्या कमी है।"

"सो कैसे दे सकता हूँ रेवा ? तुमने जो सौगन्ध खाई हुई है। यह मेरा मित्र बड़े अच्छे विचारों का है। सुन्दर और धनवान है, अब तुम्हें इनकार नहीं करना चाहिये, ऐसा वर रोज रोज नहीं मिलता रेवा ?"

"यही तो सोच रही हूँ मैं—रोज-रोज भी कोई वर खोजता है, मैं ब्याह नहीं करूँगी। आप अपने मित्र से कोई बात पक्की मत कीजियेगा, नहीं तो पछताना पड़ेगा ? मैं नदी में कूद पड़ूँगी।"

मनहर ने तिपाई खिसका कर अपने को बिस्तर पर लुढ़का दिया,

फिर बोला—"मैं एक वर्ष के लिये लंका जा रहा हूँ रेवा ? सोचा था, यह रिश्ता तय हो जाता तो काकी की चिन्ता तो मिट जाती ?

"लंका···वहाँ···क्या करने जा रहे हैं ? मुझे नहीं बतायेंगे आप।"

"रेवा ! मैं उसी मन्जिल पर बढ़ा चला जा रहा हूँ जहाँ से अगर असफल हुआ तो लौट कर तुमसे राह पूछने की बात है। तुम्हारा तो दावा है न···एक मदहोश को राह बताना तुम्हारे लिये आसान बात है।"

रेवा ने सूखे स्वर से कहा—"सो तो है ?"

क्षण भर तक दोनों चुप रहे। फिर रेवा बोली—"उस मन्जिल से मुझे पत्र लिखने में तो कोई नुकसान नहीं होना चाहिये।"

"नहीं ! कोई नुकसान नहीं है रेवा ? मैं तुमको पत्र लिखूंगा—जाओ, अब सो रहो, एक बज चुका है।"

रेवा झूठे बरतन उठाकर कमरे से बाहर हो गई।

: १२ :

बम्बई पहुँचकर मनहर महाश्वेता को साथ लेकर 'सेण्ट इन्थना' नाम के जहाज से गोग्रा के लिए रवाना हो गया। जहाज पर उनकी बहुत इज्जत थी। क्योंकि वह दोनों फस्ट क्लास पैसेन्जर थे।

महाश्वेता ने जहाज के चलते ही सवाल किया—"हम गोग्रा कब पहुँचेंगे भैया ?"

मनहर बोला—"पूरे चौबीस घण्टे बाद।"

महाश्वेता केबुन के अन्दर चली गई। मनहर डैक्स पर पड़ी एक आराम कुर्सी पर पड़ गया। जहाज के केप्टन की लड़की के कमरे में रिकार्ड बज रहा था।

सीने में सुलगते हैं अरमां
आँखों में उदासी छाई है।
यह आज तेरी दुनिया से
हमें तक़दीर कहाँ ले आई है।।

मनहर व्याकुल हो उठा। मुरला का आंसुओं से तर मुखमण्डल उसकी आँखों के सामने आ गया। एक ठण्डी साँस उसके मुख से निकल गई।

उसके केबुन के सामने इन्टर क्लास पैसिन्जर फ्लोर पर बिस्तर लगाये बैठे गप्पें हाँक रहे थे। उनमें ज्यादातर गोयनीज ही थे। आज उनका कोई त्योहार था। जहाज को भी सजाया जा रहा था। सन्ध्या के बाद सब लड़के-लड़कियाँ खूब सज गये। फर्श पर से बिस्तर

उठाकर एक तरफ़ रख दिये और नाच करने के लिये उसे साफ़ करवाया गया। मनहर ने देखा लड़के एवं लड़कियाँ विस्की की घुसकियाँ लगा रहे हैं। महाश्वेता ने भी अपने केबुन की खिड़की से लड़कियों को बोतल मुँह से लगाकर विस्की पीते देखा।

रंग जमने पर उन सब ने नाचना गाना शुरू कर दिया, एक लड़की ने अपने भाई से कहा—"मिस्टर मनहर को भी विस्की आफर करो भैया ?

उन लोगों की जिद्द से मनहर ने गिलास ले लिया। फिर सहमी हुई आंखों से महाश्वेता की खिड़की की तरफ देखा—महाश्वेता ने मुस्कराकर खिड़की बन्द कर दी। मनहर बेखटके पीने लगा।

कई लड़के-लड़कियाँ उसके पीछे पड़ गये।

"अपने देश का कोई गाना गाओ मिस्टर मनहर! मनहर एक गीत गाने लगा—

किस्मत बिगड़ी दुनिया बदली
कब कौन किसी का होता है।
वह दिल को चोट लगाता है
जो दिल का प्यारा होता है॥

गाना समाप्त होने पर सबने तालियाँ पीटीं —

जब तक भोजन का घण्टा नहीं बजा मनहर को उन लोगों ने नहीं छोड़ा।

भोजन के समय उसने अन्दर जाकर कहा—"तुम इस समय क्या खाओगी बहिन।"

"मुझे भूख नहीं है भैया, मैं कुछ नहीं खाऊँगी।"

"मैं जानता था जहाज पर तुम अन्न कभी न खाओगी। इसीलिये इतने फल लाया था। मैं खाना खाने जाता हूँ, तुम फल खाओ।"

कहते हुए उसने टोकरा खींचकर उसके आगे कर दिया।

महाश्वेता खाते-खाते सोचने लगी–आह···भाई का प्यार भी कितनी भारी चीज है। मेरे भाई-सा भाई हर लड़की को नसीब हो—मनहर भैया—तुमने मुझे बता दिया है दुनिया में भाई-बहिन के प्यार से बढ़ कर अमूल्य चीज और दूसरी कोई नहीं। रात जोर से पानी बरसने लगा। ठण्डी हवा के झोंके ने महाश्वेता की नींद तोड़ दी। उसने चौंक-कर घड़ी की तरफ देखा–ढाई बज रहे थे। मनहर अपने विस्तर पर नहीं था। वह उठकर बैठ गई, सोचने लगी —

इस तूफान में भैया बाहर क्या कर रहे हैं, देखूं।

बाहर निकल कर देखा–ठण्डी हवा जैसे बदन की हड्डी में खुभी जा रही हो। डैक वाले पैसिन्जर कम्बलों में मुंह छिपाये पड़े थे। थोड़ा आगे बढ़ी, देखा तो मनहर उसी तरह बिना कुछ ओढ़े आराम कुर्सी पर पड़ा है।

क्षण भर तक वह चुपचाप उसके सुन्दर मुंह की तरफ ताकती रही, फिर आप ही आप बोली —

यही वह शराबी, जुआरी, अवारा मनहर है। अपने को मिटाकर दूसरों को बनाने वाला। एक दिन मैं जरा-सा काम आ गई थी और न भी आती तो क्या? वह इसी तरह सबके लिये मिटने को तैयार कब नहीं रहे। घर-द्वार, नाम-वेश सब को छोड़कर चुपचाप मेरे साथ हो लिये। क्यों? केवल इसलिये कि मेरे और कोई न था जो इस समय आड़े आता। लोग कहते हैं मां जाया भाई ही इतनी ममता, प्यार कर सकता है। मनहर भैया तब तो उससे भी बढ़ गये हैं।

उसकी आँखें नम्र हो गईं। पास जाकर उसने बड़े स्नेह से निस्सं-कोच मनहर के माथे पर हाथ रखा। वह हड़बड़ाकर जाग गया बोला —

"तुम महाश्वेता, क्या बात है जाग क्यों गईं?"

वह बोली—"सर्दी से मेरी नींद टूट गई भैया? देखा तो तुम

बिस्तर पर नहीं थे। डरकर बाहर चली आई, वहाँ अगर मेरा कोई गला घोट दे तो ?"

"पगली, मैं खिड़की के पास ही तो पड़ा हूँ। जाओ सो रहो। कहीं कुछ न होगा।"

"ऐसी ठण्डी हवा में पड़े हो, ईश्वर न करे कहीं बीमार पड़ गये तो···तो यहाँ परदेश में मैं···मैं क्या करूँगी भला।"

कहते-कहते उसका गला भर आया। मनहर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और बोला—"अरे रो क्यों रही हो बहिन ? लो अन्दर ही चलता हूँ। बाबा चलो।" दोनों अन्दर चले आये।

सुबह चार बजे जहाज हार्बर पहुँचा और ठहर गया। महाश्वेता ने उठकर खिड़की से समुद्र की छाती पर थिरकते हुए अनेक जहाजों एवं स्टीमरों को देखा।

जब जरा दिन चढ़ गया तब जहाज पंचम के सीपोर्ट पर जा लगा। वहाँ से टेक्सी करके दोनों भाई-बहिन मडगांव पहुँचे। पहिले मनहर एक डाकबंगले में जाकर ठहर गया, फिर इधर-उधर घूमकर उसने एक सुन्दर घाटी पर बने छोटे से खूबसूरत बंगले को किराये पर ले लिया और उसी शाम को सामान के साथ महाश्वेता को वहाँ ले आया। एक नौकर मिल गया, नाम था मौजीराम। खाना बनाता था। मनहर ने कहा—मेरी बहिन के लिये एक लड़की की भी जरूरत है, जल्द तलाश करके लाओ। वह उसी वक्त जाकर अपनी लड़की गुरबी को ले आया।

दूसरे दिन उन दोनों को साथ लेकर महाश्वेता ने सारे बंगले को ठीक से सजा लिया। फिर रसोई घर, भण्डार घर में भी जरूरी चीजें रख दीं। उसके बाद स्नान करने के बाद वह अपने इष्ट राधेश्याम के पास गई। एक छोटे से घर को उसने पूजा घर बना लिया था। उसके चरणों में माथा रखकर बोली—"भाई के घर में हूँ। बड़े सुख से हूँ। इससे बड़े सुख की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती। पर देव ! क्या मेरा भैया

सदा इसी तरह उदासीन, सन्यासी बना फिरता रहेगा। नहीं···सब बहिनें चाहती हैं, भाई गृहस्थी करे, सुख से रहे। अपने स्वार्थ के लिये किसी बहिन ने भाई के लिये ऐसी अकाँक्षा नहीं की कि वह अकेला मेरा ही रहे, मैं भी नहीं करूँगी। मेरा ठौर-ठिकाना अपने चरणों में बनाओ प्रभु···मेरे भैया को छुट्टी दो, मेरे भैया को संसारी बनाओ।"

और उस वक्त वही भैया बाग में पड़ी आराम कुर्सी पर पड़ा सोच रहा था। मन तू रो क्यों रहा है। मुरला के लिये? मुरला···वह तो तेरे रोम-रोम में है। यह तो कोई दूरी नहीं। जो वस्तु मन में है, उसके लिये इतनी तड़पन क्यों···और महाश्वेता···उसे बहिन कहता है। यह सम्बन्ध अटूट एवं पवित्र है, कैसी प्यारी बहिन है। मेरे लिये अपने को किस मुसीबत में फँसा लिया है, अब तो मेरा सबसे पहिला कर्तव्य अपनी बहिन के लिये है।"

और वह सिगरेट पीने लगा।

: १३ :

भोजन महाश्वेता अपने हाथ से बनाती, फिर यत्न से सामने बैठा-कर मनहर को खिलाती-पिलाती। उसके थोड़ा कम खाने पर रूठ जाती, झगड़ा करती, मनहर फिर उसे मनाता, बड़े सुख से यह दिन बीते चले जा रहे थे। एक दिन महाश्वेता बोली—"दिन भर पेड़ के नीचे पड़े रहते हो भैया! यह तो ठीक बात नहीं।"

"तब फिर क्या करूँ बहिन!"

"क्यों घूमा-फिरा करो, पास-पड़ौस में जान-पहचान कर लो। मौजीराम कहता है, हमारे घर के पास ही एक बड़ी क्लब है, वहाँ के मेम्बर बन जाओ।"

"अच्छा बन जाऊँगा।"

"नहीं! अभी जाकर बनना होगा, मैंने टेक्सी मंगाई है।"

"अरे यह लड़की तो अच्छी खासी पागल है, मैं इसे अब तक अक्लमन्द समझता रहा।"

मनहर के कन्धे पर कोट रखते हुए बोली—"जाओ देर मत करो भैया? फिर जल्दी लौटना भी।"

मनहर कोट पहिन कर बाहर चला गया। रात को भोजन कर रहा था, तब बोला—"कल सन्ध्या को तुम्हें रामनाथन के मन्दिर ले चलूँगा महाश्वेता? तैयार रहना, छै बजे टेक्सी वाला आयेगा, मैंने उससे कह दिया था। कहते हैं वह मन्दिर देखने योग्य है।"

"अच्छा चलेंगे, क्लब के मेम्बर बन गये ?"

"हाँ ! बन गया।"

"वहाँ···क्या···क्या होता है ?

"टैनिस···बैडमिण्टन, ताश वगैरह वगैरह—गाते भी हैं। एक गोयनीज लड़की उस क्लब में नौकर है।"

"क्या करती है ?"

"नृत्य।"

"ओह···बड़ी अच्छी है यह क्लब ! अब तुम्हारा जी लग जायेगा भैया ?"

"हां···कहते हुए वह हँस दिया। दूसरे दिन सन्ध्या को दोनों रामनाथुन के मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर के बूढ़े महन्त उन दोनों को प्रणाम करते देख बोले—"यशस्वी हो, लगता है तुम दोनों परदेसी हो बच्चा ?

मनहर बोला—"हाँ महाराज ! हम लोग बम्बई से आये हैं, यह मेरी छोटी बहिन महाश्वेता है।"

उन दोनों को आसनों पर बैठने का इशारा करते हुए वह बोले—"कुछ महीने रहोगे न बच्चा ?"

मनहर ने उत्तर दिया—"हाँ बाबा ? विचार तो ऐसा ही है। मेरी माता ने बचपन में ही मेरी इस बहिन को कृष्णार्पण कर दिया था, इसीलिये यह अब तक अविवाहिता है। मैं इसे सब तीर्थ कराने लाया हूँ, और इसी उद्देश से हम यहाँ रामनाथुन के दर्शन करने आये हैं।"

महन्त जी प्रसन्न होकर बोले—"ओह···तभी···मुझे यह बाला एक देवी मूर्ति-सी लगी बच्चा ! तुम यहां आया करो बेटी ! पूजा, कथा-वार्त्ता सुनने करने की तुम्हें यहां अच्छी सुविधा रहेगी। बोलो ! आया करोगी न बेटी ? मैं तुम्हें रोज सन्ध्या को मन्दिर की कार भेज दिया करूँगा।"

महाश्वेता मनहर का मुंह ताकने लगी। वह बोला—"क्यों नहीं आ जाया करेगी बाबा? यह बंगले में भी तो हर वक्त अपने पूजाघर में घुसी रहती है। भगवान् कृष्ण के सिवा इसे प्यारा ही और कौन है।"

महाश्वेता ने गम्भीर होकर कहा—"महात्मा के सामने झूठ नहीं बोलूँगी भैया? भगवान् के बाद तुम मुझे बहुत प्यारे हो।"

महन्त हँसते हुए बोले—"यह तो स्वाभाविक है बेटी? हजार हो—भाई-बहिन तो भाई-बहिन ही हैं।"

मनहर मुस्कराता हुआ बोला—"घर में मुझ से इतना झगड़ा करती है बाबा? और आपके सामने प्यार दिखा रही है, बड़ी चुड़ैल लड़की है।"

महाश्वेता भी हँस पड़ी। उठते हुए बोली—"तो अब आज्ञा हो बाबा?"

"अच्छा बेटी, कल तैयार रहना। मैं सन्ध्या को मोटर भेज दूँगा।"

महाश्वेता और मनहर ने बारी-बारी से उनके चरणों पर माथा रखा और आशीर्वाद लेकर विदा हो गये।

इधर बम्बई में एक दिन शिवाला ने जल्दी-जल्दी प्रभात के कमरे में आकर कहा—"तुम्हारे लिये खुशखबरी है प्रभात।"

उसने अपनी उदास, थकी हुई आँखें उसके मुँह पर लगाते हुए कहा—"जानता हूँ। रात वाला मरीज जिसका मैंने ओप्रेशन किया था अब ठीक है, अभी-अभी फोन पर खबर आ चुकी है।"

उसके सामने की कुर्सी पर बैठती हुई शिवाला बोली—"तुम्हारे इन मरीजों की खुशखबरी देने वालों की तो यहाँ कमी नहीं है कुँवर? जो मुझे भी यही राग अलापना होगा?"

"अच्छा तो तुम्हीं बताओ कौन से राग की सुर बाँधना चाहती हो।"

शिवाला क्षण भर तक उसके सूखे ओठों एवं उतरे हुए चेहरे पर आंखें जमाये बैठी रही, फिर बोली—"वहीं सुर, वही राग मुझे अच्छा लगता है कुंवर ! जिसमें तुम्हारे तन के तारों को झंकारित करने की ताकत हो।"

प्रभात ने उसके मुंह की तरफ देखा और कहा—"ऐसा राग और ऐसा सुर अब कहाँ है शिवाला !"

"नहीं है।"

"नहीं।"

शिवाला के हृदय को चीरती हुई एक ठण्डी सांस निकल गई। प्रभात सूखे स्वर से बोला—"क्या कहने आई थी शिवा ?"

"मुरला···मुरला आई है।"

उसने सोचा था, प्रभात प्रसन्न होगा। वह हँसा, शिवाला को चोट लगी। सोचने लगी—"यह कैसी हँसी है।" प्रभात बोला—"मुरला आई है, कहां है ?"

"यहाँ बम्बई में।"

"अच्छा ही है, मैं सुनकर बहुत खुश हुआ शिवा ?"

"परन्तु, ऐसा खुश होना क्या जिसे मुँह से कहने की जरूरत पड़े। जो सचमुच में खुश होते हैं उनको मुंह से कहने की जरूरत नहीं पड़ती, उनका चेहरा बता देता है।"

प्रभात ने मेज पर से वायलिन उठा ली, और उसके तारों को उमेठते हुए कहा—"तुम सच कहती हो शिवाला ? पर मुरला तो हर वक्त मेरे मन में है, मेरे ध्यान में है। फिर चौबीस घण्टे में उसके सुन्दर मुख को अपनी आँखों के आगे ही घूमता पाता हूँ, तब यह आज उसका आना मेरे लिये नवीन या आश्चर्यजनक कैसे हो सकता है, कहो तो।"

"इसका मतलब ? क्या तुम उससे अब मिलना नहीं चाहते ?"

प्रभात ने वायलिन पर गज फेरा और कहा—"नहीं चाहते···या चाहते हैं, इसे जानकर क्या करोगी शिवाला, जो हमारे रोम-रोम में बसा दिन रात हम पर हकूमत करता है, हमारे लिए जो इतना अपना है, वही दुनिया के सामने पराया है, उसकी तरफ आंख उठाकर देखना हमारे लिए पाप है। क्यों···क्योंकि वह अब पराई स्त्री है। मिलना चाहता हूँ, अगर ऐसा कहूँ, तो क्या अब वह मुझे मिल सकती है शिवाला ? बोलो।"

शिवाला निरुत्तर हो गई। प्रभात मुस्करा कर बोला— मेरे पागल-पन के दिनों में एक दिन तुमने जो मुरला मुझे भेंट की थी शिवाला ? मेरे लिये तो वही मेरी सब कुछ है। खामोश एकटक मेरी तरफ देखती हुई मुस्कराती रहती है। सचमुच में मेरी मुरला एक दिन मेरे लिये ऐसी ही थी।"

शिवाला ने एक ठण्डी सांस ली और कहा—"उसका फोन आया था कुंवर ? क्या कहूं उसे ?"

"उसे जवाब दो, अगर वह यहाँ आना चाहे, तो हमारे सर आंखों पर आये, पर मैं उसके घर नहीं जाऊंगा।"

"क्यों ?"

"क्योंकि उसके पति से परिचय करके, अपनी आत्मा को और चोट पहुँचाने की मेरी रत्ती भर इच्छा नहीं है। दूसरे उसके दोनों बच्चे अब बड़े हुए, समझ में नहीं आता, क्या कहकर मैं उन बच्चों को अपना परिचय दूंगा।"

शिवाला चुपचाप उठकर चली गई। प्रभात ने उठकर विस्की की बोतल से एक गिलास में विस्की डाली और एक सांस में पी गया फिर उसकी वायलिन कूकने लगी।

सन्ध्या को मुरला प्रभात से मिलने आई। प्रभात क्षण भर तक उसे देखता ही रह गया। सोचने लगा ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ रही मुरला की,

त्यों-त्यों सुन्दरता भी मोहक होती जा रही है।" फिर बोला—

"आओ बैठो मुरला! कैसी हो? मुँह तुम्हारा बहुत उतरा हुआ है।"

मुरला ने शिवाला की तरफ़ देखते हुए कहा—"क्यों जीजी? यह तो डाक्टरों का पेशा है न? अच्छे भलों को बीमार बनाकर उनसे पैसे लूटना।"

शिवाला बोली—"यह तो तुम हमारी बहुत बदनामी करती हो भई मुरला! अच्छा कुँवर मैं ज़रा हास्पीटल तक जाना चाहती हूँ।"

"क्यों?"

"आपके वह दोनों पेशेन्ट, जिनका आपने आज आप्रेशन किया था, उन्हें ऐन्जक्शन देने हैं मुझे।"

"डाक्टर पाल को फोन कर दो, वह कर देंगे ऐन्जक्शन।"

"यह कैसी बात है डाक्टर? मुझे खुद ही जाना चाहिये, अच्छा मुरला, कल भी आओगी न?"

मुरला उसके गले में बाहें डालती बोली—"जब तक यहाँ रहूँगी जीजी? रोज़ ही आऊँगी।"

उसके गालों पर हलकी चपत लगाती हुई शिवाला चली गई।

मुरला सामने की कुर्सी पर बैठ गई, और बोली—"मैं क्या सचमुच बहुत सुन्दर हो गई हूँ प्रभात?"

"मुझ से यह क्यों पूछती हो मुरला?"

"ज़रूरत है, इसीलिये चाहती हूँ इस बात को सच-सच जान लेना।"

"तब सुनो, तुम्हारी-सी सुन्दर चाहे और कितनी ही हों, पर तुम्हारी-सी आकर्षक कहीं नहीं है कोई।"

मुरला का मुँह उतर गया। प्रभात ने पूछा—

"अरे···क्या बुरा मान गईं।"

"नहीं।"

कहते हुए वह उठकर कमरे में टहलने लगी, फिर बोली—"तुम वासुदेव को जानते हो कुँवर ?"

"हाँ···क्यों नहीं। मेरे साथ ही तो पढ़ता था वहाँ।"

"उसे मैं···मैं···मार डालना चाहती हूँ।"

"क्यों ?"

"इसीलिये कि उसका पागलपन हद से ज्यादा बढ़ गया है और तुम जानते हो मैं ज्यादती कभी सहन नहीं कर सकती।"

"यह अच्छा नहीं होगा मुरला ? मैं उसे समझा दूंगा।"

मुरला ने बहुत से पत्र उसके आगे रखते हुए कहा—"कोई फायदा न होगा। तुम जानते हो कुँवर ? दुनिया में तुमसे ज्यादा मेरा अपना कोई नहीं। माँ, बाबा, भाई किसी का भी मुझे सहारा नहीं है। छोटी बड़ी हर मुसीबत में मैंने सदा तुम्हीं को अपने साथ देखा है। आज भी केवल इसीलिये तुम्हारे पास आई हूँ।"

प्रभात ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"क्या बात है मुरला ? इतनी बेचैन एवं परेशान क्यों हो ! उसने अगर कोई बदतमीजी से तुम्हारा अपमान किया है तो मैं उसका खून पी जाऊँगा।"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है कुँवर ? जो तुम्हें लड़ाई के मैदान में भेजने की जरूरत हो। यह सब तुमसे कहने का मतलब यही है तुम मेरे दिल के हर राज से वाकिफ रहो बस।"

"उसके बाद—"

"उसके बाद आज पूर्णमासी है। मैंने वासुदेव को वचन दिया था, आज के दिन मैं उसके साथ समुद्र की छाती पर नौका विहार करने चलूंगी। सो ठीक साढ़े आठ बजे मैं रेडियो क्लब के आगे जाकर इन्तजार करूँगी। वह नौका लेकर आवेगा।"

प्रभात ने उसके हाथ को छोड़ दिया और घबराकर कहा—"अगर···

अगर···उसने कोई······"मुरला ने आगे कहने नहीं दिया, कहा—"तब मैं उसे समाप्त कर दूँगी।"

"तुम कितनी भारी विपत्ति में अकेली जा रही हो मुरला?"

"नहीं, अकेली नहीं, तुम मेरे साथ होगे—मेरे दायें बायें।"

"मैं सचमुच तुम्हारे साथ चलूँगी। पर नहीं, ऐसा करने से वासुदेव चौकन्ना हो जायेगा।"

"तुम गौरी माँ से क्या कहकर आई हो मुरला?"

"कुँअर से मिलने जाती हूँ, यही।"

"हूँ, अच्छा जाओ, मैं भी पीछे-पीछे आता हूँ। डरो मत, दूर दूर ही रहूँगा। वासुदेव जान नहीं सकेगा।" मुरला चली गई।

इस बात को छै दिन हो गये। एक दिन प्रभात के बंगले के बरामदे में बैठा ताराचन्द चाय पी रहा था। शिवाला बोली—"बहुत दिन बाद दिखाई दिये इन्सपेक्टर?"

ताराचंद बोला—"मैं तो बम्बई और सुचेतगढ़ की दौड़ में ही रहता हूँ जीजी। जिस दिन यहां आता हूँ कदम बोसी के लिये जरूर हाजिर होता हूँ।"

प्रभात मुस्कराया। अखबार एक ओर रखते हुए बोला—"क्यों सन्तरी बादशाह! यह अखबारों में एक बड़ी अजीब बात का शोर है सुना एक नौजवान कई दिन से गायब है।"

तारी सिर पर हाथ रखता बोला—"दादा! बस इसी खबर ने हमारे होश उड़ा रखे हैं। कुछ विस्की का सहारा हो तो बयान करूँ?"

प्रभात ने शिवाला की तरफ देखा—उसने घण्टी बजाई। बेरा के आने पर विस्की लाने के लिये कहा—और बोली—"क्या बात है तारी? तुम तो पुलिस आफिसर हो। सब कुछ समझ गये होंगे। मौका पर गये ही होंगे।

"हाँ गया था न जीजी?"

प्रभात ने विस्की का गिलास उसके आगे रखते हुए कहा—"क्या समझे देखकर लम्बोदर त्रिपाठी ?"

तारी विस्की के कई घूंट पीने के बाद बोला—

"देखो दादा ? तुम भी यह तरह-तरह के नाम लेने लगे। उस कमबख्त रेडियो स्टेशन के सरदार बिज्जी माथुर ने मेरे यह नाम बिगाड़े हैं। अब तो इतने मशहूर हो गये हैं कि मुरला जीजी के दोनों बच्चे बिट्टी और नरसिंह भी मुझे मामा न कह कर सन्तरी बादशाह, लम्बोदर त्रिपाठी कहते हैं। मैं तो मारे गुस्से के काँपने लगता हूँ। पर करूँ क्या, वह बिज्जी तो अमरीका जा बैठा। गुस्सा उतारूँ तो किस पर।"

प्रभात हँसता हुआ बोला—"भई तारी ? बिज्जी को सब कहते थे गप्पी है, पर वह गप्प गप्प में ही अमरीका पहुँच गया। आखिर उसकी बातों में कुछ असलियत थी जरूर ?"

"मानते हैं दादा ! बेचारा जब तक बम्बई के जहाज से अमरीका के लिये रवाना नहीं हो गया। तब तक हम इसे गप्प ही समझते रहे। अब तो सुना वहाँ वह एक अमरीकन लड़की से शादी कर रहा है।"

प्रभात ने चौंककर कहा—"और जो यहाँ पारु से उसे प्रेम था, उसका क्या हुआ ?"

तारी ने गिलास खत्म कर चुटकी बजाते हुए कहा —

"जो कलियुगी प्रेमियों का होता है वही ? 'मैं तेरे लिये हूँ, गर तू मेरे लिए है'।"

शिवाला उसका गाना सुनकर हँस पड़ी, बोली—"चलो छुट्टी हुई। इस प्रेम की बक बक से बिज्जी की जान को आराम मिला। अब उनकी पारु के क्या विचार हैं ?"

"उसके भी बड़े नेक विचार है जीजी ? अगले महीने बड़ी धूम-धाम से शादी हो रही है। बहुत प्रसन्न नजर आ रही है"

"यह सब तो हुआ तारी ? अब बताओ तुमने उस लापता नवयुवक के बारे में क्या सुना ?

"जीजी ! दुनिया अजब गोरखधन्धा है। यहाँ तो यही रहता है। कभी लड़की गायब तो कभी लड़का। इस बार लड़का-लड़की दोनों गायब हैं।

प्रभात ने विस्की का गिलास खत्मकर मेज पर रखते हुए कहा—

"कमबख्त पुलिस का इन्तजाम दो कौड़ी का है शिवाला ?"

"खूब दादा खूब ! आखिर पुलिस वाले इसमें करें भी क्या ? कहिये तो, एक साहेबजादे आते हैं, बोट किराये पर लेकर चल देते हैं। उन्हें पुलिस रोक भी कैसे सकती है ? यही इस केस में है। शरद्-पूर्णिमा वाले दिन रात को आठ बजे के करीब उन्होंने एक बोट किराये पर ली और खुद डांड खेते हुए चल दिये। मल्लाह कहते हैं, रेडियो क्लब में इधर से एक खूबसूरत लड़की को उन्होंने उस नाव पर चढ़ते देखा। थोड़ी देर में समुद्र पर थिरकती हुई बोट मल्लाहों की आँखों से ओझल हो गई।"

शिवाला उत्सुक होकर बोली—"फिर।"

"फिर क्या जीजी ? फिर तो यह हुआ कि उन्होंने उस रात बोट वापिस नहीं पाई। सुबह तलाश करने पर मील भर दूर एक झाड़ी में अटकी वह बोट मिली। पर उस लड़के-लड़की का कोई निशान आज तक नहीं मिला।

प्रभात ने बड़े इतमीनान से सिर हिलाते हुए कहा—

"लगता है बेचारे दोनों ही खत्म हुए। अब नाहक ही हल्ला मचा-कर तुम लोग करोगे क्या ? सो मेरी समझ में नहीं आया।"

ताराचन्द ने अपने सांवले, लम्बे एवं पतले शरीर पर एक सरसरी निगाह डाली। फिर कहा—"हो हल्ला क्या हम मचाते हैं प्रभात दादा ? यह बदमाश जनता मचाती है। मल्लाह के बयान हैं कि मरने वाले के साथ

एक सुन्दर लड़की थी। बस! जनता जानने को उत्सुक है कि क्या राज है, क्या कहानी है अफ़सरों का कहना है कि लड़की भी साथ ही मरी होती तो रोना-पीटना केवल वासुदेव के घर ही न मचता। एक दूसरे घर में भी लोग रोते। आखिर वह लड़की कहाँ गई? ज़रूर वासुदेव को डुबाकर वह कहीं गायब हो गई है।"

प्रभात हँस पड़ा। बोला—"यह तो हुई अफ़सरों की बात। अब तुम अपनी कहो। तुम्हारी अक्ल क्या कहती है लम्बोदर त्रिपाठी!"

"फिर वही बात कही दादा! मुझे तो लगता है वह वासुदेव अकेला ही नौका विहार करने के लिए गया था। मल्लाहों ने केवल लोगों में सनसनी फैलाने के लिए उस सुन्दर लड़की का क़िस्सा बीच में लगा दिया। मैंने उन बदमाशों से कहा भी—"अमा, क्यों तुक्के जड़ रहे हो यार। इतना तो सोचो, तुम्हारी इस ज़रा सी तुकबाज़ी से पुलिस का क्या हाल होगा। पर वह कमबख्त कहाँ मानते हैं। बोले, नाहीं थानेदार जी नाहीं। हम झूठ काहे बुलबो। साँच कहित है। उनके साथ कौने बिटिया रहीं जरूर? गई कहाँ, सो नाहीं जानित। ऐसी रहें, बड़े बड़े बालखुले रहेन जानो साक्षात् लक्ष्मी जी होंय। आप लोगन से हम झूठ थोड़े बोल सकित है।"

"तब होगी कोई खोज निकालो।"

"सारा दिन इसी चक्कर में दौड़ा फिरता हूँ। पर वहाँ तो कोई लक्ष्मी जी न मिलीं! अच्छा जीजी! अब चलता हूँ।"

दूसरे दिन मुरला आई तो प्रभात ने कहा—"जब तक हमारी पुलिस में ताराचन्द जैसे इन्सपेक्टर हैं, तुम्हें कोई भय नहीं है मुरला? चाहे रोज एक खत्म कर डाला करो।"

मुरला हँस पड़ी, बोली—"वह पगला हाकीप्लेयर है। हत्या की बात क्या जाने?"

"नहीं मुरला ? अपन काम में काफ़ी दिलचस्पी लेता है, अब उसे तुम अनाड़ी नहीं कह सकतीं ।"

मुरला एक पत्र प्रभात के आगे रखती हुई बोली—"मनहर का पत्र है ।"

वह उत्सुक होकर बोला—"तुम्हारे नाम है मुरला ? क्या लिखता है । कहाँ है ? कैसा है ?"

"पढ़ कर देखो कुंवर ? सब मालूम हो जायेगा ।"

प्रभात ने पत्र पढ़ा, फिर उसे मुरला को लौटाते हुए बोला—"हम चारों में से मनहर ही सब से ऊँचा रहा ।"

"जो सिर्फ दूसरों के लिये जीता है, या जो जो कुछ भी करता है दूसरों के लिये ।"

एक बन्द लिफाफा प्रभात के आगे रखती वह बोली—"यह पत्र रेवा के लिये है । तुम्हें पहुँचाना होगा ? कैसी हैं काकी अब ?"

"पहिले से बहुत अच्छी हैं । मैं उन्हें 'कैलशियम' के ऐन्जक्शन दे रहा हूँ । आशा है दस-पाँच रोज में ठीक हो जायेंगी ।"

"शिवाला जीजी कहाँ है ?"

"रात को ड्यूटी है उसकी—हास्पिटिल चली गई है । मुरला ! तुम दिनों दिन कैसी होती जा रही हो, क्या कुछ बीमार हो ?"

"बीमार···नहीं तो क्या कुछ बीमार-सी दीखती हूँ ? मेरी शक्ल कैसी दीखती है, कुछ बता सकते हो कुँवर ? मुझे तो शीशे में लगता है जैसे हत्या की कालिख से मेरा रंग स्याह पड़ गया है ।"

"पागल हो तुम ? तुम्हारे दिमाग़ पर अभी तक उसका असर बाक़ी है । भुला दो इस बात को । कहीं कुछ नहीं होगा ।"

"तो क्या तुम समझते हो ? फाँसी के डर से ही मेरी ऐसी हालत हो गई है, छीः । तुम तो मुझे ग़लत न समझा करो कुँवर ? वासुदेव को मैंने गुस्से में आकर मार डाला क्या ? बस मन से मेरा यही झगड़ा होता रहता है ।"

"कुछ भी हो, मेरी सौगन्ध खाओ। फिर कभी ऐसी ग़लती न करोगी।"

मुरला कुर्सी से उतर कर प्रभात के पैरों के पास बैठ कर और उन पर हाथ रखती बोली—"इन्हीं की सौगन्ध खाती हूँ। फिर कभी इस तरह किसी को मार डालने की सोचूंगी तक नहीं। वासुदेव को इस तरह धोखे से मारना हरगिज़ ठीक नहीं हुआ कुँवर।"

"अभी तुम वापिस सुचेतगढ़ मत जाना मुरला?"

"क्यों?"

"वहाँ मन ही मन सोचती रह कर तुम जरूर पागल हो जाओगी।"

"अच्छा नहीं जाऊँगी। कुछ दिन और···अब जाती हूँ कुँवर!"

और वह चली गयी। मुरला अपने कमरे में बैठी थी, इसी समय गौरी माँ ने आकर कहा—"तुम्हारे मौसाजी आये हैं बेटी?

"मुरला ने खड़े होकर कहा—"कहाँ हैं?"

"दरवाज़े पर।"

मुरला व्यस्त-सी दरवाज़े की ओर बढ़ गई। तब तक सुरेन्द्रसिंह कमरे के अन्दर आ गये थे। मुरला को प्रणाम करते देख उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोले—"अखण्ड सौभाग्यवती हो। कैसी हो बेटी?"

"अच्छी हूँ बापू! आप कब आये?"

"बस चला ही आ रहा हूँ।"

वह उन्हें सोफे पर बैठाने के बाद बोली—"आपके लिये नाश्ता मँगवाऊँ बापू!"

"नहीं बेटी, तुम मेरे पास आकर बैठो, मैं खा-पीकर आया हूँ।"

उसके साथ बैठती वह बोली—"मौसी कैसी है?"

"बस पड़ी पड़ी रोती रहती है मुरला! इस लड़के ने हमें मिट्टी में मिला दिया—तू ही बता अब क्या होगा? इसके बाद यह वंश निर्वंश हुआ समझो।"

मुरला क्या उत्तर दे ? इसी समय दोनों बच्चे आकर जमींदार से लिपट गये। उन्होंने दोनों के मुँह चूम कर अपने दायें-बायें बैठा लिया। नरसिंह बोला—

"क्यों नाना जी ? आप कहते थे न। माँ जब लन्दन गई थीं, तब मैं पैदा न हुआ था। मुन्नी छोटी थी, इसे माँ छोड़ गई थी।"

जमींदार बोले—"अरे हां भाई ! मुरला तीन महीने के लिये तो गई थी कुल ?"

नरसिंह बोला—"यह इसलिये नाना जी ? यह कहती है तुम चाहे लड़के हो, पर माँ औशे मुझे ही प्यार करती है।"

बिट्टी खिलखिलाकर बोली—"क्यों नाना जी औशे क्या मेरी यह बात ग़लत है।"

नरसिंह रुठ गया। क्योंकि बिट्टी उसके औशे औशे···कहने की आदत से अब उसे हरवक्त चिढ़ाती रहती थी।

जमींदार बोले—"अरे, तुम इससे नाराज़ क्यों हो जाते हो नरसिंह ! जब यह भूतनी तुम्हारे जितनी थी, तो बोलना तक नहीं जानती थी।"

नरसिंह उछल कर बोला—"बाई गाड पापा ? गौरी माँ भी यही कहती थीं। जीजी भी पहिले इसी मुआफ़िक बोला करती थी।"

बिट्टी और भी हँसी, बोली—"नाना जी ! आपने इसके बोलने का ढंग देखा, औशे औशे तो आप सुनते ही रहे हैं। अब इसका नया तकिया क़लाम सुनिये, बाई गाड, इस मुआफ़िक···बात-बात में कहता है।"

नरसिंह उसे मारने दौड़ा, वह अन्दर भाग गई। जमींदार बोले—"जाने दो बेटा ! राजपूत वीर लड़कियों पर हाथ नहीं उठाते।"

नरसिंह कुछ देर बैठा बातें करता रहा, फिर उठकर चला गया। जमींदार बोले—"बेटी ! प्रभात से ब्याह करने के लिये कहो ?"

"मैं कहूँ बापू ?"

"हां बेटी ? अगर वह मानेगा तो एक तुम्हारी ही, बोलो कहोगी क्या ?"

मुरला ने थूक से गले को तर करते हुए कहा—"कहूँगी, क्यों नहीं बापू।"

"तो कहना बेटी ? अगर वह ब्याह नहीं करेगा। तो तुम्हारी मौसी रो-रो कर मर जायेगी ? तो कब कहोगी मुरला ?"

"आज ही कहूँगी, क्यों बापू ! अगर शिवाला जीजी से उनका ब्याह हो जाये तो कैसा ?"

जमींदार हँसे, बोले—"बेटी ? शिवाला जरूर एक राजा की बेटी है। पर तुम्हें नहीं मालूम·· वह बाल विधवा है।"

"बाल विधवा ?"

"हां बेटी ? उससे ब्याह करने से तो अच्छा है, इसी तरह रहे प्रभात।"

मुरला फिर नहीं बोली। थोड़ी देर बाद वह उठकर बाहर के कमरे में चले गये और मुरला के पति से कुशल समाचार पूछने लगे—"आपके थियेटर के क्या हाल-चाल है ?"

: १४ :

मनहर क्लब में एक किनारे की मेज़ के पास बैठा, विस्की पी रहा था। आज शनिवार था, रोज़ से ज्यादा चहल-पहल थी। मिस मौली एक सुन्दर पोशाक में लिपटी स्टेज पर थिरक रही थी। मनहर चुपचाप उसका नृत्य देख रहा था।"

मौली का क़द छोटा, दुबला-पतला शरीर, रंग गोरा, पीलपन लिये हुए, पर चेहरा कुछ आकर्षक था। इस वक्त वह मणीपुरी पोशाक पहिने थी, और मणीपुरी नृत्य कर रही थी।

अचानक घुटने मोड़ कर जब वह झटके के साथ खड़ी हुई, तो मनहर के मुँह से वाह-वाह निकल पड़ी।

मौली ने देखा, वह हँस पड़ी और नाचती रही, नाच ख़त्म होने पर स्टेज से कूद कर वह मनहर के पास आकर एक कुर्सी पर बैठ गई, और रुमाल से मुंह पोंछते हुए बोली—"बहुत मत पियो मनहर। अब काफ़ी हो गया।"

"तुम पगली हो, मुझे काफ़ी कभी नहीं होता। लो एक पेग तुम भी पियो, थकावट दूर हो जायेगी, फिर बाग़ में चलकर टहलेंगे।"

मौली ने गिलास ले लिया, अभी तक दोनों इंगलिश में ही बातचीत कर रहे थे। अब मौली हिन्दी में बोली—"आपके नाम का अर्थ मैं बता सकती हूँ।"

"बताओ।"

"मनहर...मतलब मन को हरने वाला, क्या सुन्दर और मीठा नाम है ?"

मनहर हँसने लगा, फिर बोला—"और जिसका नाम है वह कैसा है मौली।"

"इसे अब तक नहीं समझ सकी। कभी-कभी आप इस क़दर रूखे हो उठते हैं कि देखकर परेशान हो जाती हूँ। और कभी-कभी जब आप को हर एक के लिये कुछ न कुछ करते देखती हूँ, तो चकित हो जाती हूँ।"

"मैं हर एक के लिये क्या और कहाँ से कुछ कर सकता हूँ पगली ? गरीब आदमी हूँ।"

"जितना भी करते हैं ! उस दिन रमेश बाबू को चन्दे के लिये जब क्लब का मैनेजर जलील कर रहा था, तब आपने चुपके से उसके पैसे दफ़तर में जाकर चुका दिये थे, और रमेश बाबू से कहा था—'अब मैनेजर कुछ न कहेगा, मैंने उसे समझा दिया है।' यही कुछ करना होता है मनहर ? जरुरी नहीं सदावर्त्त या आश्रम खोलने से ही धर्मात्मा बना जाये।"

"पर तुम्हें यह बातें किसने कहीं मौली ? तुम तो उस वक्त नाच रही थीं।"

"सारा क्लब इस बात को जानता है। और यहाँ का हर आदमी आपको इज्जत की निगाहों से देखता है।"

"अच्छा छोड़ो यह बातें ? आओ अब बाग़ में चलकर बैठें, यहाँ मेरा दम घुटता है, अब तक केवल तुम्हारे नृत्य के लोभ से बैठा रहा।"

दोनों उठ खड़े हुए, दोनों गिलास मौली ने उठा लिये, मनहर ने एक हाथ में व्हिस्की की बोतल पकड़ ली, दूसरा हाथ मौली की कमर से लपेट लिया, और दोनों बातें करते हुए बाग़ में चले गये।

फव्वारे के पास एक बेंच पर दोनों जा बैठे। मौली अपनी मीठी-

मीठी बातों से उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करती रही।

झूमता-झामता मनहर जब घर पहुँचा, तो रात के ढाई बज रहे थे। मौजीराम ने आकर दरवाजा खोला और मनहर के अन्दर आने पर पूछा—"भोजन मेज पर लगा दूँ मालिक ?"

कोट उसके हाथ में पकड़ाते हुए वह बोला—"अरे नहीं मौजीराम ! मैं तो खा-पीकर आया हूँ। गुरबी और महाश्वेता तो सो गई होंगी।"

"और नहीं तो क्या मालिक ? जीजी तो दस बजे सो जाती हैं। इस वक्त तो ढाई बज रहे हैं।"

"सचमुच वहां बैठे-बैठे समय का ख्याल ही नहीं रहता, आधीरात को तुम्हें जगाता हूँ आकर।"

"इसमें क्या मालिक ? मैं तो रात में कई बेर उठने का आदी हूँ।"

मौजीराम ने उसके जूते उतारे, फिर स्लीपिंगसूट देकर कमरे से बाहर हो गया।

सुबह मनहर आठ बजे उठा। सीधे जाकर स्नानागार में घुस गया, फिर नहा-धोकर, बाल बनाये, और उसी पेड़ के नीचे अपनी आराम कुर्सी पर जा पड़ा। दो-चार मिनट अखबार, वीकली पर सरसरी निगाह डाली। महाश्वेता पूजा पर बैठी थी।

आज भी वह अनमनी हो उठी, गीता बन्द कर वह मन्दिर के बाहर चली आई, और बोली—"गुरबी ओ गुरबी।"

"क्या है जीजी ?" कहती हुई वह सामने आ खड़ी हुई। वह बोली—"भैया उठ गये। अपने बापू से कह, वह उनके लिये चाय और नाश्ता ले जाये।"

"वही तो मैं ले जा रही थी, बापू ने सब लगा दिया है जीजी ?"

और वह फिर रसोई घर की तरफ चली गई।

इसके बाद वह सजी हुई ट्रे लेकर मनहर के सामने पहुँची। मनहर ठीक से बैठता हुआ बोला—"तेरी सौगन्ध गुरबी ! भूख के मारे मेरा दम

होठों पर आ रहा था, सोच ले कल दोपहर का खाये हूँ।"

गुरबी ने ट्रे उसके सामने की मेज पर रखते हुए कहा—"रात इतनी देर क्लब में करते क्या रहे मालिक ?"

"अरे यही नाच देखता रहा और क्या। भई कमाल है गुरबी ? तेरे देश की यह मौली तो बड़ा सुन्दर नाच लेती है।"

गुरबी घास पर बैठती बोली—"हाँ खूब नाचती है मालिक !"

मनहर ने चाय पीते हुए पूछा—"तू नाच सकती है गुरबी ?"

गुरबी उत्साहित होकर बोली—"खूब अच्छा नाच लेती हूँ मालिक ? नाचूँ क्या ?"

कहते हुए वह उठ खड़ी हुई, मनहर बोला—"अरे नहीं रे नहीं ! इस वक्त नहीं, किसी त्योहार वाले दिन नाचना। जा, थोड़ा ठण्डा पानी तो ले आ एक गिलास ?"

गुरबी पानी लेने दौड़ गई।

उस सन्ध्या को नृत्य समाप्त कर मौली ने इधर-उधर देखा। मनहर उसे हाल में कहीं दिखाई नहीं दिया। वह फिर उस कमरे में गई, जहाँ लोग फ्लाश खेला करते थे। मौली जानती थी, मनहर कुछ दिन से खूब फ्लाश खेल रहा है। पर आज वह इस कमरे में भी न था, व्याकुल सी बाहर बाग़ में आई, उसे घास पर पड़ा देख उसकी जान में जान आई।

चाँदनी रात दूध-सी उज्ज्वल चारों तरफ अमृत का झरना-सी लग रही थी। मौली ने देखा मनहर के हाथ में गिलास है, विस्की की बोतल पास पड़ी है और वह आसमान की तरफ़ ताकता हुआ, मानो सितारों की दुनिया में खो गया है।

मौली चुपचाप उसके पैरों के पास बैठ गई और मीठे स्वर से बोली—"आप यहाँ हैं मनहर ? मैं जाने कहां-कहां खोजती फिरी।"

चौंक पड़ा वहा वह, बोला—"ओह तुम मौली ? चलो उठो, बैंच

पर बैठते हैं। घास पर तुम्हारे कपड़े बिगड़ जायेंगे।"

उसके पैरों पर अपने हाथ फेरती हुई वह बोली—"मेरे लिये इससे अच्छी और कहीं कोई जगह नहीं मनहर। काश! मैं सदा सदा इन पैरों के पास बैठने का अधिकार पा सकती।"

मनहर ने उसे अपने हृदय के पास खींच लिया, फिर कहा—"आपस में ऐसी तक्कलुफ़ भरी बातें नहीं कहनी चाहिये मौली? मेरा जी घबराने लगता है, यह सब ग़ैरों के लिये रखो।"

मौली क्षण भर तक केवल उसका मुँह ताकती रही, फिर बोली—"आज आप मेरा नृत्य देखने अन्दर क्यों नहीं आये?"

"मौली! इस चलते-फिरते आम नृत्य से मुझे ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है। मैंने बचपन से सदा अपने गाँव के मन्दिर में एक देवबाला का नृत्य देखा है, जो केवल भगवान और कला के लिये नाचती रही है। तुम्हारे नज़दीक उस कला की छाया तक नहीं है प्रिय! तुम नाचती हो लोगों को रिझाने के लिये। और वह नाचती है अपने इष्ट कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये, उनके वरदान पाने के लिये। नाचते-नाचते वह भूल जाती है, वह कौन है, इस वक्त कहाँ है? और क्या कर रही है। उसकी आँखें जमी रहती थीं देवता के मुख पर और पैर धरती पर, मन शायद दूसरी दुनिया में। साज़ वाले घबरा जाते, महात्मा चन्चल हो उठते—भीड़ कह उठती, 'देवी महाश्वेता धन्य हो तुम? तुम्हारे चरणों की धूलि से हमारा गाँव कृतार्थ हुआ है।' उस धन्य-धन्य की आवाज़ से महाश्वेता फिर इस दुनिया में लौट आती और थकी-सी देवता के चरणों पर माथा टेक कर पड़ रहती।"

मौली के हृदय पर अपने प्रिय के इन वचनों ने जैसे हथौड़ा-सा मार दिया हो। वह बुझे स्वर से बोली—"और मेरा नृत्य देखने के बाद लोग क्या कहते हैं मनहर?"

"सो तो मुझे दोहराते भी शर्म आती है मौली? तुम में कला

की कभी नहीं, पर लोगों के लिये तुमने उसका गला घोट दिया है ।"

मौली की वह बड़ी-बड़ी गहरी काली आँखें छलछला आईं, पर अपने आँसुओं को वह अन्दर ही पी गई । बोली—"तुम···नहीं आप ! सच कहते हैं मनहर ?"

मनहर ने उसे अपने कलेजे पर कसते हुए कहा—"मैंने तुम्हें फिर चोट पहुँचाई मौली ? कभी-कभी जाने क्यों मैं ऐसी बातें करने लगता हूँ । तुम्हारा नृत्य मुझे खूब पसन्द है । प्रथम दिन मेरे वाह-वाह कहने से ही तुमने पलट कर मेरी ओर देखा था, भूल गईं क्या ?"

मौली ने अपना पीला आकर्षक चेहरा उसकी छाती पर रखते हुए कहा—"आपके मन की थाह नहीं पा सकी मनहर । पर इतना समझ गई हूँ, इस मन में एक पीड़ा ऐसी है जो हर वक्त आपको व्यथित रखती है । उसी से आप कभी-कभी इस क़दर रुखे हो उठते हैं, आपके कष्ट को ···।"

मनहर हँस पड़ा, उसके होठों पर अपनी उँगलियाँ रखता हुआ बोला—"ग़लत अन्दाजा क्यों लगा रही हो मौली ?"

"ग़लत···आप ऐसा नहीं कह सकते । अगर यह ग़लत है तो बताओ ! रात-रात भर आप तारों के झुरमुट में क्या खोजा करते हैं?"

मनहर ने लेटे ही लेटे हाथ बढ़ाकर गिलास में विस्की डाली और उसे पीकर, मुँह पोंछते हुए जैसे अपने से ही कहा हो, बोला—

"आंसू भरी वह दो आँखें, जिनमें मेरा सब कुछ डूब चुका है ।"

मौली ने सुन लिया, शान्त स्वर से बोली—"कौन है वह ? सचमुच कितनी भाग्यवान है वह जिन्होंने आपका प्रेम पाया है ।"

मनहर चौंक कर बोला—कभी-कभी लगता है मौली ? वह कोई नहीं है, केवल मेरी कल्पना ही मेरे साथ खिलवाड़ कर रही ।"

"आप ऐसा सोच सकते हैं, पर मैं नहीं । मैं आप को प्यार करती हूँ मनहर ?"

बड़े प्यार से उसकी ठोड़ी के नीचे अपनी दो उँगलिया रख, उसका मुँह ऊँचा करते हुए मनहर बोला—"पगली ! लुटे हुए खजाने पर सेन्ध लगाने आई है। लौट जा मौली ! नहीं तो अन्त में यह निराशा तुझे कहीं पागल न बना दे।"

"मैं गरीब हूँ, इसलिये आपने सोच लिया मनहर ! कि आपके खजाने पर सेन्ध लगाने आई हूँ।"

"इसका मतलब मैं नहीं समझा मौली ?"

"इसका मतलब साफ़ है ! आप सोचते हैं, मैं एक नर्तकी हूँ, दुनिया को लूटने वाली। मैं प्यार करना क्या जानूं ? परन्तु मेरा हृदय चीर के देखो राजा ? क्या कुछ रत्न मैं इन चरणों पर लुटाने आई हूँ। स्वीकार करो या न करो, मौली अब किसी दूसरे की नहीं हो सकती।"

मनहर स्तब्ध कुछ क्षण अनमना-सा बैठा रहा, फिर बोला—"अगर ऐसा है, तो घबराती क्यों हो मौली ? प्रेम में बहुत बल होता है। सच्चा प्रेम···अपने प्रेमी को कच्चे तागे में बांधने की शक्ति रखता है। मैं तुमसे दूर कभी नहीं होऊँगा। आओ, अब चलें।"

दोनों उठ खड़े हुए। मौली बोली—"घर जाइये, बहुत देर हुई। जीजी राह देखती होंगी ?"

मनहर डगमगाते पैरों से फाटक की तरफ चला। वह दुःखित होकर बोली—"जाने रोज-रोज इतनी शराब आप क्यों पीते हैं। मैं चलूं साथ।"

मनहर हँस पड़ा, बोला—"इसी नृत्य की पोशाक में मौली ? चार कदम पे घर है, मैं चला जाऊँगा।"

और वह फाटक के बाहर हो गया, मन ही मन गुनगुनाता हुआ।

मौली फाटक पर हाथ रखे तब तक मनहर की तरफ देखती रही जब तक वह दिखाई पड़ता रहा।

कई महीने इसी तरह बीत गये। एक दिन मनहर क्लब जा रहा

था, तो महाश्वेता ने आकर पूछा—आज क्लब जाने में इतनी देर कैसे कर दी भैया ?"

मनहर ने हाथ का रैकिट मेज़ पर रखते हुए कहा—"आओ बैठो महाश्वेता ? मैं तो क्लब इसीलिये जा बैठता हूँ कि सन्ध्या को तुम मन्दिर चली जाती हो ?"

"सन्ध्या क्लब में गुजारना तो अच्छी ही बात है मनहर भैया ? पर तुम तो रात भी वहीं गुज़ार देते हो, यह तो अच्छा नहीं। आखिर यह परदेश है। हज़ार दोस्त-दुश्मन हो जाते हैं···फिर-फिर तुमने तो···अब फिर जुआ खेलना शुरू कर दिया है।"

मनहर का मुंह उतर गया, धप्प से वह सोफ़े पर पड़ गया और एक सिगरेट सुलगाकर धुआं उड़ाने लगा। वह ही बोली—"यहां तुम्हें और कोई काम नहीं है। इसीलिये क्या जुआ खेलकर मन बहलाओगे भैया ?"

मनहर ने एक ठण्डी सांस ली, फिर कहा—"मन बहलाने के लिये नहीं खेलता महाश्वेता ? दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसीलिये खेलता हूँ। आखिर बंगले का किराया, नौकरों की तनख्वाह, घर का खर्च··· यह सब मैं कहाँ से लाऊँ बहिन ?"

महाश्वेता के काटो तो खून नहीं। वेदना से उसका मुँह स्याह पड़ गया। बोली—"शायद बैंक का रुपया चुक गया भैया।"

"बिल्कुल चुक गया हो ऐसी बात नहीं है बहिन ! पर एक दम सब समाप्त करके जुआ खेलता—तो यहां की सोसाइटी की आँखों में मेरी कोई क़द्र न होती। वह सोचते, जुआ खेल कर पेट भरता है। थोड़ा रुपया बैंक में है, इसलिये सोचते हैं—शौकिया खेलता हूँ—"

महाश्वेता का मुख और भी विवर्ण हो गया, बुझे स्वर से बोली—"तो इस बार तुम्हें मेरे लिये जुआ···खेलना पड़ा।"

"नहीं" ऐसा मत सोचो बहिन ? मेरी अपनी भी आदत बिगड़ गई

। दस रुपये रोज की तो मैं विस्की पी जाता हूँ—ठाठ से रहने की आदत हो गई है। मुझे डेढ़ सौ की नौकरी इसी क्लब की लायबरेरी में मिल रही थी—पर मैंने उसे करना अपनी शान के खिलाफ़ समझा।"

"अच्छा जाओ—क्लब हो आओ भैया ?"

"नहीं···अब नहीं जाऊँगा बहिन ! मन कुछ उदास हो गया है। आओ बाग़ में चलकर टहलें दोनों।"

"और मैंने मन्दिर जाना है जो।"

"नहीं ! आज मेरे लिये तुम वहाँ मत जाओ, चलो बाहर।"

दोनों बाग़ में निकल कर टहलने लगे—आपस में अनेक बातें करते हुए। मनहर कहने लगा—"हम चारों का जैसा बचपन बीता। वैसा ही अगर सारा जीवन बीत जाता तो कितना अच्छा होता बहिन।"

"हाँ···पर ऐसा नसीब तो हम चारों में से एक का भी नहीं निकला भैया ?"

"वही तो।"

: १५ :

'रेवा' कहते हुए प्रभात ने रामा के आंगन में पैर रखा। रेवा रसोई-घर से बाहर निकल आई—बोली—"आओ, बैठो कुँवर ?"

वह पेड़ के नीचे बिछे मोढ़ों में से एक पर बैठता बोला—"लो यह बैठ गया, अब बताओ, तुम कहाँ बैठोगी रेवा !"

वह हँस दी, बोली—"मैं अभी कैसे बैठूंगी। फिर आपके लिये चाय कौन बनावेगा।"

"वही तो, भाई रेवा ! चाय तो मैं जरूर पीयूँगा। अच्छा पहिले यह बताओ ! काकी अब कैसी हैं ?"

"खूब अच्छी हैं मौसी। अब तो चलते-फिरते में उनका दम भी नहीं फूलता।"

"तो तुम जब तक चाय बनाती हो, मैं काकी के ऐन्जक्शन लगाये लेता हूँ।"

प्रभात यह कहता हुआ काकी की कोठरी में चला गया। रेवा चाय के साथ के लिये थोड़ी पकौड़िया बनाने बैठ गई।

बहुत देर बातें करने के बाद रामा बोली—"जा बेटा ! पहिले चाय पी ले, पर प्रभात चले मत जाना अभी। मुझे तुमसे आज बहुत कुछ पूछना है।"

प्रभात जाता हुआ बोला—"नहीं काकी, तुम्हारी आज्ञा बिना जाऊँगा कैसे।"

बाहर रेखा ने मेज पर चाय और पकौड़िया लगा दीं। प्रभात मूढ़ा खींच कर तिपाई के पास आ गया और चाय का प्याला उठाते हुए बोला—"तुम्हारे बैठने का प्रश्न देखता हूँ, ज्यों का त्यों ही रहा रेवा।"

रेवा मुस्कराती हुई तुलसी चौरे पर बैठती हुई बोली—"यह लो कुँवर! यह प्रश्न मैंने हल कर दिया। अब बताओ चाय आपको कैसी लग रही है।"

"क्यों?"

"पहिले पी कर बताओ।"

प्रभात ने दो तीन घूंट भर कर कहा—"बिल्कुल ठीक तो है रेवा?"

"चीनी के बजाय मैंने आज इसमें बताशे डाले थे कुँवर।"

"तुम अगर गुड़ भी डाल देतीं तो भी मुझे इसमें कोई फ़र्क नहीं लग सकता था रेवा! यह इसलिये कि तुम्हारे हाथ की चाय पीने के लिये मैं बम्बई में बैठा-बैठा तरसता हूँ।"

"यह तो ठीक कृष्ण-सुदामा जैसी बात आपने कर दी कुँवर!"

"पगली! मुझ-से मामूली आदमी को एकदम भगवान् की उपाधि देते तुम्हें भय भी नहीं लगा रेवा। मालूम है भगवान् ने सुदामा के जितने मुट्ठी चावल फांके थे, उतना ही बड़ा राज्य और धन सुदामा ने पाया था। मेरे पास तुम्हें देने के लिये केवल प्रशंसा के चन्द शब्द ही हैं।"

"आप यह कह भी कैसे सकते हैं कुँवर! कि आपकी प्रशंसा के यह चन्द शब्द मेरे लिये भगवान् के दिये उस धन से कुछ कम मूल्यवान हैं। यहाँ बृजपुर में रहते मुझे वर्षों बीत गये कितने ही परिवारों से मिलना हुआ, कितनों की कहानियाँ सुनने को मिलीं, पर मनुष्य कहलाने लायक यहाँ, मुझे केवल चार प्राणी ही दिखाई दिये। चारों का जीवन एक अलग कहानी है, चारों मानो धरती पर केवल उत्सर्ग होने ही आये थे, उनका जैसे अपने लिये कोई अस्तित्व ही नहीं है, वह जैसे......।"

प्रभात ने बीच में ही कहा—"चुप रहो रेवा! थोड़ी पकौड़ी और दो।"

रेवा ने पकौड़ी और लाकर उसके आगे रखीं, फिर बोली—"मौसी को दवा और तो नहीं देनी होगी।"

"नहीं! दवा-दारु बन्द, केवल दो ऐन्जक्शन और लगाऊँगा।"

फिर कोट की जेब से रुपये निकाल कर रेवा के हाथ पर रखते वह बोला—"लो सम्भालो।"

"यह कैसे रुपये हैं कुँवर।"

"तुम्हारे खेतों के किनारे-किनारे दो पेड़ थे रेवा! मैंने वह कटवा लिये हैं, यह रुपये उन्हींकी कीमत है—अरे ऐसी सुन्न-मुन्न ताक क्या रही हो। मैंने तुम्हें ठगा नहीं है, कीमत वाजिब ही दी है।"

रेवा बोली—"आपसे ठगना होगा भी नहीं कुँवर! समय पर आप हम लोगों से खुद ही जो ठगे जाते हो।"

प्रभात चाय खत्म कर हँसता हुआ रामा के पास चला गया। रेवा आप ही आप बोली—"दो पेड़···मैंने तो अपनी आँखों देखा है, मौसी के खेतों के किनारे, कोई झाड़ तक नहीं है, पेड़ों की तो बात ही क्या है।"

प्रभात रामा के बिस्तर पर बैठता बोला—"अब कहो काकी? क्या बातें करनी हैं तुम्हें।

प्रभात के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए रामा बोली—"सारी उम्र मनहर को छाती से लगाये बैठी रही, यही मेरा लड़का है; यही मुझे बुढ़ापे में सुख देगा; खोज-खबर लेगा, पर यह सब कहाँ हुआ प्रभात? सुख देने आया तू मुझे बेटा? जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की, कहाँ बम्बई से मेरे इलाज के लिये तू आता है?"

प्रभात उसके पैरों पर हाथ फेरता बोला—"तो क्या हुआ? मैं भी तो तुम्हारा लड़का हूँ काकी? तुम्हारी सेवा करना मेरा कर्तव्य है।"

"अरे बेटा! कितने हैं ऐसे, जो ऐसे कर्तव्य का ध्यान रखते हैं कह तो? मनहर का क्या मेरे प्रति कोई कर्तव्य न था प्रभात।"

"था कैसे नहीं, पर काकी ! मनहर तो सचमुच एक महान् आत्मा है। वह किसी एक के लिये पैदा ही नहीं हुआ है। उसके जैसे आदमी दुनिया में दूसरों के लिये कुछ करने को पैदा होते हैं, ऐसी आत्माओं को एक नन्हीं-सी गृहस्थी में बाँधे रखना असम्भव-सी बात है, और उन लोगों पर अन्याय करना है, जो मनहर के मुँह की तरफ़ ताक रहे हैं।"

"क्या मालूम बेटा ? तुम्हारी और रेवा की बातों से तो ऐसा ही लगता है, मैं एक महान् आत्मा की माँ हूँ। मेरा मनहर एक मेरा ही नहीं, सब का है, पर यह गाँव वाले जो कुछ कहते फिरते हैं, उसे सुन कर तो जी जाने कैसा हो जाता है।"

"क्या सुना है तुमने काकी।"

"यही···कि मनहर ने ही महाश्वेता से जेवर लिये थे।"

"तो क्या हुआ काकी ? अगर लिये भी थे, तो अब लौटा भी तो दिये। "

"और···वह किसी एक लड़की को लेकर नाहरपुर से भाग गया है।"

"यह सब झूठी बातें हैं काकी ? तुम यों ही इन पर विश्वास करके अपने मन को दुःखी करती हो, अगर वह लड़की लेकर भागता तो उस पर मुकदमा न चलता, या फिर हमारी सरकार उसके होटल को चलने देती। आज उसके होटल की कमाई से कितने ही लड़के विद्या पा रहे हैं, कितने ही भूखे पेट भर रहे हैं। वह कहीं परदेस में किसी काम में फँसा है, जल्द ही आ जायेगा, देख लेना ?"

"ऐसा तुझे विश्वास होता है बच्चे ! कि वह एक दिन फिर यहाँ लौट आवेगा ?"

"क्यों नहीं काकी ? अपना घर द्वार छोड़ कर कभी कोई बहुत दिन बाहर रह सकता है क्या ?"

"रेवा भी उसी जैसी है बेटा ? इसने भी बड़ा तंग कर रखा है।"

"इसने अब क्या किया है काकी ?"

"अरे बेटा ? ब्याह नहीं करती, मुखिया कहते थे, गाँव में बड़ी चर्चा होती है, सब कहते हैं अपने गांव में पच्चीस वर्ष की लड़की क्वांरी बैठी है, यह तो एकदम अनर्थ है। फिर कहीं कोई बीमार हो तो, यह जरूर जाकर उनकी सेवा टहल करेगी। पीछे से वही लाख लाख बात बनावेंगे।"

"तो काकी! इसमें रेवा का क्या दोष है, वह बेचारी तो लोगों का भला ही करती है दुनिया ही बेइमान है तो क्या किया जाये ?"

"नहीं बेटा ? इसी का दोष है। इसे अब चुपचाप ब्याह कर लेना चाहिये—मुझसे अब लोगों के ताने नहीं सुने जाते।"

"अच्छा, आज में जाते-जाते उसे समझाऊंगा।"

"जरूर कहना बेटा!"

प्रभात ने उसके चरणों पर हाथ रखे, वह बोली—"लाख वर्ष जियो।"

मन ही मन हँसा प्रभात सोचने लगा—"ऐसा थका मन और टूटी देह लिये लाख वर्ष जियूं। यह काकी का आशीर्वाद है या शाप।"

प्रभात आंगन में आकर बोला—"तो अब चलता हूँ रेवा ?"

रेवा रसोई से बाहर आकर बोली—"अच्छा, मौसी क्या कह रही थीं कुंवर ?"

"और क्या कहती थीं—यही रेवा और मनहर की कहानियां सुना रही थीं।"

"अपने मित्र की बात जाने दो—पर मैंने उनका क्या बिगाड़ा है कुंवर ?"

"वाह! क्या कहने ? अभी कुछ बिगाड़ा ही नहीं। जाति से बाहर करवा देने के सब सामान तैयार किये बैठी हो।"

रेवा निरुत्तर हो गई, वह खड़े ही खड़ा बोला—"रेवा ! तुम पच्चीस वर्ष की होने लगी। अब मनहर की और राह कहां तक देखोगी, सम्भव है वह कभी न लौटे तो।"

रेवा का मुँह फक हो गया, होठ हिले, मुंह से निकला—"हां···शायद वह कभी न लौटें। उन्हें अपनी मन्जिल का रास्ता मिल गया हो ?"

फिर बोली—"आप राजा के बेटा हैं तो क्या ! आखिर हैं तो हिन्दू की सन्तान—मेरी एक बात का उत्तर दे सकते हैं।"

"पूछो।"

"किसी दिन अगर आप कुछ फूल-बताशे ले जाकर भगवान् के चरणों पर चढ़ा आएँ और बाद में आपसे कोई कहे—यह भगवान् ने स्वीकार नहीं किया है, इस भेंट को उठा ले जाओ तो क्या आप उसे वापिस उठा सकते हैं फिर।"

"नहीं—"

"एक आप ही नहीं कोई भी हिन्दू ऐसा नहीं कर सकता। वह फूल उन चरणों पर ही सूख जायेंगे, पर अर्पण की हुई वस्तु उठाकर दूसरी जगह ले जाने का कोई उपाय नहीं है।"

"किसी हद तक तुम्हारा यह कहना सत्य है रेवा ! पर हिन्दू लड़की ब्याह के मामले में स्वाधीन नहीं है। यह तुम्हें मानना ही होगा ?"

"क्यों स्वाधीन नहीं है। यही तो मैं आप से जानना चाहती हूँ, कुंवर ! जिन लोगों ने उसे पराधीन बना रखा है यह तो उन्हीं लोगों के मुख की बात है। भारत स्वाधीन हुआ, फिर उसकी बेटी ही क्यों पराधीन रहेगी कुंवर ! लगता है उसे भी स्वाधीनता सत्याग्रह करने पर ही प्राप्त होगी। सुभाष और महात्मा गांधी की तरह उसे दृढ़ और अडिग होना होगा, गायत्री···"

"रुको रेवा रुको ! तुम तो त्रेता युग में पहुँच गई थीं भई।"

"हाँ···क्योंकि मैं जानती हूँ, युग बनाने वाले भी हम ही हैं। हम चाहें तो पल भर में आज के रीति-रिवाज बदल कर त्रेता युग जैसे ही कर दें, पर इसके लिये साहस और एकता चाहिए, और यह दोनों चीजें हमारे यहां न होने के बराबर हैं। अभी—मौसी का उतरा मुंह देख कर मुझे भी कष्ट होता है कुंवर! चाहती हूँ ब्याह करके इनके सिर का बोझ उतार दूं—पर करूँ क्या···कुंवर! मैं ब्याह कैसे कर सकती हूँ। अगर किसी दिन लौटकर आपके मित्र ने अपनी मन्जिल की राह मुझसे पूछी आकर तो।"

प्रभात अवाक् उसका मुंह ताकता रहा, फिर बोला—"तुम कहती तो ठीक हो रेवा! पर तुम्हारी इन बातों से काकी का मन नहीं भरेगा, तुम्हें हां या न में उन्हें उत्तर देना ही होगा।"

"यह तो हां कहलाने की चालाकी भर है। खैर, मुझे सोचने के लिये कुछ समय दो कुँवर! और···"

"और-वौर कुछ नहीं, तुम्हें मैं पन्द्रह दिन का समय देता हूँ। इस बार जब मैं ऐन्जक्शन लगाने बम्बई से आऊँगा, मुझे हां या न में काकी के लिये तुम कुछ उत्तर दोगी–इसका वचन दो।"

रेवा ने सूखे मुंह से कहा—"पन्द्रह दिन! आपने मुझे पन्द्रह दिन दिये कुंवर! जबकि मुरला ने आपको बम्बई में एक सेकिण्ड की भी अधिक मोहलत न दी थी।"

प्रभात का मुंह स्याह पड़ गया, बोला—"तुमने सब कुछ सुना है रेवा?"

"हां···मुरला से ही सुना है—वह आज भी आपसे सब कुछ करा लेने का दम रखती है। अपने इतने बड़े गौरव की बात वह मुझसे छिपा नहीं सकी कुंवर! परन्तु जब वह यह सब मुझे सुना रही थी, तब उसकी आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें उसके दोनों गालों पर बह रही थीं। उसने बताया—रेवा जीजी, मैंने कुंवर से जब ब्याह कर लेने को

कहा—तो वह ऐसे देखने लगे, मानो मैं उनसे बड़ी अनहोनी बात कह रही हूँ—बोले···तुम ब्याह के लिये कहती हो और मैं जीना तक नहीं चाहता—तब मैंने कहा जियो कुंवर, तुम मेरे लिये जियो—मैं भी सिर्फ तुम्हारे लिये ही जीती हूँ। शरीर से हम दो जरूर हैं, पर मन हमारा सदा एक रहेगा। जीवन के अन्त तक—दुनिया की कोई शक्ति हमारे मन अलग करने की ताकत नहीं रखती। तुम पुरुष हो तिस पर राजपूत, तुम लोगों के नाम के पीछे सिंह इसीलिये लगता है कि तुम लोग सिंह के समान बनो, मरना तो एक छोटी-सी बात है। घाव खाकर जीना ही बहादुरी है।"

प्रभात ने एक ठण्डी सांस लेते हुए कहा—"अब चलता हूँ रेवा ?

"अच्छा···"

प्रभात चला गया, और रेवा रसोई घर में चली गई।

: १६ :

मुरला चुपचाप सोफे पर लेटी एक उपन्यास पढ़ रही थी। ताराचन्द ने पर्दे के पास आकर पुकारा।

"आ जाऊ जीजी !"

मुरला सीधी बैठती हुई बोली—"हाँ आओ न तारी ! कब आये बम्बई से।"

"बस चला ही आ रहा हूँ।"

"नरसिंह और बिट्टी से बोरडिंग मिलने गये थे।"

"गया था जीजी ! नरसिंह के स्कूल में तो जाते ठीक रहता है, पर भई बिट्टी के स्कूल में जाने से तो मैं एक गड़बड़ में पड़ गया था।"

"क्या हुआ था ?"

"उसकी एक टीचर जो कि हमारे बिज्जी से भी आधी होगी, मेरा मुआयना करने आई। क्यों मैं बिट्टी से मिलना चाहता हूँ। अब तुम्हीं सोचो मैं ताड़ सा लम्बा, वह दो फुट की टीचर स्कूल की लड़कियों को तो अच्छा खासा तमाशा मिल गया, लगीं सब खी-खी करने, कोई दरवाजे से चिपकी है, तो कोई खिड़की में से गिरी पड़ रही है। लानत है इनकी शिक्षा को, मैं लपका हैड मिस्ट्रस से शिकायत करने, तो देखता हूँ तुम्हारी मिस्ट्रस भी मुँह पर रुमाल दबाये लपकी चली जा रही है। मैं उस स्कूल पर ही लाहौल विलाकूवत पढ़ कर चला आया।"

"चले आये, तब यह नहीं पूछ कर आये क्या कि कब बन्द हो रहा है स्कूल ?"

"पूछते तो हम बहुत कुछ जीजी ! पर वहाँ ही-ही-खी-खी के सिवा कुछ जवाब भी था कहीं। पर तुम्हारी बेटी कहां छोड़ती है, भाग कर फाटक पर आई, बोली—"माँ से कहना तेरह मई को बन्द हो रहा है स्कूल ।"

"ओह ! तुम्हें भी बिज्जी की सी आदत पड़ गई है । घण्टों घुमा फिरा कर तब असली बताओगे। कहो देवदास की कोई खबर आई ।"

"वही खबर है, उन्हें वहाँ अमरीकन पारू मिल गई है। इस इण्डियन पारू को उन्होंने सलाम बोल दिया है । इनको भी महीने तक शादी है । खूब खुश नजर आती है । देखा जीजी ! इसे कहते हैं कलयुगी प्रेम ।"

"हाँ भैया ! देख लिया ।"

तारी बोला—"जीजा जी कहाँ है ?"

"कहीं घूमने गये होंगे ! रेवा के ब्याह का क्या हुआ ?"

"अभी तक तो जीजी ने कोई जवाब नहीं दिया है । प्रभात दादा बता रहे थे, पन्द्रह दिन बाद सोच कर जवाब देंगी ।"

मुरला हँसी, बोली—"लिख कर रखो तारी ! रेवा ब्याह के लिये कभी तैयार न होगी ।"

"तब काकी का क्या होगा ? वह तो सोच-सोच कर मर जायेगी ।"

"चाहे कुछ हो, पर रेवा कभी ब्याह नहीं कर सकती ।"

इधर मनहर पांच दिन तक क्लब नहीं गया । मौली रोज राह देखती, फिर निराश होकर अपने कमरे में चली आती, और सारी रात खिड़की पर खड़ी रहती ।

एक दिन वह आधी रात को मनहर के बंगले पर चली गई, और फाटक के पास खड़ी हो कर मन ही मन कहने लगी—

"तुम कहाँ हो मनहर ! तुम्हें कैसे जगाऊँ । कैसे पाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता ।"

और फिर एक पत्थर पर बैठकर एक गीत गाने लगी।

मनहर की नींद टूट गई। मौली कहता हुआ वह बिस्तर छोड़कर उठ खड़ा हुआ, और फिर दरवाजा खोलते हुए बाहर निकल गया। बाहर उसे बैठा देख सोचने लगा—

"कैसी पागल लड़की है, आधी रात को उठकर चली आई यहाँ, कहीं महाश्वेता ने देख लिया तो।"

थोड़ी-सी घाटी चढ़कर वह उसके पास, उस पत्थर पर जा बैठा। मौली सहम गई थी, यह सोच कर कि कहीं उसके आने से मनहर बिगड़ गया तो। मनहर बोला—"तुम यहाँ क्यों आई मौली ?"

मौली ने व्याकुल होकर कहा—"यह अपने से पूछो, क्या आप नहीं जानते थे, आपको इतने दिन बिना देखे मैं रह कैसे सकती थी।"

"पर यहां अगर तुम्हें मेरी बहिन ने देख लिया, तो बड़ी नाराज होगी ?"

"यह आपका दोष है, आपको वहाँ ही आना चाहिये था, आपके मित्रगण···।"

मनहर बीच में ही ठट्ठा मारकर हँस पड़ा, बोला—"मेरे मित्रगण··· मौली! वह सब क्या मेरे मित्र हैं ? कहीं तुम्हारी मित्रता भी तो उन्हीं-जैसी नहीं प्रिय।"

मौली को चोट लगी, भरे गले से बोली—"मेरी मित्रता कैसी है। यह आपको कभी समय ही बतायेगा, अच्छा जाओ अब आराम करो, मैं जाती हूँ।"

"यह क्या मौली ? तुम तो नाराज होकर जा रही हो ?"

"आपसे···यह क्या मुझसे हो सकता है मनहर ? आप भी तो किसी को प्यार करते हैं। कहिये तो—उससे नाराज होना क्या आपसे हो सकता है।"

और वह खड़ी हुई। मनहर उसके साथ घाटी पर से उतरने लगा। वह बोली—"अब जाओ, मैं चली जाऊँगी।"

"पागल हुई हो—मैं तुम्हें कभी इस तरह अकेली न जाने दूंगा। इस पर कभी विश्वास मत करना। तुम्हारे कमरे तक छोड़कर आऊँगा।

दोनों चले गये। महाश्वेता ने सब देखा। अपने बिस्तर पर बैठकर सोचने लगी—"बात बहुत बढ़ती जारही है। अगर यह हुआ तो रेवा का क्या होगा?"

दोपहर के भोजन के समय—नित्य की तरह महाश्वेता भाई के पास खड़ी उससे बातें कर रही थी—अचानक बोली—"रात मौली क्या कहने आई थी भैया?"

मनहर सकपकाकर बोला—"वह—वह बेचारी···उसके कोई नहीं है महाश्वेता?"

"सो तो समझी भैया! जिसके कोई नहीं होता वही देवता का आश्रय पाते हैं। पर भैया सोचो तो तुम क्या सदा यहाँ ही रहोगे? तुम्हें तो अब जल्द ही जाना होगा। वहाँ काकी हैं, रेवा है। तब इस बात को ज्यादा तूल देने से अन्त में कुछ गड़बड़ भी तो हो सकती है।"

"परन्तु इसे अब मैं···"

"नहीं···नहीं···नहीं···मैं यह सब तुम्हें हरगिज करने नहीं दूंगी भैया! इस नर्तकी के लिए क्या अपने घर का सदा के लिए रास्ता बंद कर लेना चाहते हो—मैं ऐसा अपने जीते जी नहीं होने दूंगी।"

"घर का रास्ता" कहते हुए वह हँस पड़ा, बोला—"घर का रास्ता बन्द हो जाने से घर वालों का कुछ नुकसान होने का डर तो नहीं है बहिन! वहाँ मैं कब किसी के काम आया। मेरे बिना ही सदा वहाँ सब ठीक चलता रहा है।"

"क्यों मुरला जीजी ने रेवा के मन की बात तुमसे कही तो थी भैया?"

"सो तो कही थी—पर तुम्हीं सोच देखो—रेवा-सी सुलक्षणा लड़की का ब्याह मुझ जैसे अवारा, शराबी, ऋणी से कर देना सरासर अन्याय नहीं है क्या ?"

"सो शायद हो, पर जब वह सुलक्षणा ही ऐसे पति के लिये जान-बूझकर तपस्या करने बैठी है तो इसके लिये तुम या मैं कर ही क्या सकते हैं ? मेरे अच्छे भैया ! घर जाओ—रेवा और काकी को सुखी करो जाकर।"

"मै लौट जाऊँ ? तुम्हें यहाँ परदेश में अकेली छोड़कर मैं रेवा से ब्याह रचाने जाऊँ—नहीं—मुझे ऐसे ब्याह की जरूरत नहीं।"

"तुम्हें जरूरत नहीं भी हो सकती है। पर तुम तो कभी अपनी जरूरत के लिये कुछ नहीं करते भैया। ऐसे आदमी तुम हो भी कहां—नाहरपुर का होटल क्या तुमने अपनी जरूरत के लिये खोला था। आमदनी कम होने पर जब जुआ खेलना शुरू किया था, वह क्या अपनी जरूरत के लिये किया था—फिर अपना नाम, यश एवं बँधा रोजगार छोड़कर वहां से चले आये, सो क्या तुम्हारे अपने लिये था भैया ? तुम खुद भी अपने नहीं हो। इसीलिये तुम्हारे अपने लिए ब्याह भी नहीं है। यह काकी एवं रेवा के लिए होगा, मेरे लिये होगा ?"

"तुम यहां अकेली रहोगी बहिन !"

"अकेली सो कैसे ? भगवान् रामचन्द्र के चरणों में रहूँगी। महन्त बाबा के पास उनकी अनेक देव-दासियों के बीच ! रामनाथुन के मन्दिर में फिर अकेली कैसे भैया ? मैं देवदासी हूँ। मुझे गृहस्थों के साथ न रहकर मन्दिर में रहना चाहिये, यह बात तो तुम्हारे पास आकर जैसे मैं बिलकुल भूल ही गई थी या जान-बूझकर भुला दी थी। यह थोड़े से दिन जो मैं जीवन के अन्त तक याद रखूँगी। मुझे मालूम ही क्या था, इससे पहिले कि एक भाई के साथ बहिन को रहने में क्या सुख मिलता है। उसे खिलाने-पिलाने में कितना सन्तोष एवं सुख प्राप्त होता

है। उसकी देख-भाल रखने में कैसी शान्ति मिलती है। यह दिन मैं कभी नहीं भूलूँगी, कभी नहीं।

मनहर ने चौंककर देखा—महाश्वेता का मुखमण्डल आँसुओं से तर है। महाश्वेता जल्दी से उसके आँखों से हट गई। मनहर की आँखें भी गीली हो गईं, वह अपने से बोला—

"तुम क्या सोचते हो मनहर, इस बहिन के प्रेम की छत्रछाया छोड़कर क्या दूसरी जगह सुखी रह सकोगे, शायद नहीं! पर बहिन तुझे अब यहां रहने नहीं देगी। बहिनें सदा अपने इस प्रेम को उत्सर्ग करती रही हैं। महाश्वेता भी करेगी, मुझे जाना ही होगा।

दूसरे दिन रामनौमी थी।

महाश्वेता दोपहर को मनहर के कमरे में आकर बोली—"आज रामनौमी है, इसलिये समय से बहुत पहिले मन्दिर जा रही हूँ। आरती के समय तुम मौली को लेकर जरूर आना। महन्त बाबा कहते थे, मौली के लिये मन्दिर में आने का कोई निषेध नहीं है, वह दर्शन करने आ सकती है।"

मनहर ने सिर हिलाया और वह चली गई।

सन्ध्या को वह जब मौली को लेकर मन्दिर पहुँचा, तो भीड़ बहुत हो चुकी थी। महन्त ने दोनों को प्रणाम करते देख हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया, और अपने पास के आसनों पर बैठाया। कुछ देर बाद पुकारा—"आओ बेटी महाश्वेता! आरती का समय हो गया।"

लाल पतले रेशम के झिलमिल सितारों वाली पोशाक में सजी महाश्वेता वहाँ आई। पहिले वह सीताराम के चरणों पर झुकी, फिर महन्त बाबा के पैरों को छुआ, और आरती का थाल उठा उसने आरती उतारी। इसके बाद नृत्य करने लगी। मौली ने देखा, मनहर ठीक कहता था। महाश्वेता अपने को खोकर भगवान् को रिझाती है। उसकी आँखें सीताराम के चेहरे पर लगी हैं, वह भूल गई है वह कहाँ है। उसके

रोमान्च हो आया, जब उसने देखा, रामनाथुन बिल्कुल बृजपुर मन्दिर के राधेश्याम लग रहे हैं, महन्त बाबा उसके अपने बाबा लग रहे हैं।

सोचने लगी, सब कुछ बदल जाये, अभी-अभी उसे प्रभात भी दिखेगा, उसका प्रभात···। वह नाचे जा रही है, यह सोचकर कि यहां कोई नहीं है, मैं हूँ या मेरे भगवान्···मैं उनसे आज वरदान लूंगी। मन पूछता, क्या; पर होंठ बन्द हो जाते, वह नाचे चली जा रही है, भीड़ के लोग आश्चर्यान्वित हो गये, साज वाले इतने थक गये कि पसीने से नहा उठे, महन्त और मनहर घबरा कर उठ खड़े हुए।

महाश्वेता लड़खड़ाई, मनहर ने आगे बढ़कर उसे अपनी गोद में ले लिया। महन्त चिल्ला उठे—

"डाक्टर बुलाओ, बच्ची को क्या हो गया ?"

डाक्टर आ गया, उसे अलग कमरे में ले जाया गया। महाश्वेता की परीक्षा कर डाक्टर बोला—"हार्ट फेल होने लगा था, अब ठीक हो रहा है बाबा। घबराने की जरुरत नहीं।"

इसके बाद उसने महाश्वेता को ऐन्जक्शन दिया।

बाहर भीड़ चिल्ला रही थी—"देवी महाश्वेता की जय हो।"

मौली सहमी-सी एक किनारे खड़ी सोच रही थी, मनहर ठीक कहते थे। देवी का नृत्य नृत्य है, इसमें कला है। और मेरा, उस दिन मैं बुरा मान गई थी, पर आज देखा, उन्होंने सच ही कहा था—लोग चिल्ला रहे हैं। देवी महाश्वेता की जय··· और मेरा नृत्य देखकर लोग जो कुछ कहते हैं उन शब्दों को दोहराते शर्म आती है, यह भी मनहर ने ठीक ही कहा था।

एक घण्टे बाद मनहर ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और कहा—"आओ अब चलें ?"

"जीजी कैसी हैं अब ?"

"अच्छी हैं, डाक्टर ने कहा है—उन्हें एकदम अकेला रहने दो नर्स उनके पास रहेगी। सुबह तक बिल्कुल ठीक हो जायेंगी।"

दोनों पैदल ही बंगले की तरफ चल दिये, मौली को खामोश देख मनहर बोला—"मेरी बहिन तुम्हें बहुत पसन्द करेगी मौली? उसी ने आज तुम्हें बुलाया था—बीमार न हो जाती, तो तुमसे बातें करती वह।"

"वह देवी है मैं एक नीच नर्तकी, मेरा उनका क्या मेल मनहर? मुझे तो उन्हें देख रोमांच हो आया था। सचमुच नृत्यकला इसी को कहते हैं—गजब का था उनका भाव बताना, कितना पवित्र और कैसा मोहक लगता था। मूर्ति यह सब देखकर प्रसन्न हो रही है। लगता था अभी सीताराम सिंहासन से उतर कर देवी को आशीर्वाद देंगे। ओह...यह सब मैंने आज क्या देखा? आप ठीक कहते थे मनहर, नृत्यकला बड़ी पवित्र चीज है। मैं तो सचमुच लोगों को रिझाने के लिये उसका गला ही घोट रही हूँ मैं...मैं..."

मनहर ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा–"तुम मौली, इस नर्क से निकल क्यों नहीं आती! मेरी बहिन के पास रहो आकर।"

उसने व्याकुल होकर कहा—"क्या ऐसा कभी हो सकता है! जीजी मुझे अपने चरणों के पास रखना स्वीकार कर लेंगी? मनहर, मैं बिना किसी शर्त के इस नर्क को छोड़ने को तैयार हूँ मेरे राजा!"

"सच कहो मौली? तुम्हें इस जीवन से घृणा हुई है न?"

"हां मनहर! आज तो मैं खुद अपनी आँखों में गिर गई हूँ, और इस जीवन से घृणा तो बहुत दिन से है। पर करती क्या? जबसे होश सम्हाला है, इस क्लब के मालिक के पास ही हूँ। इसी ने पाला-पोसा है, इसी ने कहा है—"नाचो मौली नाचो, यही तुम्हारा पेशा है—यही तुम्हारी जीविका है।" और मैं नाचती रही।

मौली का घर आ गया। वह उसके साथ कमरे तक गया। मौली ने

उसे बैठाया और विस्की, सोडा एवं गिलास उसके सामने सजा दिया। फिर बोली—"पियो, अभी जाने न दूंगी।"

और सोफ़े पर बिल्कुल उसके साथ सटकर बैठ गई। मनहर ने एक गिलास खत्म कर सोफ़े से पीठ टेकते हुए कहा—

"मौली···अगर मैं यहां से चला जाऊं तो?"

मौली का मुँह फक हो गया, बोली—"ऐसा भी क्या मजाक करते हो मनहर?"

मनहर ने उसको अपनी गोद में डालते हुए कहा—"मैं एक ऐसा राही हूँ मौली, जिसकी मन्ज़िल का अभी तक कोई ठिकाना नहीं—अभी तो मुझे चलना ही चलना है।"

"मैं तुम्हारे साथ-साथ चलूंगी मनहर!"

"मेरे साथ···नहीं मौली! तुम चल न सकोगी प्रिय! यहां साथ-साथ आने वाली से काम नहीं चल सकता। मुझे राह बताने वाली चाहिये। बोलो मौली! क्या मेरी मन्ज़िल की राह तुम न बता सकोगी! बोलो प्रिय।"

मौली ने उसकी आँखों में अपनी आँखें डालते हुए कहा—"आपको मैं...राह बताऊँ, इतनी शक्ति मुझमें कहां राजा! मैं तो आपके पद-चिन्हों को देखकर चल सकती हूँ जीवन भर।"

"आह···काश! ऐसा हो सकता मौली? यहां ही मुझे नींद आ जाती और मैं सो जाता। मुझे कहां जाना है? क्या करना है, मैं दुनिया में किसलिये पैदा हुआ, यह सब मुझे कौन बतायेगा मौली?"

और वह एक गीत गुनगुनाने लगा।

मौली कुछ देर उसके गीत के शब्दों में खोई रही—गीत खत्म हुआ तो बोली—"कहां जाना है, क्या करना है। दुनिया में क्यों पैदा हुए? यह मैं आपको क्या खाक बता सकती हूँ राजा! आप महान् आत्मा

हैं। कोई महान् ही आपके इन प्रश्नों का उत्तर दे सकती है, मैं एक मूर्ख नर्तकी—"

कहते-कहते उसने एक ठण्डी आह ली। मनहर बोला—"मैं तो मन्जिल खोजते-खोजते थक गया मौली ? हर राह पर, मैं चलता हूँ कि मुझे कोई न कोई वापिस लौटने पर मजबूर कर देता है। उसने भी कहा था लौट आओ'''मैं तुम्हें पुकार रही हूँ। लौट आओ, यह राह ग़लत है, पर तब मैं बढ़ता ही चला आया।" और उसने एक गिलास और खत्म कर दिया। फिर बोला—"मन भी चाहता है लौट जाऊँ''' उस मुखड़े को देखे बहुत दिन हो गये, अब और बिना देखे रहा नहीं जाता। मन में अभिमान हुआ था, जो चीज़ अपनी नहीं रही, जिसके पास इच्छा होते ही पहुँचने का अधिकार नहीं, उसके लिए वहां ही पड़े रहने की जरूरत क्या ? चलो मनहर ! कहीं दूर चलें—कुछ सेवा करें, पर...पर'''आज समझ रहा हूँ मौली ? इतना बड़ा त्याग मुझसे न होगा। चांद के साथ चकोर प्रीत लगाये बैठा है। दूर है जरूर, पर देख सकता है। मौली ! अपने प्रेमपात्र को देख न सकना, प्रेमी के लिये मौत से बढ़कर दुखदाई है।"

"समझते हो न मनहर ! तब सोच लो, मैं आपके बिना कैसे जियूँगी।"

"यही तो'''इसके लिये उपाय करना होगा ?"

मौली ने उसकी गोद में मुँह छिपा लिया।

महाश्वेता अब ठीक थी, धीरे-धीरे बाग में टहल रही थी। पूजा करके महन्त बाबा बाहर निकले तो उसके पास चले आये, बोले—

"अब कैसी तबियत है बेटी ?"

उनके चरणों पर हाथ रखती वह बोली—"अच्छी हूँ बाबा ?"

"पुण्यवती होओ, तुम्हारे भैया ने इस बीमारी में तुम्हारी बड़ी सेवा की है बेटी ! भाई-बहिनों में प्रेम होना स्वाभाविक बात है, पर मनहर

के लिये तो लगता है जैसे संसार में जो कुछ भी है, यही एक बहिन है।"

महाश्वेता की आँखें छलछला आईं। वह बोले–"कह रहे थे। आज बहिन को घर ले जाऊँ? मैंने कहा—नहीं अभी नहीं, कुछ दिन और रहने दो।"

महाश्वेता बोली—"यह भैया का अन्याय है बाबा! मैं देवदासी हूँ, मुझे मन्दिर में ही रहना चाहिए। गृहस्थों के साथ रहने का तो हमारा नियम नहीं है। अगर आप मुझे रामनाथुन के चरणों में आश्रय दें, तो फिर मैं घर क्यों जाना चाहूँगी बाबा?"

महन्त जी खुश होकर बोले–"क्या तुम सच कह रही हो बेटी? तुम्हारे भैया तुम्हें यहां छोड़ने को राजी होंगे भला।"

"भैया राजी नहीं होगे बाबा! पर वह रोक भी नहीं सकेंगे, क्योंकि मां ने मुझे कृष्णार्पण कर दिया है, मैं देवदासी हूँ—मन्दिर में ही मुझे रहना चाहिये, ऐसा ही नियम है।"

"तब रहो बेटी! सदा सदा रामनाथुन के चरणों में रहो।"

"पर बाबा! मेरे थोड़े से प्रश्नों के उत्तर देवें।"

"पूछो बच्चा?"

"आपकी कृपा से मैंने कितने ही ग्रन्थ पढ़े हैं, रामायण और गीता का भी अध्ययन किया है। परन्तु सब जगह एक ही बात लिखी पाई है, भगवान् प्रायश्चित्त करने से बड़े से बड़े अपराधी को भी क्षमा कर देते हैं। और उसे अपना भक्त कहकर सम्बोधन करते हैं। क्या यह सच है बाबा?"

"हाँ बेटी? जैसे माँ-बाप अपनी अवारा सन्तान पर अधिक मोह करते हैं। उसी तरह भगवान् भी पापी प्राणियों पर शीघ्र दयालु हो जाते हैं।"

"तब क्या कारण है बाबा कि जो भगवान् करते हैं उसे मनुष्य

नहीं कर सकता। अगर नहीं कर सकता, तब व्यर्थ पूजा, दया का ढोंग क्यों करता है, कहिये तो ?"

अचकचा कर महन्त बोले—"मैं समझा नहीं बेटी ?"

"मौली नर्तकी को आप जानते हैं बाबा ?"

"उसे ही नहीं जानूंगा बेटी ? इस शहर के कितने ही नौजवानों का खून चूसकर ठुकरा देने वाली उस लड़की को मैं अच्छी तरह जानता हूँ महाश्वेता !"

"यही पापकर्म अगर वह छोड़ना चाहे बाबा, तो क्या आप उसे हाथ का सहारा देंगे, अपने पवित्र चरणों में उसे आश्रय देंगे ?"

"यहाँ मन्दिर में, इन सब देवदासियों के बीच, उस नर्तकी को ? यह क्या कहती हो बेटी ?"

"वही जो आप से अभी सुन चुकी हूँ बाबा ! अभी तो आपने कहा था, भगवान् पापी प्राणियों पर शीघ्र सदय हो जाते हैं, मौली भी तो वही पापी प्राणी है देव !"

महन्त सुन्न खड़े उसका मुंह ताकते रहे। वह हाथ जोड़कर बोली—"दया करो उस पर बाबा ! वह उस नर्ककुण्ड से निकलना चाहती है। आप हमारे धर्मगुरु हैं, उसको हाथ का सहारा दीजिये, यह आपका कर्तव्य है। वह पापिन है, इसलिये भगवान् के चरणों में आश्रय पाने का हक मुझ से अधिक रखती है।"

"परन्तु लोग···"

बात काटकर वह बोली—"लोग···उन्हें आप जो रास्ता बतावेंगे उस पर आँख मूँद कर वह चलते रहेंगे, मौली को निराश मत करो बाबा ? वह···।"

"अच्छा बेटी ! मैं...मैं तुम्हारी इस बात को स्वीकार करता हूँ। पूर्णिमा की रात को उसकी शुद्धि कर, मैं उसे मन्दिर में आश्रय दूँगा।"

महाश्वेता उनके चरणों में झुक गई।

: १७ :

बरामदे में एक आराम कुर्सी पर पड़ा प्रभात, सामने समुद्र की छाती पर डूबते हुए सूर्य का सुन्दर दृश्य देख रहा था। वह बड़ा-सा आग का गोला, जैसे तीन क्षणों में उस लहराते हुए समुद्र में गोता लगा गया हो।

ताराचन्द ने आकर कहा—"यह भी बड़ा सुन्दर दृश्य होता है यहां भैया ?"

प्रभात सीधे बैठता बोला—"हां तारी ? मैं तो इस दृश्य को देख मुग्ध हो जाता हूँ। कहो पता लगा उस खूनी का।"

"और क्या दादा ? यह हो कैसे सकता था, इन्सपेक्टर ताराचन्द खुद आकर खोज करें और खूनी न मिले।"

"कहाँ मिला ?"

"यहीं एक स्टूडियो में। कमबख्त तबलची बना बैठा था।"

"तो अब इसे सुचेतगढ़ ले जाओगे ?"

"और क्या दादा ? चालान तो वहीं होगा ?"

"हूं···पर तारी ! वासुदेव के खूनी का पता तुम लोग आज तक नहीं लगा सके।"

ताराचन्द स्थिर स्वर से बोला—"मैंने उसे पा लिया था प्रभात दादा ! पर कई बातें ऐसी थीं कि मुझे उसे छोड़ देना पड़ा।"

"सबूत नहीं मिला होगा ?"

"सबत तो ऐसा पा गया था दादा कि सन्देह की गुन्जायश ही नहीं रह गई थी, पर···"

दीनू चाय रखकर चला गया, दोनों ने अपना-अपना प्याला उठा लिया। तारी को चुप देख प्रभात बोला—"ठीक से ब्यान करो तारी !"

तारी ने प्याला मेज पर रखने के बाद जेब से पर्स निकाला—फिर मुस्कराते हुए कहा—"असल पेशावरी बच्चा कभी झूठ नहीं बोलता दादा ! जब मल्लाहों ने कहा था, वासुदेव के साथ एक सुन्दर लड़की थी तो मैंने उन लोगों की बात पर यकीन नहीं किया था जरूर, पर दिल में मेरे अजीब-सी हलचल मची थी। सन्ध्या को मैं घाट पर जाकर कुछ निशान तलाश कर रहा था तो देखा—एक जगह सोने के घुंघरुओं का गुच्छा पड़ा है।"

"तो इससे क्या ? घाट पर अनेक स्त्रियाँ स्नान करने आती हैं, किसी बेचारी का गिर गया होगा।"

"पर दादा ! वह धुंघरु किसी के पैर की चुटकी के हैं, और आम औरतें पैरों में सोना नहीं पहनतीं, जो पहनती हैं, वह केवल जमींदार-घर की होती है या रानियां, और···और सुचेलगढ़ में ऐसा एक ही घर है, और उस घर में महिला भी एक ही है।"

"इसका अर्थ···तुम मुरला पर सन्देह करते हो।"

"सन्देह···नहीं···यह पक्की बात है दादा ? बीबी ने ही वासुदेव को डुबो दिया है, और नाव को उस झाड़ी में फंसा कर, खुद तैर कर दूसरे घाट से नौ-दो ग्यारह हो गई थीं।"

प्रभात चौंक उठा—मुरला की उस दिन की पानी से सराबोर मूर्ति उसके सामने आगई, जिसे अपनी कार में बैठाकर वह घर छोड़ आया था। ताराचन्द ने अपने पर्स से उन घुंघरुओं का गुच्छा निकाल कर प्रभात के हाथ पर रख दिया, प्रभात ने उसे पहचान लिया, पर वह बोला—"भाई तारी ! मैं तो लक्ष्मण नहीं हूँ। जो मुरला के पैरों के जेवर को चटपट पहचान लूंगा, तुम पहचानते ही होंगे ?"

"हां, मैंने इन्हें उनके पैर की चुटकी से मिलाकर देख लिया है।

उनके पैर की चुटकी के, घुंघरु गायब हैं।"

"तुमने पूछा नहीं?"

"पूछा था, बोलीं—जाने कहाँ गिरे, यह घुंघरु आप ही रख दादा, और मिलने पर जीजी को दे दें। एक दिन उन्होंने आपके सामने मेरा मजाक उड़ाया था, यह तारी हाकी प्लेयर है पुलिस आफिसरी क्या जाने? इससे समझ जायेंगी, उनका भाई भी कुछ है।"

प्रभात ने उसे शाबाशी देते हुए कहा—"शाबाश! अब तो मुरला को तुम्हरी धाक माननी होगी।"

ताराचन्द उठ खड़ा हुआ, बोला—"तो अब चलता हूँ दादा, ट्रेन का समय हो गया।"

"अच्छा जाओ, फिर कब मिलना होगा?"

"देखिये, चाहे परसों ही लौट आऊँ, काम निकलने पर है—नमस्ते।"

"नमस्ते! शिवाला से नहीं मिले?"

"हास्पिटल में ही मिल आया था दादा।" कहते हुए तारी चला गया। प्रभात ने कुर्सी की पीठ से पीठ टेकते हुए एक लम्बी श्वास ली।

: १८ :

महन्त बाबा ने दूर-दूर के गाँवों में भी सन्देश भेज दिया कि महादेवी महाश्वेता नर्तकी मौली की शुद्धि करके उसे रामनाथुन के मन्दिर की देवदासी बना रही है। पूर्णिमा वाले दिन उसकी शुद्धि होगी।

कुछ पुराने विचारों के लोगों ने इस पर ऐतराज उठाया, पर नवयुवकों ने उनकी बात को माना नहीं और शुद्धि के लिए पूर्णिमा की रात ही निश्चित हो गई।

शुद्धि की तैयारियां धूम-धाम से होने लगीं। ढेरों मिठाई बन रही थी प्रसाद के लिये। भिखमंगों को वस्त्र देने के लिये ढेरों कपड़ा खरीदा गया था।

मनहर चुपचाप उदास दृष्टि से यह सब देखता रहा। महाश्वेता से उसका फैसला हो गया था। मौली की शुद्धि के बाद वह बृजपुर लौट जायेगा। मौली से यह जाने की बात छिपाई गई थी।

रात आधी से ज्यादा बीत गई थी। गीता बन्द करते हुए महाश्वेता बोली—"समय बहुत हो गया, अब सो रहो मौली! बाकी कल सुनना, कल पूर्णिमा है, तुम शुद्ध होकर देवदासी बनोगी, मनुष्य से बहुत ऊंची, देवता की अपनी वस्तु। फिर गृहस्थों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, तुम उनके घर आ-जा नहीं सकोगी।"

मौली को जैसे काठ मार गया हो। कांपते कण्ठ से बोली—"मैं किसी गृहस्थ के घर जाना ही क्यों चाहूँगी देवी? पर मनहर के बँगले तक तो जा सकूँगी न?"

महाश्वेता ने कठोर स्वर से कहा—"नहीं।"

व्याकुल होकर मौली बोली—"नहीं क्यों देवी ? आप भी तो वहाँ रहा करती थीं—"

"तब मैं मजबूर थी मौली। परन्तु जब से मेरा रहने का प्रबन्ध मन्दिर में हो गया है, मैं एक बार भी भैया के बँगले पर नहीं गई और फिर वह मेरे भाई हैं, उनके पास मेरा रहना क्षम्य है।"

मौली के माथे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बून्दे झलकने लगीं। वह सूखे कण्ठ से बोली—

"न...यह...यह तो मुझ से नहीं होगा देवी !"

महाश्वेता ने उसके पीले मुख पर अपने लम्बे नेत्र जमाते हुए कहा—

"मौली ! तुमने जिस तरह अपना घृणित पेशा छोड़कर सत्य के पथ पर पाँव रखा है, उससे एक मैं और भैया ही नहीं, सारा मडगाँव तुम्हें धन्य-धन्य कह रहा है।

"कुछ बूढ़े लोगों ने इस पर ऐतराज उठाया था तो मडगाँव के नवयुवकों ने कहा था—मौली पवित्र होने जा रही है, वह नर्तकी है तो क्या हुआ, उसकी आत्मा महान् है। उसके इस रास्ते पर जो कोई रोड़ा अटकावेगा, हम उसे इसका मजा चखा देंगे। और आज तुम कह रही हो, यह मुझसे न होगा। तो तुम नवयुवकों के मन तोड़कर यह बता देना चाहती हो कि नर्तकी कभी देवी नहीं बन सकती। बूढ़े ठीक कहते हैं, नारी पतिता होने के बाद फिर सम्हल नहीं सकती, छी:···मौली, अपनी पहली और अब की दशा का गौर से ख्याल करो। पहिले जिन पुरुषों को रिझाने के लिये तुम नृत्य करती थीं, वह चांदी के चन्द टुकड़े तुम्हारी तरफ़ किस तरह फेंक देते थे। वही पुरुष अब तुम्हें देवता को रिझाते देख किस श्रद्धा से तुम्हारे सामने झुक जायेंगे, और तुम्हारे इन चरणों को हाथ लगा कर धन्य होंगे।"

इतना कहकर महाश्वेता चुप होगई, यह देखने के लिये कि उसकी बातों का असर उस पर क्या हुआ।

मौली बोली—"आप ठीक कह रही हैं जीजी, पर मेरी आज की दुनिया में एक ऐसा आदमी आ गया है, जिसे पाना—मैं भगवान् को पाने से कहीं ज्यादा अच्छा समझती हूं। उसके बिना मैं पल भर भी जीवित नहीं रह सकती, उसके गीतों में मेरी जिन्दगी की सांसे हैं देवी! देवदासी तो क्या, मैं उसे छोड़कर वैकुण्ठ की राजलक्ष्मी बनने को भी तैयार नहीं।"

महाश्वेता अवाक् हो उसका मुंह ताकने लगी। उसे भी अपने हृदय में किसी का मुंह दिखाई दिया। दर्द से उसका चेहरा स्याह पड़ गया, होंठ नीले हो गये, पर कुछ क्षणों के लिये, तत्काल ही वह सम्हल गई। बोली—"परन्तु मौली, वह आदमी तो किसी एक का नहीं हो सकता, बहिन। वह तो सबका है, उसे बांधकर एक जगह रखना उतना ही कठिन है, जितना कि किसी तेज धारा वाली नदी को रोकना।"

मौली की आंखें भर आईं, बोली—"मैं दावा नहीं कर सकती जीजी, उस धारा को बांधने का मुझे प्रयत्न तो करने दो।"

महाश्वेता हँसी, बोली—"मेरी बहिन, अपने स्वार्थ के लिये जब नारी चारों तरफ़ से आंखें बन्द करके चलती है, तो लोग छीः···छीः कर उठते हैं। सुना है देवताओं का भी तब सिर झुक जाता है। क्यों भला? केवल इसलिये कि नारी ने मां दुर्गा की जाति से जन्म लिया है, वह पालनहारी है—किसी का विनाश उसके हाथों होना तमाम नारी जाति के लिये कलंक की बात है। भैया दूसरों के लिये ही अब तक सब कुछ करते रहे हैं, जिस लड़की को उन्होंने प्यार किया है, वह जैसे आज भी उन्हें यही प्रेरणा दे रही है। जो लड़की इन्हें प्यार करती है वह मानो धीरता से खड़ी इनके इधर-उधर भटकने का तमाशा देख रही है। भैया अपनी मन्जिल ढूंढ रहे हैं, पर उन्हें मिलती नहीं—मिलेगी भी नहीं मौली! वह लड़की ही उन्हें एक दिन राह बतावेगी, ऐसा उसका दावा है। इन्हें जाने दो मौली! वह इनकी राह पर आंखें बिछाये

बैठी है, वह एक तपस्विनी है मौली ?"

मौली सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही, फिर बोली—"देवदासी होने के बाद में उनसे मिल न सकूँगी, न उनके घर तक जा सकूंगी, क्यों देवी ?"

"हाँ।"

"तो केव आज की रात भर मैं मौली हूँ—मुझे यह रात उनके पास बिताने की आज्ञा दो देवी ! मैं अपने आँसुओं से अपने देवता के चरण पखारूँगी। और फिर उन्हीं आँसुओं की धार में अपने देवता को विसर्जन करने का प्रयत्न करूँगी, मुझे जाने दो देवी !"

"नहीं ! उपवास शुरू हो जाने के बाद, मन्दिर से बाहर जाने का नियम नहीं है।"

"सो मैं जानती हूँ देवी ! पर आप नारी हैं, नारी की इस व्यथा को समझने का प्रयत्न कीजिये। सोचिये, अगर आप किसी को प्यार करने लग जायें तो ?"

महाश्वेता "मौली" कहते हुए आसन से उठ खड़ी हुई। फिर बोली—"तुम···तुम मुझे यह शाप दे रही हो बहिन ?"

मौली धम्म से उसके पैरों पर गिर पड़ी, फिर बोली—"मुझे क्षमा करो जीजी, मैं पागल हो गई हूँ।"

महाश्वेता ने उसे खड़ा किया, फिर उसके माथे का चुम्बन करते हुए कहा—"जाओ, अपने प्रियतम से सदा के लिये बिदा ले आओ। तुम ठीक कहती हो, मैं नारी हूँ, मुझे नारी के हृदय की व्यथा का ज्ञान स्वाभाविक है। तुम जाओ मौली, बाबा पूछेंगे, तो मैं जवाब दे लूँगी।"

मौली भाग चली। उसी तरह, जिस तरह नदी समुद्र की ओर भागती है।

मनहर अपने कमरे में एक कुर्सी पर पड़ा, अपने भविष्य के बारे

में सोच रहा था। गुरबी और मौजीराम सो चुके थे।

मनहर आप ही आप कह उठा—"आखिर फिर कब मैं अपनी असली मन्जिल पाऊँगा। हर बार, हर मन्जिल से मुझे कब तक इसी तरह लौटते रहना होगा? महाश्वेता क्या अब सदा यहाँ ही रहेगी? मुझ से···मुरला से···प्रभात से···बृजपुर से···सबसे अलग, वह अकेली यहाँ रह सकेगी क्या? और···मौली···ओह···उसका हृदय चूर-चूर हो जायेगा। बेचारी लड़की···एक ऐसे से मोह लगा बैठी, जो अपना सब कुछ खत्म करके बैठा था।"

इसी समय मौली ने द्वार पर हाथ मारा और कहा—"दरवाजा खोलो मनहर! मैं हूँ मौली?"

मनहर ने दरवाजा खोल दिया। मौली अन्दर आ गई। मनहर दरवाजा बन्द करता हुआ बोला—"तुम मौली? यहां? कल तो तुम्हारी शुद्धि है न?"

मौली सिसकती हुई उसके पैरों से लिपट गई। वह गुम-सुम खड़ा रहा। मौली बोली—"नहीं···नहीं···नहीं! मैं ऐसे स्वर्ग में नहीं जाना चाहती मनहर, जहाँ आपको न पा सकूं। मेरा यह नर्क ही अच्छा, जहाँ जब चाहूँ आपको पा तो सकती हूँ।"

मनहर ने उसे उठाकर अपनी बाहों में कस लिया फिर उसका मुंह चूमते हुए कहा—"मौली! देवी ने मुझे वापिस लौट जाने की आज्ञा दी है। मुझे जाना ही होगा प्रिय! परन्तु अगर तुम इतनी दुखी हो रही हो तो···मैं नहीं जाऊँगा। रोओ मत, बातें करो मौली, शान्त हो, मैं नहीं जाऊँगा।"

मौली के आँसू सूख गये। मनहर ने उसे सोफ़े पर बैठा दिया। फिर उसके पास बैठ उसके सिर को अपनी छाती से लगा लिया। मौली सोच रही थी—जीजी ने कहा था, अपने स्वार्थ के लिये जब नारी चारों तरफ से आंखें बन्द करके चलती है तो लोग छीः छीः कर उठते हैं, देवताओं

का सिर भी उसकी इस बात से लज्जा से झुक जाता है, क्योंकि नारी पालनहारी है। उसने मां दुर्गा के अंश से जन्म लिया है। किसी का विनाश उसके हाथों होना तमाम नारी-जाति के लिये कलंक की बात है।"

उसका मन फिर दृढ़ होने लगा, मनहर बोला—"तुमने जवाब नहीं दिया मौली ?"

वह बोली—"देवी की आज्ञा हम दोनों नहीं टाल सकते मनहर ! और जो कुछ भी वह कर रही हैं हम दोनों की भलाई के लिये कर रही हैं। पर मनहर ! मैं इसे सहन कैसे करूँगी। मैं मर जाऊँगी राजा !"

"पर मैं नहीं जाऊँगा मौली !"

"सुना है आपकी बूढ़ी मां राह देख रही होगी–वह लड़की··· उसका दावा है, वह आपकी मन्जिल की राह बताएगी।"

मौली ने मनहर के वक्षस्थल में अपना मुँह छिपा लिया और फिर सिसक उठी। मनहर ने उसका आँसुओं से तर मुख ऊपर उठाया और कहा–"अपने को सम्हालो मौली !"

वह बोली–"अपने को सम्हालने का समय बीत गया मनहर ! मैं बीच मँझधार में डूब रही हूँ। बिना सहारे प्राण बचाने का कोई उपाय नहीं है, मुझे डूबना ही होगा।"

मौली के सिर पर हाथ फेरते हुए वह बोला–"मौली ! तुम्हें मुझ पर आज विश्वास क्यों नहीं हो रहा है। मैं कहता हूँ, अगर तुम इतनी व्याकुल हो, तो मैं हरगिज वापिस घर नहीं जाऊँगा। लो, अब चुप हो जाओ।"

मौली ने आंसू पोंछ डाले, फिर कहा–"तुम्हारी इस बात से जैसे मेरे प्राण लौट आये हों मनहर ! मैं बड़ी सुखी हुई। जब से तुम्हें देखा है, मुझे यही लगता रहा है जैसे तुम्हें खोकर मैं बचूंगी नहीं, मैं देवदासी होने के बाद आपको फिर छू नहीं सकूंगी राजा ! तब···आपकी मां··· की आत्मा को क्यों कष्ट दूँ···लौट जाओ मनहर ! लौट जाओ ! मां के

लिये, अपनी उस तपस्वनी के लिये जो आपकी राह पर आंखें बिछाये बैठी है।"

मनहर ने इसके उत्तर में केवल एक ठण्डी सांस ली। मौली बोली—"जिसे प्यार करते हो मनहर, उसे पाने के सब रास्ते बन्द हो चुके हैं क्या ?"

"हां मौली, इसीलिये तो तुम्हारी इस व्यथा और दर्द से इतनी तकलीफ होती है मुझे। मैं सोचता हूँ, जिस दर्द से मेरे प्राण होठों पर रहते हैं कम से कम ऐसा दर्द अपनी ओर से मैं तो किसी को न दूं। तभी मैंने कहा था मौली! तुम कहो तो मैं नहीं जाऊंगा।"

"मैं इतने से ही जी गई मनहर! सदा इसे सोचकर खुश होती रहूँगी। मैं चाहती तो उन्हें रोक सकती थी, मैं रोकती तो वह कभी नहीं जाते। एक गीत गाओ!"

"कौन-सा सुनोगी—"

"कोई, जो आपको प्यारा हो!"

मनहर ने गीत गाया! गाना क्या था मौली के जीवन की एक कहानी थी। मौली के कलेजे की धड़कन जैसे बन्द हो रही हो, उसका मुंह पीला पड़ गया। गीत खत्म होने पर मौली व्याकुल होकर बोली—"नहीं मैं ऐसा नहीं होने दूंगी मनहर! मैं मामूली नर्तकी हूँ—नरक का कीड़ा बनकर ही रहूँगी। महान् बनने की अभिलाषा...अपने इस दिल से निकाल फेंकूँगी। मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी। हरगिज हरगिज नहीं जाने दूँगी।"

मनहर उसके स्वर से व्यथित हुआ बोला—"मैं तुम्हें दुखी करके कभी जाना नहीं चाहूँगा। जाओ...मुँह धोलो मौली!"

"अब मैं जाती हूँ, आप आराम करें। रात रही कहां ?"

मनहर ने हाथ की घड़ी पर दृष्टि डालते हुए कहा—"चार बज

चुके हैं सोकर क्या होगा मौली ! बैठो, सुबह होने तक मेरे पास रहो। फिर जाने कब मिलना हो।"

दोनों बातें करने लगे।

महाश्वेता ने मुँह उठाकर कहा—"तुम आ गई मौली ?"

"हां देवी ?"

उसके मुँह की तरफ देखते हुए वह बोली—"स्नान आदि से निपटकर आई हो, बैठो।"

सामने के आसन पर मौली बैठ गई और क्षण भर बाद सूखे कण्ठ से बोली—"देवी ! आज भी मेरा मन स्थिर नहीं हुआ, ऐसे अस्थिर मन से देवता के सामने जाकर शुद्धि का ढोंग करना क्या उचित होगा ?"

"शायद नहीं होगा। पर इसके लिये जवाब ही क्या है मौली ?"

यह कहते हुए महाश्वेता ने उसके उतरे हुए चेहरे की तरफ देखा। आँखें लाल थीं, होठ सूखे थे। मौली बोली—"विश्वास करो जीजी, उनके बिना मैं एक दिन भी जीवित न रह सकूँगी।"

महाश्वेता कठोर स्वर से बोली—"तब मर जाना, मैं रोकूँगी नहीं। पर इस समय भैया को हँसते-हँसते बिदा करो। उनको यहां रोक रखना कई पर अन्याय करना है मौली ! तुम नारी हो। नारी की सहनशक्ति की तो तुलना नहीं है। बड़े से बड़े उत्सर्ग को हँसते-हँसते सह लेना नारी के लिये ही सम्भव है। इसीलिये लोग धरती को भी नारी कहते हैं, तुम क्या इन सब बातों को अब झूठ कर देने पर तुली हो अपने मन को मजबूत करो बहिन ! मैं तो सोचती हूँ, जब तुम दृढ़ हो जाओगी तो तुम्हें उस जगह से हिलाना मनहर भैया से भी सम्भव न हो सकेगा।"

"मैं-मैं···स्थिर होने का प्रयत्न करूँगी देवी !"

और वह उठकर अपनी कोठरी में चली गई। सारा दिन वह तख्त पर पड़ी पड़ी रोती रही।

सन्ध्या को मन्दिर की मुख्य परिचारिका ने आकर कहा—"स्नान का समय हो गया देवी !"

मौली चौंककर उठ खड़ी हुई। परिचारिका ने आज पहली बार नर्तकी मौली को 'देवी' कहा था। क्यों ? मौली समझ गई थी। आज नर्तकी मौली का अन्त हो गया। अब वह मनुष्य से ऊँची रामनाथन के मन्दिर की पवित्र देवदासी है।

उठकर उसने स्नान किया। पवित्र पीताम्बर की सितारों जड़ी पोशाक पहनी। फूलों से उसका जूड़ा सजाया गया। फिर फूलों के ही गहने सारे शरीर में पहनाये गये। माथे पर रामधनुष का टीका बना दिया गया। सुन्दर छोटा-सा वह पीला गोइनीज मुखड़ा अत्यधिक आकर्षक बन गया।

जब वह मन्दिर में गई तो उसको देख सब ठगे-से रह गये। पहिले भगवान् श्रीराम-सीता के पैरों पर वह गिरी। फिर महन्त बाबा के, फिर महाश्वेता के। महन्त बाबा ने कहा—"कल्याणमयी हो।" महाश्वेता ने कहा—"दृढ़ बनो—यशस्विनी हो।"

मौली से पहिले भगवान् की पूजा कराई गई। बड़े-बड़े पण्डितों ने मन्त्र उच्चारण कर मौली को शुद्ध किया। फिर उसके हाथ से सब लोगों को खीर बाँटी गई। मनहर एक खम्भे से पीठ टेके खड़ा सबकी तरफ देख रहा था। मौली के उदास उतरे चेहरे पर जब उसकी दृष्टि जाती थी तो उसके हृदय पर हथौड़ा-सा लगता था। मुंह से निकल जाता—"अभागी लड़की किस तरह अपने को लुटा बैठी।"

मौली खीर-पूरी का प्रसाद दर्शकों को बांटते-बांटते उस जगह पहुँची। जहाँ मनहर खड़ा था। मौली का सारा शरीर सिहर उठा—मन विरोध करने लगा। वह व्याकुल होकर महाश्वेता की तरफ देखने लगी। वह उसके पास आकर बोली—

"दो देवदासी ! अपने शुभ एवं पवित्र करों से मेरे भैया को भी

प्रसाद दो। वह केवल इसीलिये इस उत्सव में आये हैं। आगे बढ़ो देवी!"

'देवी' शब्द ने जैसे फिर मौली को मनहर से कोसों दूर पटक दिया हो। उसने अपने को सम्भाला और मनहर की जुड़ी हुई अंजलि में प्रसाद रख दिया, साथ ही दो बड़े-बड़े आंसू मनहर की ऊंगलियों पर गिर पड़े। वह चौंक उठा, मौली आगे बढ़ गई। मनहर क्षण भर तक स्तब्ध उन दोनों बूंदों की तरफ ताकता रहा, फिर उसने बड़ी श्रद्धा से वह आँसू अपने नेत्रों से लगा लिये, और एक ठण्डी सांस ली।

इसके बाद महाश्वेता का नृत्य शुरू हुआ। लोग 'धन्य-धन्य' कह उठे। उस समय मौली सोच रही थी—"मेरे मनहर! अब मैं तुम्हें नहीं छू सकती···देवी कहती है, मैं नारी हूँ, जैसे नारी के न हृदय होता है, न हाड़-मांस, न दर्द हो सकता है, न चोट लग सकती है। हे भगवान् रामनाथन! मेरी इस पीड़ा का हरण करो···नहीं तो मैं मर जाऊँगी।"

महाश्वेता का नृत्य समाप्त हो गया था। महन्त ने पुकारा—"भगवान् के सामने नृत्य करो देवी!"

मौली चौंक पड़ी और धीरे-धीरे पैर रखती हुई देवता के सामने आ गई। साज वालों ने साज बजाना शुरू किया, मौली की आंखें देवता से हटकर मनहर पर जा लगीं।

गाने वाले ने गाया—

नाच-नाच कर तुझे रिझाऊँ
फिर भी क्यों न पाऊँ···कैसे मन समझाऊँ।

मौली के शरीर की थिरकन तक मानो मनहर से पूछने लगी, बोलो, मेरे मनहर, बोलो—फिर भी मैं तुम्हें क्यों न पा सकी?

उसका आज का नृत्य देखकर सब चकित हो गये। मनहर सोचने लगा—मौली को आज एकदम नये रूप में देख रहा हूँ, वह सचमुच धन्य हुई है।

भीड़ चिल्लाई—धन्य हो देवी, धन्य हो।

महाश्वेता ने हाथ उठाकर कहा—"धन्य हो देवदासी, अब बस करो, तुमने देवता को प्रसन्न कर दिया। धन्य हो देवी!"

मौली पसीने से नहा उठी थी। वह देवता के पास जाकर उनके चरणों से लिपट गई।

महन्त ने उसके माथे पर अपना शीतल हाथ फेरा।

आज मनहर अपने घर वापिस जा रहा है। उसके सब मिलने वाले उदास हो गये हैं। महाश्वेता भी बड़ी व्याकुल हो उठी है। अपने आँसू आँखों में ही पीकर वह अपने मन से कहती है—तेरे मन में यह मोह कैसा? तू देवदासी है, देवता की अपनी वस्तु! सावधान हो महाश्वेता! दुनिया में कोई आता है, कोई जाता है। उससे तुम्हें क्या?

फिर वह घुटनों में मुँह छिपाकर रो उठी और बोली—"पर···पर यह मेरा भैया है, मेरा भैया, जिन्होंने सदा मुझ पर सहोदरा की भाँति स्नेह किया है। इनसे अलग होना क्या आसान बात है। भगवन्, मेरा कलेजा फटा जा रहा है। ओह···फिर मैं कब देखूँगी अपने भैया का चाँद-सा मुंह।"

परिचारिका ने आकर कहा—"सब कुछ तैयार होगया देवी! सामान मोटर में लगा दिया गया है। भाई साहब प्रणाम करने आ रहे हैं।"

महाश्वेता ने मुंह पोंछ डाला। फिर कहा—"फल–खाना–मिठाई रखना तू भूली तो नहीं न?"

"नहीं देवी।"

"अच्छा, उन्हें भेज दे।"

मनहर अन्दर आ गया। महाश्वेता ने खिड़की से बाहर मुंह करते हुए कहा—"जा रहे हो भैया।"

"हाँ महाश्वेता।"

"तुमने रेवा को पत्र तो लिख दिया है न ?"

"नहीं महाश्वेता ! मैंने यहाँ आकर उन लोगों को कभी पत्र नहीं लिखा—केवल मुरला को जब-तब पत्र लिखता रहा हूँ। उसी में पहिले पहल एक पत्र रेवा को लिखा था।"

"मुरला जीजी उत्तर देती थीं।"

"मैंने किसी पत्र में अपना पता-ठिकाना नहीं लिखा कभी, उत्तर कहाँ से देतीं। बहुत सम्भव है बहिन, काकी अब जीवित ही न हों और रेवा···का व्याह हो चुका हो।"

महाश्वेता ने भरे हुए गले से कहा—"मुझे विश्वास है भैया ! काकी अच्छी तरह होंगी, और रेवा भी तुम्हरी बाट जोहती बैठी होगी। उस तपस्वनी को मैं अच्छी तरह जानती-पहचानती हूँ। वह लोहे की तरह सख्त है। हर एक उसे मोड़ने-तोड़ने की शक्ति नहीं रखता, जाओ भैया ! सब मंगल होगा।"

मनहर की आँखों से झर झर करके आँसू झरने लगे। बोला—"मेरे पत्रों का उत्तर तो दोगी न बहिन ! आज इस परदेस में तुम्हें इस तरह अकेले छोड़कर जाते देख मेरा कलेजा फटा जा रहा है महाश्वेता।"

महाश्वेता ने काँपती वाणी से कहा—"मैं देवदासी हूँ भैया ! मेरे लिये तुम्हें मोह करना शोभा नहीं देता, और···और मुझे भी······मेरा आशीर्वाद सदा सदा तुम्हारे साथ रहेगा। गरीबों के लिये तुम्हारे दिल में जो दर्द है, वह हमेशा ऐसा ही रहे। तुम सदा इसी तरह दूसरों को बनाए रहो, और मैं तुम्हारी कीर्ति सुनकर आनन्दविभोर होती रहूँ, ईश्वर तुम्हारे सहायक रहें।"

उसके पैरों पर हाथ रखते हुए मनहर बोला—"तो अब जाता हूँ बहिन ?"

महाश्वेता अब अपने को और नहीं रोक सकी। वह भूल गई कि वह

रामनाथुन के मन्दिर की मुख्य देवदासी है। उसके लिये किसी के प्रति मोह करना लज्जाजनक है।

वह घूमकर 'मेरे भैया' कहती हुई एक नन्हीं बालिका की तरह मनहर की छाती से चिपट गई। उसकी सिसकियाँ सुनकर मनहर की छाती फटने लगी। इधर-उधर खड़ी परिचारिकायें दोनों भाई-बहिन को रोते देख, रोने लगीं। बरामदे में खड़े महन्त बाबा की आँखें बरस पड़ीं। उन्होंने दोनों के पास आकर, दोनों को अलग करते हुए कहा—"शान्त हो बच्चो! इतना ज्यादा मोह में पड़ना उचित नहीं। अपने भैया को अब जाने दो देवी! जहाज के चलने में अब ज्यादा देर नहीं है! मनहर बाबू! अपनी बहिन को समझाने के बजाय तुम तो खुद बच्चों की तरह रोने लगे, चलो बेटा! अब समय हो गया!"

इसी वक़्त मौली की परिचारिका ने आकर कहा—"देवी सी पोर्ट तक साथ जाने की आज्ञा चाहती हैं।"

महन्त बाबा ने चौंककर महाश्वेता की तरफ देखा। महाश्वेता बोली—"वह जानती है बाबा! देवदासी का मन्दिर से बाहर कहीं आना-जाना अनुचित है। तो भी···भैया के जाते ही उनका सब कुछ खत्म हो जायेगा बाबा! उसे जाने दो।"

महन्त बाबा ने आज्ञा दे दी। मौली मनहर के साथ सीपोर्ट तक गई। महाश्वेता को महन्त बाबा अपने कमरे में ले गये, और गीता सुनाने लगे।

उधर जब मोटर सीपोर्ट पर पहुँची, तो अभी जहाज़ चलने में काफ़ी देर थी। मनहर ने सामान जाकर केबुन में रखवाया और फिर जहाज से उतरकर मौली के पास आ खड़ा हुआ। मौली पीली सादी साड़ी पहने थी, फूलों का सुन्दर जूड़ा किये।

मनहर चुपचाप उसके पीले उतरे चेहरे की तरफ़ देखता रहा,

फिर बोला—"मौली ! मैं फिर आऊँगा, तुम इतनी उदास न हो ! मुझे हँसते-हँसते विदा करो।"

मौली हँसी—बड़ी प्यारी थी उसकी वह हँसी। मनहर जब तक जीवित रहेगा मौली की इस हंसी को कभी नहीं भूलेगा। वह बोली—"अपने प्राणों को विदा करते वक्त हँसना क्या मुश्किल नहीं है मनहर ?"

"पर मैं फिर आऊँगा मौली !"

"आना···जरुर आना मनहर ! जाओ···राजा ! जहाज ने सीटी दे दी।"

मनहर ने उसके हाथों को मुट्ठी में दबाकर छोड़ दिया और भरे दिल से जहाज पर चढ़ गया। वह डेक पर खड़ा रुमाल हिलाता रहा, मौली एक खम्भे से पीठ टेके अपना आंचल उड़ाती रही। जहाज दूर होता चला गया इतना कि आँखों से ओझल हो गया। पर मौली उसी तरह आंचल उड़ाती रही गुमसुम। देखने वाले चकित होकर उसकी तरफ़ देख रहे थे। ड्राइवर और परिचारिका आये और बोले—"देवी अब चलें, जहाज तो चला गया।"

मौली चौंककर बोली—"ऐं···चला गया···सब कुछ चला गया··· मेरा।"

और वह लड़खड़ाकर धरती पर आ रही। चारों तरफ़ से लोग इकट्ठे हो गये। मौली को मोटर में उठाकर डाला गया। मन्दिर पहुँच कर ड्राइवर ने महन्त बाबा को इतला दी। मौली उतारी गई, डाक्टर कई आये। सबने सिर हिलाकर एक ही बात कही—मौली चली गई।

महाश्वेता ने पागलों की तरह हँस कर कहा—"बड़ी जिद्दी लड़की है। मैंने इतना प्रयत्न किया, पर वह भैया के साथ गये बिना नहीं मानी।"

महन्तबाबा ने घबराकर कहा—"यह क्या महाश्वेता ! मौली तो मर गई है बेटी,"

"मर गई है।" कहते हुए वह उसके शरीर से लिपट कर रो दी। बोली—"तुम ठीक कहती थीं मौली, कि तुम भैया के बिना जीवित नहीं रह सकतीं और मैंने कहा था, तब मर जाना पर अब उन्हें हँसते-हँसते बिदा दो, तुमने वही किया। मौली, मेरी बहिन।"

महाश्वेता को एक ओर हटाकर महन्त बाबा ने उस सुन्दर पीले मुख को सदा के लिये चादर से ढक दिया।

मनहर ने जिस तरह उदास मन से बम्बई छोड़ा था, उससे कहीं ज्यादा सुस्त होकर, उसने वापिस बम्बई के बन्दरगाह पर पैर रखा। क्षण भर तक खड़ा वह सोचता रहा—कहाँ जाऊँ ? अगर सचमुच काकी अब न रही हो, और रेवा का ब्याह हो गया हो तो बृजपुर जाकर क्या करूँगा ? मुरला के पास चलूँ।

फिर ख्याल आया—कुँवर बम्बई में हैं। पहिले वहीं चल कर सबके हाल चाल लिये जायें, और वह सामान लेकर प्रभात की कोठी पर पहुँचा। पता लगा वह हास्पिटल गया है, शाम को पाँच बजे तक आवेगा।

इतने में पुराना नौकर दीनू आ गया। मनहर को देख वह खुशी से उछल पड़ा, और लपक कर उसने मनहर को छाती से लगा लिया, एक सुन्दर सजे हुए कमरे में उसका सामान रखा, नहाने खाने का सब प्रबन्ध किया, फिर जब थका-सा मनहर पलंग पर आँखें मूँदकर पड़ गया, तो उसके सामने गलीचे पर बैठता बोला—"भैया ! कहाँ रहे अब तक ?"

मनहर ने वैसे ही आँखें मूँदे मूंदे कहा—"गोवा था दीनू काका ! और सुनाओ, काकी कैसी है ?"

"अब तो अच्छी हैं। बीच में बहुत बीमार हो गई थीं। छोटे मालिक पहिले तो हर तीसरे दिन देखने जाते थे, अब तो एतवार के एतवार

जाते हैं, कह रहे थे काकी अब बिलकुल ठीक हैं।"

मनहर उस वक्त सोच रहा था। प्रभात तुम सचमुच प्यार करने के योग्य हो। तुम्हारा हृदय कितना महान् है। मुरला सच कहती है, प्रभात को समझने के लिये बुद्धि चाहिये।

दीनू बोला—"रेवा बिटिया से ब्याह के लिये बहुत कहा गया, पर वह मानी नहीं, पीछे कहा था—पन्द्रह दिन बाद हां या न का उत्तर देगी।"

मनहर ने आँखें खोलकर पूछा—"फिर दीनू काका ?"

दीनू हाथ में तमाकू मलता हुआ बोला—"फिर क्या भैया! छोटे मालिक उस दिन बता रहे थे, अन्त में रेवा बिटिया ने न कर दी, कहा—मैं ब्याह नहीं करूंगी। काकी बहुत रोई-पीटीं, पर बिटिया ने हाँ नहीं की।"

मनहर ने एक ठण्डी सांस ली, फिर बोला—"मुरला कैसी है दीनू काका ?"

दीनू क्षणभर तक चुप बना रहा, फिर मनहर के मुँह पर आँखें घुमा कर बोला—"मुरला बिटिया तो बहुत बीमार हैं। अचानक एक बार मियादी बुखार हो गया था भैया, उसी में निमोनिया हो गया। अब···सुना है···उन्हें···अरे भैया! सब ठीक हो जायेगा, अंग्रेजी इलाज में वहम बहुत डाल देते हैं। मेरी बिटिया जरूर अच्छी हो जायेगी।"

मनहर घबराकर उठ बैठा, बोला—"वह···वह कहाँ है दीनू काका ?"

"कोई यहाँ से दो-चार मील जगह है, वहीं उन्हें रखा गया है। अकेले उनके पति और बच्चे यहाँ वाली कोठी में हैं। जमींदार साहेब ही हैं, बच्चे तो दोनों बोरडिंग में रहते हैं।"

"तुम उस जगह का पता जानते हो।"

"नहीं भैया, बिटिया को देखने छोटे मालिक और शिवाला बेटी

के साथ गया तो कई बार, पर वहाँ का नाम पता नहीं जानता। अभी दोनों आजायेंगे, तब पूछ कर हो आना। बिटिया क्या अब पहचानी जाती हैं, पलंग पर पड़ी दीखती तक नहीं।"

थोड़ी देर बाद दीनू उठकर चला गया, मनहर सोचने लगा—"मुरला तुमसे क्या सहन नहीं हुआ? मुरला! जाना मत—प्रिय जाना मत।"

सन्ध्या को मनहर को देख प्रभात इतना खुश हुआ कि मनहर की आँखों में उससे मिलकर आँसू बहने लगे। दोनों मित्र एक-दूसरे से चिपट गये। फिर प्रभात ने शिवाला से उसका परिचय कराया। बहुत बातें हुईं, काकी की बीमारी की, रेवा की ज़िद्द की, मुरला कैसे बीमार हुई, वगैरह वगैरह।

: १६ :

मनहर ने देखा, मुरला की बात चलने पर प्रभात के मुंह का रंग उड़ गया। वह बोला—"मुझे विश्वास है कुंवर! मुरला को कुछ न होगा।"

प्रभात ने खुश होकर कहा—"तुम्हारे आत्मविश्वास पर मुझे भरोसा है मनहर! तुम क्या सोचते हो, वह अच्छी तो हो जायेगी न?"

मनहर ने कहा—"जरूर हम चारों इतनी जल्दी नहीं मर सकते।"

चारों...कहते हुए प्रभात ने मनहर के मुंह की तरफ देखा—फिर पूछा—"महाश्वेता कहां है मनहर?"

मनहर ने चकित होकर कहा—"उसके बारे में मुझसे क्यों पूछा कुँवर?"

"इसलिये कि मैं जानता हूँ, हम तीनों के सिवा वह और कभी किसी के पास नहीं जा सकती है। बोलो, कैसी है वह, और कहां है?"

"मडगांव है वह और अच्छी है।"

प्रभात ने एक ठण्डी सांस लेते हुए कहा—"तुम उसे ले क्यों नहीं आये मनहर! मुरला उसे देखने को तरस रही है। हर वक्त उसके होठों पर तुम दोनों का नाम रहता है। तुम आगये अगर महाश्वेता भी आ जाती तो वह...

शिवाला बोली—"इतनी चिन्ता क्यों करते हो अब कुँवर! मनहर भाई, देवी महाश्वेता को तार देकर बुलवा लेंगे।"

मनहर ने कहा—"हां ऐसा है तो बुलवाना ही पड़ेगा। मैं मुरला को देखना चाहता हूँ कुंवर।"

प्रभात ने शिवाला के मुंह की तरफ देखा। वह बोली—"एक दम आपका उसके सामने जाना खतरनाक है मनहर भाई! पहिले हम बातों बातों में आपके आने की खबर देंगे। तब आपको ले चलेंगे। तब तक आप काकी और रेवा बहिन से मिल आवें।"

मनहर ने इसे स्वीकार किया और दूसरे दिन सुबह ही उसका बृजपुर जाना तय हो गया।

तुलसी चौरे पर बैठी रामा माला जप रही थी, पर उसका ध्यान भगवान् की तरफ न होकर मनहर की तरफ था—सोच रही थी—'कहाँ होगा मेरा बच्चा, क्या करता होगा। सुख में है या दुख में। कौन जाने मैं कब उसे नहीं देख सकूँगी, क्यों भगवान्! और कब तक जियूंगी, एक बार उसे दिखा दो तुलसी मां!"

इसी समय मनहर ने धीरे से आंगन में पैर रखा और पुकारा—"काकी!"

आँगन में जलती लालटैन के धुंधले प्रकाश में रामा आंखें फाड़कर उसकी तरफ देखन लगी फिर बोली—"कौन प्रभात! आओ बेटा, आज क्या फिर ऐन्जक्शन लगाओगे?"

मनहर उसके पैरों से लिपट गया और बोला—"यह तो मैं हूँ, काकी, तुम्हारा मनहर!"

"मनहर, मेरा लाल!"

कहते-कहते रामा बेसुध-सी हो गई। रेवा ने भंडार-घर में बैठे-बैठे जान लिया कि उसका मनहर आ गया है। आटा छानना छोड़कर उसने भगवान् के उद्देश्य से धरती पर माथा रखते हुए कहा—"अब मानती हूँ, तुम हो, जरूर हो।"

और वह बाहर निकल आई। मनहर के पास आकर उसने

गले में आँचल डालकर उसे प्रणाम किया, मनहर खड़ा होकर बोला—"सुखी रहो, काकी को सम्भालो रेवा !"

रेवा ने मौसी को झकझोरते हुए कहा—"अरे कुंवर को...देखकर आज यह क्या कर रही हो मौसी—वह तो ऐन्जक्शन लगाने आये हैं।"

रामा चौंककर उठ बैठी, फिर बोली—"नहीं...यह तो मेरा मनहर ही है। डर मत रेवा, अब मैं ठीक हूँ, बैठ मनहर ! मेरे पास बैठ जा।"

मनहर उसके पास बैठ गया, फिर उसने रेवा से पूछा—"कैसी हो रेवा ?"

"अच्छी हूँ—आप कब आये ?"

"परसों...दो दिन कुँवर के पास बम्बई रहा।"

"रेवा ! जा बेटी, पहिले मनहर के लिये कुछ खाने को बना, बातें तो होती रहेंगी।"

रेवा चली गई।

रात को मनहर रेवा के पास चौके में भोजन करने बैठा और बोला—"सुना है रेवा, मुरला बहुत बीमार है।"

रेवा ने उसकी थाली में बाजरे की गर्म गर्म रोटी रखते हुए कहा—"हाँ ! वह लड़की अपने हृदय से हार खा गई। पर इसमें ज्यादा दोष उसका नहीं है, उसके पति का है, वह उसे सहारा न दे सके, और आज मुरला खत्म हो रही है, धीरे धीरे...

मनहर ने व्याकुल होकर कहा—"ऐसा मत कहो रेवा ! वह अच्छी हो जायेगी। उसके पति ने उसका दिल नहीं रखा, उसे सहारा नहीं दिया। उसके सुख-दुख की परवाह नहीं की तो क्या ? हम सब उसे सहारा देंगे। मैं उसे मरने नहीं दूंगा रेवा, कुँवर उसका इलाज कर रहा है। वह माना हुआ डाक्टर है, मुर्दों में जान डालता है। मुरला तो...नहीं नहीं...रेवा ! उसे हम मरने न देंगे।"

रेवा स्तब्ध उसका मुँह ताकती रह गई। मनहर से और नहीं खाया गया, रेवा के रोकते रहने पर भी वह हाथ धोकर अपनी कोठरी में चला गया।

रेवा सोचने लगी—मुरला तुम धन्य हो, तुमने मनहर और प्रभात से जो कुछ पाया है वह क्या है, उसे कहकर बताया नहीं जा सकता। क्या वह प्रेम है ? हो सकता है, पर प्रेम में...इतनी पवित्रता और दृढ़ता, विश्वास, पहिले कभी कहीं नहीं देखा। तुम बड़ी जल्दी अपने जीवन से हार गईं बहिन ! कुछ दिन तो और जीतीं—ताकि तुम्हारे यह दोनों भक्त कुछ दिन और हँस लेते। तुम्हारे जाने के बाद इन दोनों की क्या हालत होगी, उसकी कल्पना करते भी डर लगता है।

सुबह जब मनहर कपड़े पहिन कर बाहर जाने लगा तो रामा ने पूछा—"क्या नाहरपूर जा रहा है ?"

वह बोला—"नहीं काकी ?"

"तब—"

"मैं बम्बई जा रहा हूँ।"

"क्यों ? कल ही तो तू वहां से आया है मनहर !"

"परन्तु अभी तक मैं मुरला को कहां देख सका।"

"सो तो ठीक है। पर एक बार जाकर तुझे अपना होटल भी तो देखना चाहिए बेटा, लोगों ने उसमें···।"

रेवा ने बीच में आकर कहा—"होटल अब तक जैसे चलता रहा है मौसी, थोड़े दिन और उसी तरह चलता रहेगा, इन्हें पहिले मुरला के पास जाना चाहिये। लड़की बहुत बीमार है।"

रामा ने चिन्तित स्वर से कहा—"हां...तो तू वहीं जा मनहर ! सचमुच मुरला तो जाने कैसी होती जा रही है।"

मनहर चुपचाप घर से बाहर हो गया। रामा बोली—"तू सच कहती थी रे रेवा ! मेरा मनहर तो वैसा का वैसा ही है। वह मुझे

भूला नहीं था। कहता था ऐसी ही मुसीबत में फँसा था, जिससे हमें पत्र लिखना उसने ठीक नहीं समझा। वैसे मुरला को बराबर खत लिखता रहा है। उसमें मेरी कितनी ही बातें लिखता था। तभी जब तब मुरला मुझसे आकर कहा करती थी, काकी! मनहर बिल्कुल अच्छी तरह हैं। कितने ही लोग उनसे मिलकर आये हैं, वह इधर-उधर घूम रहे हैं। इसीलिये अपना पता-ठिकाना नहीं लिखते।"

रेवा ने सिर झुकाये झुकाये कहा—"यह तो मैं जानती थी मौसी, हमें पत्र लिखते तो सबको डाकखाने से पता लग सकता था कि यह पत्र कहां से आता है। और मुरला के पास बहुत से पत्रों में पता भी क्या लगता था। फिर वह लोग बड़े आदमी हैं, देश-विदेश से अनेक पत्र उन्हें आते रहते हैं। हमारे तो यही एक पत्र आता मौसी?"

रामा सन्तुष्ट होकर बोली—"वही तो...और मैं जानती हूँ... क्या सोचा करती थी रेवा? सोचती थी यह लड़का कैसा निर्मोही निकला। एक दम मुझे भुला ही बैठा। आज उससे पता लगा, मेरा बच्चा कैसी मुसीबतों में पड़ा रहा। रेवा! तू तो बोलती ही नहीं रे।"

"क्या बोलूँ मौसी? तुम्हारी इस बात का जवाब ही क्या दूँ? मुझे मालूम नहीं था, मन ही मन तुम इस बात को सोचकर इतना कष्ट पा रही हो, नहीं तो तुम्हें...मैं बता देती।"

कहती हुई रेवा होंठ दबाकर हँसी, रामा ने कहा—"हँसी क्यों रे?"

"इसलिये कि जिसे अपने ही हाथ से पाल-पोस कर तुमने बड़ा किया है उसके हृदय और स्नेह को तुम्हीं सन्देह की दृष्टि से देखेगी और मैं जो कल आई हूँ उन्हें तुमसे कुछ ज्यादा ही अच्छी तरह समझ गई हूँ मौसी! जो दूसरे के कष्ट से व्यथित हो अपने सिर पर बड़ी से बड़ी मुसीबत बुला लेता है वह अपने ही को भला कैसे भूल सकता है— कहो।"

"असल में मेरी बुद्धि अब रही नहीं रे ! तू ठीक कहती है। दूसरों के लिये जिसके मन में इतना प्यार है, वह भला मुझे कैसे भुला सकता था। मैंने उसकी मजबूरियों को उसकी लापरवाही समझा। राम-राम, लड़का सुनेगा तो उसे कैसी चोट बैठेगी, नहीं क्या रेवा !"

"वह तो है ही मौसी ? वापिस आने के लिये क्या कह गये हैं ?"

"कुछ कहा तो नहीं, पर दो-चार दिन तो लग ही जायेंगे।"

रेवा दूसरे कमरे में चली गई।

: २० :

"शिवाला—"

शिवाला कुछ ऐक्सरे की प्लेटें ध्यान से देख रही थी। मुँह उठाकर बोली—"क्या है मनहर भाई ?"

मनहर ने दीवार से पीठ टेकते हुए कहा—"कुंवर मुझे मुरला के पास कब ले जायेंगे ?"

"मैंने पूछा नहीं, अभी पूछ देती हूँ।"

"नहीं ! तुम अपना काम करो बहिन ! मैं पूछे आता हूँ। इस समय हास्पिटिल ही होंगे न ?"

"हां...वहाँ ही हैं, कार ले जाओ।"

मनहर चला गया। मोटर उसने हास्पिटिल के पीछे खड़ी की—और प्रभात के पास अन्दर आफिस में गया। प्रभात बड़े गौर से एक ऐक्सरे को खिड़की की रोशनी में खड़ा देख रहा था। मनहर ने कमरे में घुसते हुए पुकारा—"कुंवर !"

वह चौंक गया, उसने घूमकर कहा—"ओह ! तुम मनहर, आओ बैठो।"

मनहर ने देखा उसके माथे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदें छलछला आई हैं। बोला—"किसका ऐक्सरे है कुँवर ?" प्रभात अपनी कुर्सी पर बैठ गया। फिर कुर्सी की पीठ सिर टेकता हुआ बोला—"अपनी मुरला का।"

"क्या देखा ?"

प्रभात के होठों पर एक व्यथा फूट पड़ी, बोला—"जाने कितने

ज़ख्म उसके फेफड़े पर देखता हूँ। मनहर! मुरला क्या सचमुच अब नहीं बचेगी?"

मनहर व्याकुल होकर बोला—"ऐसा मत सोचो कुँवर! वह ज़रूर अच्छी हो जायेगी। तुम इतने बड़े नामी डाक्टर हो, इस तरह हिम्मत न हारो। ऐसा उसे क्या हुआ है, मुझे ले चलो उसके पास मैं-मैं..."

प्रभात क्षण भर बाद बोला—"मैंने कल उससे कहा था। बड़ी खुश हुई थी। वह आज तुम्हारा इन्तजार कर रही होगी।"

"कब हम चलेंगे?"

"बस! एक घन्टा मुझे और लगेगा। फिर चलते हैं।"

मनहर वहीं बैठकर उसका काम देखता रहा, फिर दोनों मोटर में बैठ मुरला के बंगले के पास पहुँचे। बम्बई से यह जगह चौदह-पन्द्रह मील पर थी। एक सुन्दर घाटी पर यह सुन्दर छोटा-सा बंगला बिल्कुल अकेला था। मुरला के साथ केवल नौकर-नौकरानियाँ थे। कभी कभी जमींदार आकर आठ-दस दिन रह जाते थे। नहीं तो काम के मारे हर वक्त उनका मुरला के पास रहना नहीं हो सकता था।

प्रभात ने धीरे से मनहर से कहा—"तुम बारामदे में खड़े हो जाओ, मनहर! जब वह पूछेगी तब मैं पुकारूँगा तुम्हें, अच्छा।"

मनहर ने सिर हिला दिया और ध्यान लगाकर अपनी प्राण प्रतिमा की आवाज़ सुनने लगा।

प्रभात ने कमरे में घुसते हुए कहा—"आलसी लड़की! अब तक पलंग पर पड़ी है। क्यों नर्स, मैंने कहा था इस समय बारामदे में बैठाया करो, प्रकृति का दृश्य देख मुरला की तबियत बहलेगी।"

मुरला ने प्रभात को रोकते हुए कहा—"कसूर मेरा है, नर्स ने तो बहुत कहा था। अच्छा बताओ, आज भी मनहर को लाये हो या नहीं।"

मनहर का कलेजा धड़कने लगा, प्रभात बोला—"आया है न बेचारा! पीछे कैसे रह गया। अरे मनहर, क्या रास्ता भूल गये?"

मनहर कमरे में घुसा और पलंग के पास जाकर घुटने मोड़ कर मुरला के दोनों हाथ मुट्ठी में दबाता हुआ बोला–"तुम ऐसी कैसी हो गईं मुरला ?"

उन काली गहरी आंखों में आंसू छलछला आये। बोली—"तुम तीनों से अलग होकर मैं बच नहीं सकती मनहर! ऐसा क्या मैं बचपन में तुम सबसे हमेशा ही नहीं कहा करती थी।"

"अच्छा अब हम सदा तुम्हारे पास ही रहेंगे, तुम जल्दी से ठीक हो जाओ।"

मुरला हँसी, बोली—"सच क्या मनहर, महाश्वेता को साथ लाये हो न ?"

"महाश्वेता को...कहते कहते मनहर उदास हो गया। मुरला ने एक लम्बी सांस लेते हुए कहा—तो..."तुम उसे नहीं लाये मनहर ?"

प्रभात ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा–"अरे! उस बेचारे को मालूम क्या था कि तुम इस तरह बीमार मिलोगी उसे। महाश्वेता तो वहां रामनाथुन के मन्दिर की देवदासी बनी बैठी है–अब यह लिख देगा, वह चली आयेगी।"

मुरला ने मनहर के हाथ को दबाते हुए कहा—"बोलो...क्या महाश्वेता को बुला सकोगे मनहर ?"

मनहर ने उसके हाथ पर अपना हाथ थपथपाते हुए कहा—"मैं सुबह ही उसे पत्र लिखूंगा।"

मुरला ने बड़े सुख से नेत्र बन्द कर लिये। मनहर प्रभात और नर्स को उसके पास छोड़कर बाहर निकल आया।

आठ दिन बीत गये। मनहर दिन-रात मुरला के पास बना रहता है। दवा-पथ्य सब अपने हाथ से देता है। उसे जरा उदास नहीं होने देता है।

उस दिन उसे सुस्त देख बोला—"आज इस तरह चुप क्यों हो मुरला ?"

"नहीं तो—"

"नहीं तो क्या ? आप तो चुप हो, कहो न क्या बात है ?"

"सोचती हूँ—वह कई दिन से नहीं आये, ठीक होंगे तो।"

"अरे कैसी पगली लड़की है, कल ही तो कुंवर कह रहे थे। जमींदार साहब ने आदमी भेजा था पत्र देकर। तुम्हारा हालचाल मंगाया था। एक मुकदमे में फँसे हैं। इसीलिये इतने दिन नहीं आ सके, कल आ जायेंगे।"

"जिन्दगी के दिन ही कितने हैं मनहर ! जितना भी ज्यादा से ज्यादा सबको अपने पास देख सकूँ, उतना ही अच्छा है। पर बीमारी भी तो कैसी खराब है। बिट्टी—नरसिंह को प्यार करने को तड़प जाती हूँ पर इस घर में उन्हें बुलाते भय लगता है।"

मनहर चौंक गया, मुरला की इस बात ने उसे चोट पहुँचाई। बोला—"क्या खराब बीमारी है ? कुछ भी तो नहीं, डाक्टर बिट्टी को तो इसलिये यहां नहीं आने देते कि वह बोलती बहुत है और नरसिंह ऊधमी है ही। खाली बैठना तो उससे होता नहीं। सुचेतगढ़ में देखती नहीं थी, खाली गेंद से ही वह घर की खिड़कियों के शीशे बराबर कर देता था, फिर कुंवर बच्चों के सामने जाना नहीं चाहते। इसलिये भी उन लोगों की मुश्किल है, जमींदार साहब भी इसी ख्याल से कम आते हैं। और तुम्हें वहम है कि खराब बीमारी है, इसलिये नहीं आते।"

मुरला ने एक ठण्डी सांस लेते हुए कहा—"मैं सब जानती हूँ मनहर ! मुझे तपेदिक हो गया है। उस दिन वह अंग्रेज डाक्टर यही बहस कुँवर से कर रहा था। कुंवर उसकी बात नहीं मान रहे थे।"

"कैसे मानते कुँवर ? क्या खुद मामूली डाक्टर हैं वह। जो इलाज बड़ों-बड़ों से नहीं होता, वह हमारे कुंवर चुटकियों में करते हैं मुरला ?"

"सो तो जानती हूँ।"

"क्या खाक जानती हो, कुछ नहीं जानती हो। तपेदिक हो गया

है।, तुम भी बस वही बौड़म की बौड़म हो, चलो बताओ ? कौन-सा गाना सुनोगी, इस वक्त मैं गाने की मूड में हूँ।"

"वही गाओ मनहर ! बाजी का गीत—"सोना न !"

मनहर गाने लगा। मुरला तकियों के सहारे बैठी सुनती रही।

गीत ख़त्म होने के बाद वह बोली—"बहुत अच्छा ! इतने दिन से तुम घर नहीं गये मनहर ! काकी, रेवा, राह तकती होंगी।"

"सो तो शायद तकती होंगी, पर तुम्हें ऐसी हालत में छोड़कर जाने को जी नहीं चाहता।"

"परन्तु यह उनके प्रति अन्याय है, तुम कल जरूर जाना मनहर !"

"अच्छा चला जाऊँगा, अब तुम दवा पीलो।"

कहते हुए मनहर गिलास में दवा डालने लगा। नर्स ने मुरला के हाथ में पानी का गिलास दिया।

अगले दिन घर आकर मनहर थका-सा आंगन में पड़ी चारपाई पर पड़ गया, रामा ने पूछा—"कैसी है बिटिया ?"

मनहर थके स्वर से बोला—"शायद अच्छी नहीं है काकी ?"

रामा ने हाथ की माला डलिया में रख दी। फिर तुलसी माँ के चौरे पर सिर नवाते हुए कहा—"अच्छी हो जायेगी रे ! ऐसा उसे कुछ नहीं है।"

मनहर उठकर उसके पैरों के पास आ बैठा, बोला —"हाँ काकी ? तुम उसे आशीर्वाद दो, वह अच्छी हो जाये।"

रामा ने उसका मुँह अपनी छाती पर रख लिया। रेवा ने पास आकर कहा—"मुंह-हाथ धो लीजिये ! गर्म पानी रख दिया है।"

मनहर चुपचाप स्नानागार की तरफ़ चला गया। रात को भोजन करते वक्त रेवा बोली—"क्या खाना ठीक नहीं बना ?"

मनहर ने मुँह में कौर डालने के बाद कहा—"ख़ूब अच्छा है, खास कर आज की यह फलियाँ तो बहुत ही स्वादिष्ट हैं।"

"ठीक से खा तो नहीं रहे हैं आप।"

मनहर ने स्थिर स्वर से कहा—"आजकल ठीक से खाते सचमुच नहीं बनता रेवा! लगता है···लगता···है।"

"क्या लगता है ?"

"लगता है, जैसे सब तरफ़ से सब कुछ ख़त्म होता जा रहा है।"

रेवा ने रोटी बेलते-बेलते कहा—"दुख, बीमारी तो जब तब आते जाते रहते हैं। उनके लिये इस तरह अस्थिर होना शोभा नहीं देता।"

"पर यह दुख मामूली दुख नहीं है रेवा! जो दवा-दारु से चला जायेगा। यह वह बीमारी है, जिसे बहुत तपस्या के बाद मनुष्य बुलाता है, और जो आकर फिर कभी नहीं जाती। मुरला को तपेदिक हो गया है रेवा ?"

"तपेदिक" कहते हुए रेवा पत्थर की तरह कठिन-सी होकर बैठी रह गई। फिर जली रोटी को एक ओर रखते हुए बोली—"अब।"

मनहर ने थाली एक ओर सरका दी, और खड़े होते हुए कहा—"अब क्या रेवा, मुरला···मुरला···कौन जाने···"

कहता हुआ वह चौके से बाहर निकल गया। रेवा आप ही आप बोली—"वह बचेगी नहीं, ऐसा तो कइयों के मुंह से सुन चुकी थी, पर उसे तपेदिक हो गया है, यह नहीं जानती थी। मुरला! मत जा बहिन! नहीं···तो।"

रामधन की बहू आकर बोली—"अरे···यह क्या ? रोटियां सेके ही चली जा रही हो जीजी ? मालकिन खा चुकी। भैया खा चुके, अब रहा कौन ? मैं और तुम कितनी खा लेंगे, उठो।"

रेवा चौंक कर बोली—"ओह···आंटा ज्यादा गूंध गया था: ले अब तू खाले बैठ।"

महाश्वेता! मन्दिर से निकल कर अपने कमरे में गई तो उसकी परिचारिका ने उसके हाथ पर एक पत्र रख दिया। वह उत्सुक होकर

बोली—"यह तो भैया का पत्र है रे सुचेता।"

"अच्छा देवी ! क्या लिखा है पढ़िये तो।"

महाश्वेता तख्त पर बैठकर पत्र पढ़ने लगी। लिखा था—

महाश्वेता, मेरी बहिन, मैं ठीक हूँ, ऐसा नहीं लगता। इस वक्त मुझे अपनी बहिन की सख्त जरूरत है। सख्त…क्या भगवान् रामनाथन—मेरे लिये…मेरी बहिन को लौटा सकेंगे, जिस दिन चलो, तार दे दो। साथ में मौजीराम रहे, तो ठीक है, आने में देर न करना बहिन ! सब कुछ समाप्त होने से पहिले तुम्हारा आना बहुत जरूरी है।

—मनहर

"यह क्या ?"

कहती हुई महाश्वेता घबराकर खड़ी हो गई, सुचेता बोली—"क्या हुआ देवी !"

"मैं…मैं तो कुछ समझी नहीं सुचेता ! तू बाबा के पास इस पत्र को ले जा।"

सुचेता पत्र लेकर चली गई। महाश्वेता चुपचाप तख्त पर बैठी सोचती रही। थोड़ी देर बाद महन्त बाबा ने उसे बुला भेजा। वह उनके पास गई। उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"घबराने की कोई बात नहीं बेटी ! लगता है तुम्हारे भैया या तो कुछ बीमार हो गये हैं। या फिर किसी भारी मुसीबत में फँस गये हैं। मैं सोचता हूँ, तुम कल के जहाज से मौजीराम के साथ बम्बई चली जाओ, मैं मनहर को तार दिये देता हूँ।"

महाश्वेता ने उनके पैरों पर हाथ रखते हुए कहा—"जैसी आज्ञा बाबा।"

महन्तबाबा ने कांपते कण्ठ से कहा—"पर बेटी ! वहाँ जाकर इस बूढ़े बाबा को भूला मत देना, वापिस लौट आना, समझीं।"

"वापिस आऊँगी कैसे नहीं बाबा ?"

दूसरे दिन महाश्वेता बम्बई के लिए रवाना हो गई।

प्रभात और मनहर अपनी बालसखी को लेने के लिये बन्दरगाह पर पहुँचे हुए थे। महाश्वेता मौजीराम के साथ जहाज पर से उतरी। बारी-बारी से दोनों ने उसके नन्हें लाल लाल पैरों पर हाथ रख कर माथे से लगाये।

प्रभात बोला—"मुझे आशा नहीं थी महाश्वेता कि तुम इस तरह बुलाने से चली आओगी।"

वह काँपते कण्ठ से बोली—"क्यों कुवर! मेरे स्नेह पर ऐसा अविश्वास कब से करने लगे। मेरा भी तुम लोगों के लिये जी तड़पता होगा, इस पर तुम्हें अविश्वास क्यों था। भला तुम्हें देखने के लिये मेरा व्याकुल होना क्या अस्वाभाविक है?"

"नहीं अस्वाभाविक क्यों होता, लो आओ, अब चलो, मनहर कहाँ चला गया।"

महाश्वेता साथ चलती हुई बोली—"मौजीराम के साथ सामान उतरवाने गये हैं। भैया······मुरला अब कैसी है कुँवर?"

"क्या बताऊँ कैसी है? वह तो जैसे दिनों दिन बुझती चली जा रही है महाश्वेता?"

फिर दोनों में बातचीत नहीं हुई। सब बन्दरगाह से बाहर निकल गये।

शिवाला महाश्वेता को देख आश्चर्य-चकित हुई। इतनी सुन्दर लड़की भगवान् के अर्पण कर दी गई! महाश्वेता की बातचीत से शिवाला और भी प्रभावित हुई। वह सोचने लगी। ये चारों दुनिया से निराले हैं, जो जिस जगह पर खड़ा है वह अपने जैसा केवल एक ही है। चारों की राह अलग-अलग है, पर स्नेह आपस में इतना है कि एक-दूसरे पर प्राण न्योछावर करने को तैयार हैं हरदम। देखें, अब जो जा रहा है उसके बाद यह तीनों क्या करते हैं।"

इसी वक्त मनहर उसके कमरे में आकर बोला—"मैं मुरला के पास जा रहा हूँ शिवा ! कुंवर को कुछ कहना है।"

शिवाला उसके चेहरे पर आंखें जमाती हुई बोली—"हां...कहना है, उनको याद करा दीजियेगा दो मरीजों का उन्हें आज ही ओप्रेशन करना है। वह फौरन हास्पिटिल पहुँचें बहुत जरूरी है और मुरला को सब दवा आपने ले ली न भाई ?"

"हाँ शिवा !"

और वह चल दिया, शिवाला बोली—"सुनो भाई !"

वह रुक गया, वह पास आकर बोली—"सोचती हूँ। आज आपके एक ऐन्जक्शन और लगा दूं।"

मनहर बोला—"ख्वामख्वाह ही कभी तुम मुझे दवा खिला देती हो बहिन ! कभी ऐन्जक्शन लगा देती हो ! आखिर क्यों ?"

"यह जरूरी है। आप अभी नहीं समझते। दिन-रात मरीज के पास रहते हैं। फिर जागते रहते हैं, थकावट से इन्सान कमजोर हो जाता है। ऐन्जक्शन और दवा से कम से कम ताकत तो बनी रहेगी, सोचिये कहीं बीमार पड़ गये तो उसे देखेगा कौन ?"

मनहर एक कुर्सी पर बैठ गया। मुरला की दवाइयाँ उसके हाथ में ही रहीं। बोला—"लगा दो तब, पर मैं उसकी सेवा ही क्या करता हूँ शिवाला ? सब कुछ तो नर्स करती है केवल दवा और पथ्य मैं और कुँवर उसे अपने हाथ से देते हैं। हाँ ! रात को वह सो नहीं सकती तब मुझे और कुंवर को बारी-बारी जागना पड़ता है। वह वायलिन या बांसुरी बजाते रहते हैं। मैं अपनी ड्यूटी पर उसे गाने सुनाता रहता हूँ।"

"वही तो" कहते हुए उसने मनहर के ऐन्जक्शन लगा दिया। फिर धीरे से बोली—"आप मेरे बस में आ जाते हैं पर...कुँवर...वह-वह तो मेरी इन बातों को हँस कर उड़ा देते हैं। कहते हैं मर भी गया तो

मुरला को डाक्टरों की कमी नहीं होगी शिवाला ! मैं उससे पहिले मर जाना चाहता हूँ, उसकी मौत में...

मनहर व्याकुल होकर बात काटता हुआ बोला—"नहीं बहिन, नहीं तुम दोनों इतने नामी डाक्टर होकर यह कैसी बुझी-बुझी बातें करने बैठ जाते हो। वह जरूर अच्छी हो जायेगी।"

शिवाला ने उसके फक चेहरे पर अपनी स्नेह भरी दृष्टि लगाते हुए उसकी पीठ थपथपाई और कहा—"यह तो मैं नहीं कहती भैया ? कुंवर करते हैं ऐसी बुझी बातें। मुझे तो विश्वास है मुरला अब जरूर अच्छी हो जायेगी।"

"तुम बड़ी भारी डाक्टर हो। मुझे तो केवल तुम पर विश्वास है। कुंवर और मुरला के पति नाहक दुनिया भर के डाक्टरों को बुला-बुला कर उस गरीब लड़की को तंग करते रहते हैं।"

शिवाला ने इसके उत्तर में केवल एक ठण्डी सांस ली, फिर कहा—"दवा ले जाओ भैया, महाश्वेता तो कुंवर के साथ चली गई न ?"

"हाँ।" कहता हुआ मनहर उठ खड़ा, और चला गया। शिवाला अपने काम में लग गई। तभी महाश्वेता मुरला के कमरे में गई।

"महाश्वेता।"

"क्या है जीजी ?" कहते हुए वह मुरला पर झुकी। मुरला बोली—"जी चाहता है, बृजपुर चलूँ। वही सोना नदी का तट हो और हम चारों कभी मन्दिर, कभी नाव पर, कभी घोड़ों की सैर करें। क्या अब मैं वहाँ नहीं जा सकती बहिन ?"

उसके माथे पर से बाल हटाते हुए महाश्वेता बोली—"क्यों नहीं जा सकती ! मैं आज ही कुंवर से पूछूँगी।"

"मनहर कहाँ हैं ?"

"स्नान करने गये हैं। थोड़े अंगूर खाओगी जीजी ?"

"नहीं...बिट्टी और नरसिंह को तुम देखने कल जाओगी न ?"

"हां जाऊँगी क्यों नहीं।"

मुरला के हृदय को चीरती हुई एक ठण्डी सांस निकल गई। बोली—"मरना तो एक दिन होता ही है महाश्वेता! पर परमात्मा इस बीमारी से किसी दुश्मन को भी खत्म न करे...मैं-मैं अपने दोनों बच्चों का मुंह चूमने को तरसती हूँ। उनकी बातें सुनने को मरी जा रही हूँ। पर कोई उपाय नहीं है। उस दिन तुम्हारे जीजा बता रहे थे, बच्चे खोद-खोद कर मेरी बातें पूछते हैं, मैं कब घर जाऊंगी? कब उनसे जाकर मिलूंगी...? अभागे नहीं जानते मां अब सदा के लिये-जा रही है मिलेगी क्या।"

महाश्वेता ने उसके मुंह पर हाथ रखते हुए कहा—"छीः जीजी? कैसी अजीब-सी बातें करने लगती हो। डाक्टर कहते हैं तुम्हें वह बीमारी नहीं है, पर तुम हो कि मानती नहीं। विश्वास करो, तुम जल्दी ठीक हो जाओगी, फिर बिट्टी और नरसिंह का चाहे जितना मुंह चूमना कोई रोकेगा नहीं। जीजा जी का तो मन बड़ा छोटा है। तुम्हें देखकर रोने बैठ जाते हैं। तभी कल मनहर भैया ने कहा है, कृपा कर आप थोड़े दिन तक यहां न आवें, आप मुरला को सुस्त कर देते हैं।"

मनहर ने कमरे में आकर कहा—"दवाई दो बहिन? नर्स तो आज छुट्टी गई है, दो मिनट लेट हो गया।"

महाश्वेता ने मुरला को दवाई दी, फिर कहा—"जीजी बृजपुर जाना चाहती हैं।"

"तो क्या, ले चलेंगे। आज शिवाला और कुंवर से पूछ लेते हैं। तुम्हें मालूम है मुरला कि कुंवर ने छः महीने की छुट्टी ले ली है। शिवाला उसकी जगह काम करेगी। बस कल का दिन उन्हें और हास्पिटल जाना है।"

मुरला हँसी, बोली—"तब तो अनायास ही हम चारों बृजपुर जा सकेंगे।"

और इसके चार दिन बाद मुरला को लेकर कुंवर एवं मनहर बृज-

पुर पहुँच गये। महाश्वेता ने कांपते पैरों से रात के वक्त मन्दिर में प्रवेश किया।

महात्मा उस समय गीता पढ़ रहे थे। महाश्वेता उनके पैरों से जाकर लिपट गई। वह चकित होकर बोले—"तुम कौन हो बेटी ?"

महाश्वेता ने उनकी गोद में अपना मुंह छिपाते हुए कहा—"आपकी महाश्वेता।"

महात्मा का हृदय मारे खुशी के धड़कने लगा। कांपते कण्ठ से बोले—"मेरी महाश्वेता! अपना मुंह ऊँचा करो बेटी! मुझे अभी भी विश्वास नहीं आता।" कहते हुए उन्होंने उसका मुंह अपने दोनों हाथों से ऊँचा किया। लालटेन के प्रकाश में महाश्वेता का आंसुओं से तर मुख-मण्डल देख, उन्होंने उसका माथा चूमते हुए कहा—

"तू आगई बेटी ? अब मुझे छोड़कर कहीं मत जाना महाश्वेता! नहीं जायेगी न ?"

"नहीं बाबा! अब मैं कहीं नहीं जाऊंगी तुम्हें छोड़कर।"

जब दोनों कुछ शान्त हुए तब महाश्वेता बोली—"चारणियां कहां है बाबा ?"

"वह अब नहीं हैं बेटी ? उस घर की गौरी और चारणी आठ दिन के आगे-पीछे एकाएक चली गईं। पिछली सर्दियों में नमोनिया हो गया था।"

महाश्वेता की आँखें फिर बह चलीं। फिर बोली—"और मेरा तोता-मैना।"

"वह हैं न बेटी, रोज सुबह से तुम्हारा तोता, तुम चारों के नाम पुकारने लगता है, और तुम्हारी मैना पूछती रहती है—वे चारों कहाँ हैं ? चारणी इन्हीं दोनों की बातें सुनकर, हर समय रोती रहती थी।"

बृजपुर वाले इन चारों से मिलने आये। महाश्वेता को देख बृजपुर वालों को जितनी प्रसन्नता हुई, मुरला को देख उतना ही रंज हुआ।

जमीदार गृहणी तो मुरला की ऐसी हालत देख बेसुध हो गई।

ऊपर के बारामदे में मुरला को सन्ध्या समय एक आराम कुर्सी पर लिटा दिया गया। वहाँ से सोना नदी, उसका तट, मन्दिर सब दिखता था। वह अत्यधिक प्रसन्न हुई। मनहर, कुँवर···दोनों उसके पास बैठे थे। महाश्वेता उसके बालों पर हाथ फेरती उसके पीछे खड़ी थी। एकाएक बोली—"मनहर भैया! आपका दिल बड़ा सख्त है।"

मनहर ने चकित होकर पूछा—"क्यों बहिन?"

"तुमने एक बार भी उस अभागी मौली के लिये मुझ से नहीं पूछा। वह कैसी है? है भी या नहीं?"

मनहर ने मुरला के मुख पर आँखें जमाते हुए कहा—"कलब के मैनेजर ने मुझे सब कुछ लिख दिया था बहिन! फिर तुमसे और क्या पूछता?"

"अच्छा तो मैनेजर ने लिख दिया था? भैया! मानते हो न कि नारी के हृदय की समता नहीं है, फिर चाहे वह एक नर्तकी ही क्यों न हो।"

"इसमें सन्देह नहीं बहिन! नारी महान् है, म···इसीलिये इस जाति की पूजा करता हूँ।"

इसके बाद कुँवर और मुरला के जिद्द करने पर, मनहर ने मौली की कहानी सुनाई। कहानी खत्म करके मनहर ने मुंह घुमा कर उन तीनों के मुँह की तरफ़ देखा। देखा मुरला, और महाश्वेता दोनों का मुख आँसुओं से तर है, और कुँवर पत्थर के बुत की तरह सफेद फक चेहरा लिये बैठे हैं।"

रात के नौ बजे जमीदार और जमीदार गृहणी मुरला को देखने आये। मुरला मुस्कराई, वह उसके पास बैठती बोली—"आज तूने सूप भी नहीं पिया बेटी?"

"पिया था मौसी, पर दीनू काका की आदत तो पुरानी है। जो

हम एक चमच भी कोई चीज़ छोड़ दें, तो वह तुमसे शिकायत कर देता है।"

वह हँसने लगीं, जमींदार बोले—मुरला बेटी! बसन्त आ रहा है। अब तुम जल्दी-जल्दी ठीक हो जाओ, तुम्हारे पति और बच्चे बेहद उदास रहते हैं। उनका पत्र आया है, वह परसों आ रहे हैं।"

मुरला ने इसके उत्तर में केवल एक ठण्डी सांस खींची फिर बोली—"बच्चे कैसे थे मौसा?"

"अच्छे थे बेटी! महाश्वेता क्या मन्दिर गई हैं।"

"हाँ मौसा, आरती के समय वह नृत्य करने जाती हैं न?"

प्रभात और मनहर कमरे में आये तो चकित होकर मालकिन बोली—"अरे इतने में दोनों खा भी आये।"

प्रभात सूखे स्वर से बोला—"हम दोनों रात भर ड्यूटी देते हैं रानी जी की माँ! अगर ज्यादा खा जाते तो नींद आने लगती।"

मनहर बोला—"और सुबह नौकरी से जवाब मिल जाता काकी! अच्छा अब आप लोग जाकर आराम करें, तुम भी सोने का प्रयत्न करो मुरला!"

वह दोनों मुरला के सिर पर हाथ फेरने के बाद कमरे से बाहर हो गये। मनहर बारामदे में जाता हुआ बोला—"मैं थोड़ा टहलूँगा, तुम मुरला का टेम्परेचर वगैरह ले लो।"

प्रभात ने मुरला का टेम्परेचर लिया। बुखार बढ़ रहा था, प्रभात एक कुर्सी पर बैठ उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। इस स्नेह स्पर्श-सुख से मुरला के नेत्र मुंद गये।

एक घण्टे बाद मुरला ने जैसे चौंककर कहा—"कुँवर!"

कुंवर उसके मुंह की तरफ़ ताक रहा था। बोला—"क्या है मुरला?"

"मनहर'''मनहर कहाँ हैं?"

"बारामदे में ही बैठा है, बुलाऊँ क्या ?"

"हाँ।"

प्रभात ने मनहर को पुकारा। वह अन्दर आकर बोला—"क्या है मुरला ?"

वह बोली—"मेरे पास बैठो।"

मनहर घुटने टेक कर गलीचे पर बैठ गया। मुरला सूखे स्वर से बोली—"मौली के प्रति तुम दोनों ने अन्याय नहीं किया है क्या ?"

मनहर ने उसके हाथ को अपनी मुट्ठी में रखते हुए कहा—"किया है मुरला ! पर मैं मजबूर था। महाश्वेता ने मेरी एक नहीं सुनी।"

"वह देवदासी है, देवता की अपनी वस्तु—यह सुनते-सुनते महाश्वेता खुद भी पत्थर सी सख्त होती चली जा रही है मनहर ! पर तुम तो ऐसे नहीं हो, तुम···तुमने इस तरह उसके दिल को क्यों तोड़ डाला ?"

प्रभात ने उसके पलंग पर बैठते हुए कहा—"सचमुच मुझे भी उस लड़की से लिये बड़ा दुख हुआ है मुरला ! पर अब इन बातों से लाभ क्या ? सोने का प्रयत्न करो।"

"सोने का प्रयत्न करने की जरूरत क्या है कुँवर ! एक दिन स्वयं ही ऐसी गहरी नींद में सो जाऊँगी कि तुम जगाना चाहकर भी जगा न सकोगे ?"

"यह आज कैसी बातें कर रही हो मुरला ?" कहते हुए प्रभात ने अपना सिर अपने दोनों हाथों पर रख लिया। मनहर बोला—"मौली की वजह से तुम इतनी नाराज हो गईं मुरला ! मुझ पर विश्वास करो। जान-बूझ कर मैंने उसे कभी चोट नहीं पहुँचाई। सदैव उसका दिल रखता रहा, पर अन्त में सब गड़बड़ हो गया। मौली एकाएक चली जायेगी, इसे मैं या महाश्वेता जान भी कैसे सकते थे, कहो तो ?

"प्रेमी किसी के प्यार को न समझ सका, इस पर विश्वास करने

को मन नहीं चाहता मनहर ! जिस व्यथा से कोई स्वयं ही व्यथित हो, उसे वह ही न पहचाने, इसे कौन मानेगा, क्यों···क्यों तुमने उसे ···?"

मुरला रो पड़ी, घबरा कर महनर ने प्रभात की तरफ़ देखा। प्रभात ने उसकी नब्ज देखी, और उठकर ऐन्जक्शन की तैयारी करने लगा। मुरला कहती गई—

"मनहर ! सुनो, मेरी एक बात सुनो, फिर शायद मैं समय न पाऊँ।"

मनहर बोला—"कहो मुरला ! मैं सुन रहा हूँ।"

मुरला ने उसके हाथ को अपने हाथ में दबाते हुए कहा—"मैं··· मैंने तुम दोनों का सुन्दर जीवन नष्ट कर दिया। लोग कहते हैं, प्रभात सुन्दर, विद्वान् एवं प्रतिभाशाली नवयुवक है, पर मुरला ने उसका जीवन लंगड़ा कर दिया—और तुम क्यों ऐसे हो गये, यह केवल मैं-कुँवर और महाश्वेता ही जानते हैं। मेरी यह जिन्दगी मेरे लिये बोझ हो गई···अगर तुम दोनों भी व्याह करके दुनियादारी करते, तो शायद मैं इतनी जल्दी न मरती मनहर ! तुम दोनों के सामने से हट जाने के लिये ही मैंने मौत का आंचल पकड़ा है। मैं मौसी और काकी के आँसू और नहीं देखना चाहती। मुझे वचन दो मनहर ! मेरे चले जाने के बाद तुम रेवा से व्याह कर लोगे।"

मनहर व्याकुल हो उठा। मुरला के हाथ को उसने अपने होठों से लगा लिया, पर उससे उत्तर देते न बना। मुरला बोली—"मुझे वचन दो मनहर ! वचन दो, कुँवर व्याह नहीं करेंगे तो मौसी रो-रो कर मर जायेगी। आखिर···तुम दोनों के लिये क्या मौत के बाद भी मुझे आँसू बहाने होंगे।"

मनहर ने इस बार दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं मुरला ! तुम्हारी बात मैं रखूँगा प्रिय ! मैं व्याह कर लूंगा, पर जब तुम अच्छी हो जाओगी तब।

"मैं अच्छी हो जाऊँगी...अब नहीं...मेरे कुछ और काम भी तुम्हें करने होंगे। एक तो कुँवर को देखना होगा। फिर मेरे पति और बच्चों की देख भाल करनी होगी, और अपना ब्याह रेवा से करना होगा ?"

प्रभात ने नाखुश होकर कहा—"पगली मत बनो मुरला ! बांह पर से कपड़ा हटाओ मनहर ! मैं ऐन्जक्शन लगाऊंगा।"

मुरला ने बांह की। प्रभात ने उसे मरफिया का ऐन्जक्शन लगाकर बेहोश कर दिया था।

इसके बाद दोनों मित्र उसके दोनों तरफ़ बैठ गये। महाश्वेता ने आकर कहा—"अब थोड़ी देर तुम दोनों आराम करो, मैं बैठती हूँ। अरे ! यह क्या तुम दोनों की आँखों में पानी क्यों ? मेरी मुरला कैसी है कुंवर ?"

प्रभात नहीं बोला। मनहर ने कहा—"वह अच्छी है। बातें उलट-पुलट कर रही थी, इसलिए कुंवर ने उसे बेसुध कर दिया है।"

: २१ :

"रेवा !"

रेवा ने कमरे से बाहर आकर कहा—"जी।"

"जरा मेरा वह गर्म कोट तो निकाल देना, प्रैस तो करवा रखी है न ?"

"जी हां...तैयार है।"

कहती हुई रेवा अन्दर कमरे में चली गई। थोड़ी देर बाद कोट लाकर मनहर के हाथ पर रख दिया। फिर उसके उतरे सूखे चेहरे पर आंखें जमा कर बोली—"मुरला कैसी है अब ?"

मनहर ने अपने लाल नेत्रों को रेवा के मुख पर लगाते हुए कहा—"अभी तक तो जीवित है रेवा ! तुम तो उसे कई बार देख आई हो। तुम्हें कैसी लगती है वह।"

रेवा ने आंखें झुकाकर कहा—"कमजोर तो बहुत हो गई है, पर भगवान् तो मुर्दे में भी जान डाल सकते हैं।"

मनहर के होठों पर व्यथा भरी हँसी फैल गई। बोला—"भगवान्, कौन-से भगवान् ? तुम तो अब तक किसी भगवान् को मानती नहीं थीं रेवा ?"

"एक दिन नहीं मानती थी, परन्तु ...

"अब मानने लगीं, भगवान् के भाग्य काफी तेज दीखते हैं। एक गिलास पानी तो पिलाओ रेवा।"

रेवा पानी लेने चली गई, मनहर ने काकी के कमरे में जाकर कहा—"जाता हूँ काकी ?"

वह माला जप रही थी, मुंह उठाकर बोली—

"अच्छा बेटा, मुरला से कहना सन्ध्या को मैं आऊंगी।"

'अच्छा' कहता हुआ वह फिर आंगन में आगया और तुलसीचौरे पर बैठता बोला—"पानी लाना क्या भूल गई रेवा।"

रेवा हाथ में ट्रे लिये आई, और बोली—"चाय बिल्कुल तैयार थी, मैंने सोचा पानी के बजाय यही क्यों न दे दूँ।"

"ओह...तुम कितनी अच्छी हो रेवा ?"

कहते हुए वह चाय पीने लगा। रेवा बोली—"लगता है आप और कुंवर बहुत निराशावादी हैं। भगवान् पर भरोसा नहीं है।"

"भरोसा नहीं है, यह सच्ची बात है रेवा! अन्त में ठगे जाने का भय बना है हमें।"

रेवा उसको तसल्ली देने के लिये कितनी ही बातें कहने लगी। मनहर बोला—'मुरला को सब ही प्यार करते हैं रेवा! फिर हम तीनों की तो वह...उसका कष्ट देखा नहीं जाता। अपनी बीमारी से यह बेहद डरती है। तारी उससे मिलने के लिये तड़पता रहता है। पर वह उससे नहीं मिलती, डाक्टरों के कहने पर भी वह अपने बच्चों को अपने पास बुलाने के लिये तैयार नहीं हुई, क्यों ?"

रेवा ने मुँह उठाकर कहा—"इसलिये नहीं कि वह डरती है; कहीं इन्हें बीमारी न हो जाये, बल्कि इसलिये कि उन सबको देखकर उसकी छाती फटती है, बे वक्त वह उन सबसे अलग की जा रही है।"

मनहर की आंखें नम्र हो गईं। बोला—"मुरला का यह कष्ट देख जी चाहता है अपने प्राण देकर भी उसको किसी तरह बचा लूं।"

रेवा ने देखा उन आँखों से कई बूंद आँसू टपक कर धरती पर गिर पड़े। क्षण भर तक खड़ी वह उन आँसुओं की बूंदों की तरफ ताकती रही। बूंदें धीरे-धीरे मिट्टी में मिल गईं—रेवा एक ठण्डी सांस लेकर बोली—"अधीर होना आपको शोभा नहीं देता।"

मनहर के होठों पर एक रूखी व्यंगभरी हँसी फूट पड़ी। बोला—"यह दुनिया की आखिरी चलाऊ बात है रेवा! जब सब तरफ से निराशा झांकने लगती है, तब अन्त में यही बात कहकर उसे सान्त्वना देने की रीति है, है न?" कहता हुआ मनहर क्षण भर तक उस सांवले चेहरे की तरफ़ ताकता रहा। फिर धीरे-धीरे घर से बाहर निकल गया।

रेवा आप ही आप बोली—अब क्या होगा...इन्हें और कुंवर को मैं कैसे सम्भालूंगी। मुझ में इतना बल कहाँ है जो दो मिटते जीवनों को समेट कर खड़ा कर दूँ। तुम...अगर...हो...तो... कोई चिन्ता नहीं... अगर नहीं हो तो समझो मुरला के साथ सब कुछ ही समाप्त हो जायेगा।"

और एक दिन मनहर और महाश्वेता की दिन-रात की मेहनत और प्रभात और शिवाला की डाक्टरी सब व्यर्थ हो गई। मुरला मुस्कराती हुई मौत के द्वार पर जा खड़ी हुई। फूट-फूट कर रोते हुए अपने पति को उसने सान्त्वना दी। और मुस्कराते हुए कहा—"छीः! पुरुष की आंख में आँसू शोभा नहीं देते। मैं जा रही हूँ, मन में एक सुख लिये कि मैं कितनी भाग्यवान् हूँ। तुम्हारे चरणों में सिर रख कर मरूँगी। मेरा बच्चा, मेरी बच्ची को प्यार से रखना, वह दोनों अभागे आज माँ का प्यार खो बैठे। उन्हें जानने मत देना कि मैं अब इस संसार में नहीं हूं, नहीं तो उनके कोमल हृदय में चोट लगेगी। कहना ठीक होने पर वह तुम दोनों पास आयेगी जरूर।"

जमींदार सुरेन्द्र सिंह ने कहा—"कैसी बातें करती है मुरला! तुझे हुआ क्या है? आज तो तू रोज से अच्छी है!" फिर मुरला के पति से बोले—"उठिये, आप मेरे साथ चलिये। आप भी खूब हैं। मरीज के पास आकर रोने बैठ गये।"

कहते हुए वह मुरला के पति को बाहर ले गये। गांव के कितने ही लोग उसे देखने आये। तारी भी आया। मुरला ने फिर ऐसी कोई बात

नहीं की। सबसे कहती रही—"आज मैं अच्छी हूँ।" महात्मा सन्ध्या को रोज उसे चरणामृत देने आते थे। आज जब आये तो वह बोली—"बाबा जन्म लूँ तो उन सबको फिर से पाऊं, जिन्हें आज छोड़ते छाती फटी जा रही है।"

महात्मा की आंखें भर आईं, बोले—"ऐसी बातें नहीं करते बेटी! तुम तो समझदार लड़की हो, जरा सी बीमारी में घबराना नहीं चाहिये। शरीर के साथ सुख-दुख तो बना ही है।"

मुरला हँसी, बोली—"आप मुझे बहला रहे हैं बाबा! या स्वयं अपने को।"

महात्मा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसके माथे का चुम्बन कर घर से बाहर निकल गये।

शिवाला दो डाक्टरों के साथ बम्बई से आई थी। जब दोनों डाक्टर जाने लगे तो शिवाला को अपने पास बुला कर मुरला बोली—"जीजी तुम आज जाना मत।"

उसके माथे पर से बाल हटाते हुए शिवाला मीठे स्वर से बोली—क्यों? आज तो तुम अच्छी हो मुरला!"

"सो तो हूँ—पर तुमसे मुझे बहुत कुछ कहना है जीजी?"

"अच्छा नहीं जाऊंगी। मैं हास्पिटल पत्र लिखे देती हूँ।" कहती हुई वह बाहर चली गई। महाश्वेता बोली—"आज तुम बहुत बोलती रही हो जीजी। थोड़ा सो जाओ।"

मुरला की आँखों में आँसू डबडबा आये, बोली—"आज सचमुच मुझे नींद के गहरे झोंके आ रहे हैं महाश्वेता! मुझे जागना है, जब तक भी जाग सकूं। एक बार सो जाने के बाद फिर मैं जाग न सकूँगी बहिन! न और कोई मुझे जगा सकेगा, मनहर और कुंवर कहाँ हैं?"

"डाक्टरों से बात कर रहे हैं।"

"पगले हैं दोनों, सुनो महाश्वेता ! मेरे बाद तुम इन दोनों के सुख-दुख का...।"

"जीजी···मेरी जीजी ! मुझ पर दया करो, मुझ से यह बातें नहीं सुनीं जायेंगी। हम चारों···हम चारों सदा सदा साथ रहेंगे।"

टूटे हुए मन से प्रभात और मनहर कमरे में घुसे। प्रभात मुरला के दोनों हाथों को अपने हाथ में दबाता हुआ बोला—"वह दोनों कहते हैं कोई डर की बात नहीं है।"

एक अविश्वास की हँसी मुरला के शुष्क होठों पर फैल गई।

आधी रात तक मुरला शिवाला से बातें करती रही। उसकी बातों का सारांश था कि कुंवर को सम्भालना। इसके बाद वह धीरे-धीरे बेसुध होने लगी। प्रभात ने अपना खून निकाल कर दो बार उसे ऐन्जक्शन दिया। पर मुरला की बन्द हो रही वह सुन्दर आँखें फिर पूरी न खुल सकीं। वह कह रही थी—"मनहर ! मेरे पति···और बच्चों को देखना···रेवा से ब्याह कर लेना। मैं मौली के पास जा रही हूँ, तुमने उसका दिल मेरे लिये तोड़ा है, मैं···मैं···शिवाला जीजी ! कुंवर को देखना···महाश्वेता···तुम देवी हो···आशीर्वाद दो, मेरी मृत्यु से मनहर और प्रभात का कल्याण हो, दो आशीर्वाद महाश्वेता ! मुझे देर हो रही है, मनहर···कुँवर मैं जाती हूँ। नरसिंह···बिट्टी को···बुलाओ··· मैं जा रही हूँ···स्वामी···ईश्वर।"

और सब कुछ खत्म हो गया। मुरला चली गई। वह सुन्दर होठ जिनके हिलने से देखने वालों की दुनिया हिल जाती थी, सदा के लिये चुप हो गये, और वह आँखें, जिनमें पवित्रता की एक अपूर्व चमक थी, अमृत था, सदैव के लिये बन्द हो गईं।"

प्रभात एक बार चिल्लाया—"मनहर सम्भालो, मुरला चली, शिवाला ! मेरा खून लो, जल्दी करो।"

और बेसुध होकर धरती पर गिर पड़ा। महाश्वेता ने पास आकर

रोते हुए कहा'''देखो सम्भालो शिवाला जीजी ? कुँवर कहीं मौसी की तरह ही हम सब को धोखा न दे दे।

शिवाला ने टूटे हुए स्वर में कहा—"अगर बच भी गये, तो होश हवास अब लौटाये नहीं जा सकते देवी ! वह वस्तु मुरला की थी, जब जब तक वह दूर रही है, कुंअर होश-हवास से वंचित रहे हैं, उसे पाते ही''''''पर अब'''अब तो सब खत्म हुआ'''इन्हें मैं अभी मोटर में डाल कर बम्बई ले जाती हूँ। शायद उस बुत से'''इन्हें'''बहला सकूँ।"

सबने उसे यही राय दी। शिवाला कुँवर को छोड़कर मुरला के पास गई और उसका ठण्डा माथा चूमती हुई बोली—"तुम्हारे नाम और मूर्त्ति के बल पर, मैं इन्हें फिर जिलाने का प्रयत्न करूँगी मुरला ! अब जाती हूँ।"

कहने के बाद उसने रोते-रोते कई बार मुरला के सिर पर हाथ फेरा। फिर प्रभात को उठाकर मोटर में डाला गया। शिवाला उसमें बैठी, मोटर उड़ चली। शिवाला की आँखों से आसुओं की वर्षा हो रही थी।

मनहर चुपचाप सब कुछ देखता रहा। उस सुन्दर देह-लता को जला देने के लिये जब मुरला के पति से चिता में आग लगवाई गई, तो उसके हृदय में एक पीड़ा हुई। कराह कर उसने आँखें बन्द कर लीं, और सब की नजर बचा एक पेड़ की आड़ में जा बैठा और एकटक उस धू-धू करके जलती चिता की ओर देखने लगा।

सब कुछ समाप्त होने के बाद, बुझे मन से लोग लौटने लगे। महाश्वेता ने व्याकुल होकर कहा—"मेरा''भैया''मनहर भैया कहाँ है मौसी ?"

उस बुढ़िया ने कहा—"वह चला गया है बेटी ? मैंने उसे जाते देखा था। इस हृदय-विदारक दृश्य को वह कैसे देख सकता था। बड़े नर्म कलेजे का है, याद नहीं तुझे, गांव में जब जब ऐसी घटनाएँ हुई हैं,

मनहर के आँसू अठवाड़ों नहीं रुके, मुरला तो उसके साथ खेलकर बड़ी हुई है। चिता में जब जमाई राजा ने आग दी, तभी वह भाग गया था।"

महाश्वेता ने इस पर विश्वास कर लिया और सखी की चिता के पास जाकर फिर एक बार विलाप कर रो पड़ी। गाँव की स्त्रियाँ उसे पकड़ कर ले गईं।

मनहर दिन भर चुपचाप उसी तरह बैठा चिता की तरफ़ ताकता रहा। चिता सन्ध्या होते तक बुझ गई। मनहर घुटनों में मुंह छिपा कर बोला—"नहीं मुरला नहीं······इतनी पाषाणी मत बनो, आओ···लौट आओ मुरला।"

आधीरात तक रेवा दरवाजा खोले उसकी राह ताकती रही। फिर अचानक उठकर बोली—"मौसी! मैं जाकर उन्हें बुलाये लाती हूँ।"

रामा ने चौंककर कहा—"पागल हुई है। इस रात में अकेली कहाँ जायेगी? मनहर को आज बहुत चोट लगी है रेवा! वह एकान्त में पड़ा कहीं रो रहा होगा। रो लेने दे उसे, ये चारों बचपन में सदा साथ साथ रहे हैं, आज उनमें से एक चला गया, इन तीनों को इससे जो चोट लगी है, इसे वही जान सकता है बेटी, जिसने इन्हें बचपन से सदा एक साथ खेलते देखा है।"

रेवा ने कहा—"वही तो···मौसी! मुझे जाने दो, मैं उन्हें लेकर अभी लौटी आती हूँ।"

उसकी इस मर्माहत वाणी से रामा ने चौंक कर भानजी के मुँह की तरफ देखा, फिर कहा—"परन्तु वह कहाँ है, इसे तू कैसे जानेगी रेवा?"

"मैं जानती हूँ मौसी?"

"तब जा! साथ लालटैन लेती जा, रामधन को पुकार लेना।"

रेवा ने आगन में से लालटैन उतार ली, और जल्दी-जल्दी बाहर

निकल गई। सुन पड़ा उसे—"रामधन को पुकार लेना रेवा"—रेवा ने जैसे अपने को कहा···नहीं···वहाँ किसी दूसरे की जरूरत नहीं है मौसी ! मैं···मैं उन्हें राह दिखा दूँगी, मेरे हाथ में लालटैन है।"

रेवा को मालूम था, मुरला को वहीं चिता दी गई है जहाँ चारों सदा खेलते रहे हैं। वह सीधी वहीं पहुँची। मुरला की चिता बुझ गई थी। रेवा ने लालटैन एक तरफ रख घुटने टेक कर मुरला की चिता की थोड़ी-सी भस्म उठाकर अंचल में बाँध ली, फिर कहा—"आखिर तुम चली गईं मुरला ? कितनी भागवान् थीं तुम, जब तक जीती रहीं, सबके मन पर राज्य करती रहीं, और आज जैसे···पर वह कहाँ हैं बहिन !"

सहसा उसकी नजर उस पेड़ के नीचे गई। काँपते पैरों से वह मनहर के पास पहुँची। वह घुटनों में मुँह छिपाये बैठा था। रेवा बोली—"चलिये।"

वह चौंक उठा, फिर रेवा को पहचान कर बोला—"तुम रेवा ! क्या मुरला को देखने आई हो ?"

"हाँ···अब घर चलिये, मैं आपको लालटैन दिखाती हूँ, उठिये।"

"नहीं रेवा ! अब मैं कहीं नहीं जाऊंगा।"

"क्या सदा यहीं बैठे रहोगे ?"

"इच्छा तो ऐसी ही है, पर इससे मेरी मुरला की बदनामी हो सकती है। मैं...मैं उसकी राख लेकर कहीं दूर जा रहा हूँ, तुम घर जाओ रेवा !"

रेवा ने तीखे स्वर से कहा—"समझी, आपने हिम्मत हार दी है। हर मन्जिल से आपको आखिर वापिस लौटना पड़ा है। मैं कहती हूँ। अब भी समय है-आइये मैं राह बताऊँगी।"

"उत्साह नहीं रहा रेवा, नई मन्जिल पर बढ़ने के लिये न मन में उत्साह है, न शरीर में बल ! तुम लौट जाओ मैं बहुत थक गया हूँ। सदा

सबसे जीतता रहा हूँ कभी कहीं हार नहीं हुई, पर मेरी जिन्दगी के इस दांव को मुरला ने बुरी तरह हार दी है। जाओ रेवा! अब और नहीं खेलूँगा।"

रेवा क्षण भर तक मौन खड़ी रही, फिर बोली—"और जो इतनी जुम्मेवारियां मुरला आपके कन्धे पर रख गई है। उनका क्या होगा? मुरला के पति और बच्चों को अभी तक तो आपने एक भी सान्त्वना का शब्द नहीं कहा। मुरला तो उन सबकी देख-रेख का बोझ आप पर ही रख गई न? उसकी आत्मा आपकी इस कमजोरी से जाने कितना कष्ट पा रही होगी, सोचिये तो।"

मनहर चौंक पड़ा। खड़ा होकर बोला—"ठीक है रेवा, मुझे... नरसिंह बिट्टी को देखना है। उसके प्यारे बच्चे! मेरे कन्धे पर उनकी देख-रेख का भार सौंप कर वह बड़ी निश्चिन्त हुई थी। हमारी मुरला... चलो, एक बार तुमसे मैंने अपनी मन्जिल की राह जाननी चाही था। तब मैं मदहोश था रेवा! पर आज एक मुर्दे से बत्तर हूँ। जीवन का दांव तक किसी से हार चुका हूँ। ऐसे अपाहिज को राह दिखा सकोगी क्या, बोलो?"

रेवा ने दृढ़ता से कहा—"हाँ...दिखा सकूँगी। आपको क्या क्या करना है, मैं सब बताती रहूँगी। मुरला सदैव आपकी कीर्ति सुन कर गर्वित होती रही है। आप वही बातें करते रहिये जिससे वह स्वर्ग में बैठी भी मुस्कराती रहे, आइये।"

कहते हुए उसने अपने आंचल से अपने आँसू पोंछ डाले, और लालटेन लेकर आगे-आगे चल पड़ी। मनहर लड़खड़ाता हुआ उसके पीछे-पीछे जाने लगा, एक हारे हुए जुआरी की तरह।